मृत्योर्मा अमृतं गमय

अनुक्रम

1. धर्म की आड़ में अहंकार...2
2. ध्यान, प्रेम और संन्यास...22
3. प्रेम की आग..41
4. धर्म है प्रेम की पराकाष्ठा..62
5. संन्यास का आमन्त्रण...83
6. अहोभाव, धन्यवाद--पश्चात्ताप नहीं...104
7. अभीप्सा का जन्म...123
8. बुद्धत्व की धन्यता...142
9. नये मनुष्य का आगमन..162 10..सद्गुरु की पुकार 180

मृत्योर्मा अमृतं गमय
पहला प्रवचन

धर्म की आड़ में अहंकार

पहला प्रश्नः इस भारत-भूमि पर कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक तथा ऐसी ही महान आत्माओं की किरणों का प्रकाश तो मैं प्रत्यक्ष आप में देख रहा हूं। क्या भारत-भूमि ही धार्मिकता की दृष्टि से अग्रणी रहेगी या इसमें भी विदेशी साधक अग्रणी हो जाएंगे? क्योंकि विदेशी वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर, विचारक, द्रष्टा इस प्रकार पूना भागे आ रहे हैं कि पूरे विश्व की संपदा यह आश्रम है। आपके सान्निध्य में ध्यान तथा प्रवचनों में जो सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, समर्पण का भाव इन विदेशियों ने सीखा है, आत्मसात किया है, यह आश्रम की गतिविधियों से स्पष्ट नजर आता है। क्या आपकी संपदा से फिर भारत-भूमि वंचित रह जाएगी? क्या ढोंगी सत्य साईंबाबा जैसे ही लोग घड़ियां निकाल कर तथा राख गिरा कर भारत को राख में ही नहीं मिला देंगे? या आगे भी ऐसे ही महान पुरुषों का अवतार भारत-भूमि पर होता रहेगा? कृपया समझाने की कृपा करें।

श्रवण! भारत और अभारत, देश और विदेश की भाषा अधार्मिक है। यह मौलिक रूप से राजनीति, कूटनीति, हिंसा, प्रतिहिंसा, वैमनस्य, इस सबको तो परिलक्षित करती है--धर्म को नहीं, ध्यान को नहीं, समाधि को नहीं।
ध्यान क्या देशी और क्या विदेशी? प्रेम क्या देशी और क्या विदेशी? रंग लोगों के अलग होंगे, चेहरे-मोहरे भिन्न होंगे; आत्माएं तो भिन्न नहीं! देह थोड़ी-बहुत भिन्न हो सकती है; फिर भी देह का जो शास्त्र है, वह तो एक है। और आत्मा, जो कि बिल्कुल एक है, उसके क्या अनेक शास्त्र होंगे? आत्मा को भी देशों के खंडों में बांटोगे?
इस बांटने के कारण ही कितना अहित हुआ है! इस बांटने के कारण ही पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन पाई, पृथ्वी नर्क बन गई है। क्योंकि खंडित जहां भी लोग हो जाएंगे, प्रतिस्पर्धा से भर जाएंगे, अहंकार पकड़ लेगा--वहीं नर्क है।
यह अहंकार की भाषा है श्रवण। तुम सोचते हो, तुमने बहुत धार्मिक प्रश्न पूछा है। तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल अधार्मिक है। किसको तुम देश का हिस्सा मानते हो, किसको विदेश का हिस्सा मानते हो? बस नक्शे पर लकीरें खिंच जाती हैं, और तुम सोचते हो भूमि बंट जाती है?
लाहौर कल तक भारत था, अब भारत नहीं है! ढाका कल तक भारत था, अब भारत नहीं है! जब तुम भारत-भूमि शब्द का उपयोग करोगे तो करांची, ढाका, लाहौर उसमें आते हैं या नहीं? कल तक तो आते थे; उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले तक तो आते थे; अब नहीं आते। कल देश और भी सिकुड़ सकता है। कल हो सकता है दक्षिण उत्तर से अलग हो जाए। तो फिर भारत देश उत्तर में ही समाहित हो जाएगा; फिर गंगा का कछार ही भारत रह जाएगा; फिर दक्षिण भारत नहीं रहेगा! अभी भी तुमने जिनके नाम गिनाए, वे सब उत्तर के हैं--कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक। उनमें एक भी दक्षिण का व्यक्ति नहीं है। दक्षिण की तो याद ही आती है तो तत्क्षण रावण की याद आती है!
दक्षिण में भी संत हुए हैं--अदभुत संत हुए हैं! तिरुवल्लुवर हुआ, जिसके शास्त्र को दक्षिण में पांचवां वेद कहा जाता है। और निश्चित ही उसका शास्त्र पांचवां वेद है। अगर दुनिया में कोई पांचवां वेद है तो तिरुवल्लुवर की वाणी है। लेकिन दक्षिण को भी तुम गिनोगे नहीं! तुम्हारा भारत सिकुड़ता जाता है, छोटा होता जाता है।
यह सारी पृथ्वी एक है। तुमने इसमें क्राइस्ट को क्यों नहीं जोड़ा? तुमने इसमें जरथुस्त्र को क्यों नहीं जा.ेडा? लाओत्सू को क्यों नहीं जोड़ा? पाइथागोरस को क्यों नहीं जा.ेडा? हेराक्लाइटस को क्यों नहीं जोड़ा? बस इसलिए, चूंकि वे तुम्हारे राजनीतिक भारत के हिस्से नहीं हैं, द्रष्टा न रहे? ज्योतिर्मय पुरुष न रहे? सूरज जैसा पूरब का है, वैसा पश्चिम का। ऐसे ही आत्मा का प्रकाश जैसे पूरब का है, वैसे पश्चिम का। सबका अधिकार है।

धर्म को राजनीति से न बांधो। धर्म की राजनीति से सगाई न करो। धर्म का राजनीति से तलाक होना चाहिए। यह सगाई बड़ी महंगी पड़ी है। इसमें राजनीति छाती पर चढ़ गई और धर्म धूल-धूसरित हो गया।
धार्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है कि वह सीमाओं में नहीं सोचता। जो असीम को खोजने चला है, वह सीमाओं में सोचेगा? फिर सीमाओं का कोई अंत है? भाषा की सीमाएं हैं; रंग की सीमाएं हैं; अलग-अलग आचरण, अलग-अलग मौसम--इनकी सीमाएं हैं। अलग-अलग परंपराएं, अलग-अलग धारणाएं जीवन की--इनकी सीमाएं हैं। कितने धर्म हैं पृथ्वी पर--तीन सौ! और कितने देश हैं! और कितनी भाषाएं हैं-- कोई तीन हजार! सीमाओं को सोचने बैठोगे तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे।
जो सोचते हैं कि संस्कृत ही देववाणी है, उनके लिए बुद्ध-महावीर जाग्रत पुरुष नहीं हैं क्योंकि वे संस्कृत में नहीं बोले। संस्कृत शायद जानते भी नहीं थे। लोक-भाषा में बोले। जो उस दिन जनता की भाषा थी, उसमें बोले; पाली में बोले, प्राकृत में बोले। जो सोचता है अरबी ही परमात्मा की भाषा है, उसके लिए कुरान के अतिरिक्त फिर कोई किताब परमात्मा की नहीं रह जाती। या कोई सोचता है कि हिब्रू उसकी भाषा है, तो बस बाइबिल पर बात समाप्त हो गई।
तुम क्यों इतनी छोटी सीमाओं में सोचते हो? यह भी अहंकार का ही विस्तार है। क्योंकि तुम भारत में पैदा हुए, इसलिए भारत महान! तुम अगर चीन में पैदा होते तो चीन महान होता। तुम्हें अगर बचपन में ही चुपचाप चीन में ले जाकर छोड़ा गया होता और चीन में तुम बड़े होते, तो तुम बुद्ध, महावीर, कृष्ण, नानक, कबीर, इनका नाम कभी न लेते; तुम लेते नाम--लाओत्सू, कनफ्यूशियस, च्वांगत्सू, लीहत्सू, जो तुमने शायद अभी सोचे भी नहीं। या तुम्हें अगर यूनान में पाला गया होता, तो तुम कहते--सुकरात, अरिस्टोटल, प्लेटो, हेराक्लाइटस, पाइथागोरस। कबीर की कहां गिनती होती! कबीर की तुम्हें याद भी नहीं आती। कबीर का तुम्हें पता भी नहीं होता।
यहां भी तुम अगर हिंदू घर में पैदा हुए हो या जैन घर में पैदा हुए हो,
तो एक बात; अगर मुसलमान घर में पैदा हुए हो, तो तुम सोचते हो, इनमें से तुम एक भी नाम ले सकते! भारत-भूमि में ही अगर मुसलमान होते, तो मोहम्मद, बहाऊद्दीन, बायजीद, अलहिल्लाज मंसूर, राबिया, ये नाम तुम्हें याद आते। ये सिर्फ हमारी सीमाएं हैं। इन सीमाओं को तुम सत्य पर मत थोपो।
तुम्हारा प्रश्नः "इस भारत-भूमि पर... ।"
कौन सी भारत-भूमि? कभी अफगानिस्तान भारत का हिस्सा था। अफगानिस्तान में बौद्ध प्रतिमाएं मिली हैं, बौद्ध विहारों के अवशेष मिले हैं, अशोक के शिलालेख मिले हैं। कभी भारत का हिस्सा था, अब तो भारत का हिस्सा नहीं है। कभी बर्मा भारत का हिस्सा था, अब तो भारत का हिस्सा नहीं है। और अभी-अभी हमारे सामने पाकिस्तान टूटा और भारत का हिस्सा नहीं रहा। किस भूमि को तुम भारत-भूमि कहते हो?
और जमीन क्या कोई पवित्र होती है, कोई अपवित्र होती है? जेरुसलम काशी
से अपवित्र है? कि काबा गिरनार से? कि आल्प्स पर्वत के शिखर हिमालय के शिखरों से कम पवित्र हैं या कम सुंदर हैं या कम महिमावान हैं?
मेरे संन्यासी होकर ऐसी भाषा छोड़ो। मेरा संन्यासी होने का अर्थ ही यही है कि हम असीम की तलाश पर चले हैं, अपने को असीम करेंगे; अपने को सारी सीमाओं से, सारी क्षुद्रताओं से मुक्त करेंगे। न कोई किताब हमें बांधेगी, न कोई देश हमें बांधेगा; न कोई चर्च, न कोई संप्रदाय हमें बांधेगा। हम सारे बंधन ही गिराएंगे।
लेकिन तुम्हारे मन में अभी भी कहीं यह अहंकार छिपा है कि "क्या भारत-भूमि ही धार्मिकता की दृष्टि से अग्रणी रहेगी?"
क्यों अग्रणी रहे? अग्रणी होने की भाषा में महत्वाकांक्षा है। जैसे धन, तो मैं सबसे पहले होना चाहिए! पद, तो मैं सबसे आगे! और जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, क्योंकि परमात्मा के राज्य में वे ही प्रथम होंगे। और अभागे हैं वे जो प्रथम होने की चेष्टा में लगे हैं, क्योंकि परमात्मा के राज्य में उनकी गिनती अंतिम होगी।
विनम्रता, निरहंकारिता गुण है। मगर एक मजे की बात है, जब तुम निरहंकारिता व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन में लाते हो, तो लोग तुम्हें

सम्मानित करते हैं। यही निरहंकारिता तुम अपने धर्म के संबंध में, अपने देश के संबंध में, अपनी भाषा के संबंध में लाओ, तो लोग अपमानित करेंगे। लोग कहेंगे, देशद्रोही हो। अगर तुम कहते हो कि "मैं तो कुछ भी नहीं, आपके चरणों की धूल हूं"--ठीक। लेकिन अगर तुम कहो कि "भारत-भूमि कुछ भी नहीं, आपके चरणों की धूल है"--झगड़ा खड़ा हो जाएगा। "हिंदू धर्म तो कुछ भी नहीं है, बस आपके चरणों की धूल है"--हिंदू मारने को उतारू हो जाएंगे। भूल जाएंगे निरहंकार की भाषा। भूल जाएंगे सदियों-सदियों के संदेश। तब विनम्रता नहीं काम आती। असल में सामूहिक अहंकार में हम तृप्ति लेते हैं। व्यक्तिगत अहंकार में समूह नाराज होता है। अगर तुम कहो, मैं सबसे बड़ा! तो दूसरे लोग नाराज होंगे। लेकिन तुम अगर कहो, हम सबसे बड़े! तो दूसरों की भी तृप्ति हो रही है, तुम्हारी भी तृप्ति हो रही है; नाराज कोई क्यों हो? अगर तुम कहो कि भारत सबसे अग्रणी धार्मिक देश, तो कम से कम भारत में तो कोई नाराज नहीं होगा। हां, चीन में जाकर ऐसा मत कहना; रूस में जाकर ऐसा मत कहना। तो रूस में कोई जाकर कहेगा भी नहीं। और कहेगा भी, तो लोग हंसेंगे कि पागल हो गए हो--भारत और अग्रणी!
मैंने सुना है कि सिसली एक छोटा सा द्वीप है। उस द्वीप का राजदूत चीन गया। इतना छोटा द्वीप है कि चीन के सामने उसकी तो कहीं कोई गिनती ही नहीं। लेकिन सिसली के सम्राट ने अपने राजदूत को कहा कि कुछ बातें ख्याल रखना। चीन के लोगों को यह भ्रम है कि उनका देश दुनिया का सबसे बड़ा देश है। तो अगर कोई वहां तुमसे यह कहे कि चीन सबसे बड़ा देश है, तो चुपचाप स्वीकार कर लेना; मत कहना कि सिसली सबसे बड़ा देश है। क्योंकि वे लोग नहीं समझ सकेंगे। सिसली की कहां गणना है! चीन अगर हिमालय पर्वत है, तो सिसली कोई छोटा- मोटा टीला भी नहीं। अगर चीन महासागर है, तो सिसली कोई छोटी-मोटी तलैया भी नहीं। लेकिन सिसली में रहने वाले लोग तो यही मानते हैं कि उनके देश से महान और कौन!
हमें अपनी मूढ़ताएं दिखाई नहीं पड़तीं।
जब अंग्रेज पहली दफा चीन गए, तो वे बड़े हैरान हुए। चीनियों को देख कर उन्हें भरोसा ही न आए कि ये भी आदमी हैं! पहले यात्रियों ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चीनियों को देख कर हमें पहली दफा हैरानी हुई कि इनको आदमी कहें या कुछ और नाम दें! नाक चपटी, मुंह की हड्डियां उभरी हुईं; और दाढ़ी के नाम पर इतने बाल कि अंगुलियों पर गिन लो! चेहरे पीले! ये किस तरह के लोग हैं! इनकी वेशभूषा!
और चीनियों ने अंग्रेजों को देख कर क्या अपनी किताबों में लिखा--कि अब
तक तो हमने सिर्फ सुना था कि ऐसे भी देश हैं जहां बंदरों जैसे आदमी होते हैं, अब हमें पक्का प्रमाण मिल गया है कि बंदरों जैसे आदमी होते हैं। ये बिल्कुल बंदर! इनकी शक्ल-सूरत, इनकी चाल-ढाल, इनका रंग! और इनकी भाषा तो देखो, क्या गिच-पिच, गिच-पिच लगा रखी है!
और चीनियों की भाषा? अंग्रेज यात्रियों ने अपने संस्मरणों में लिखा
है कि ऐसा लगता है कि ये लोग जब बच्चे का नाम रखते हैं, तो सारे घर की चम्मचें, बर्तन इत्यादि उठा कर जोर से ऊपर फेंकते हैं। फिर वे सब गिरती हैं, चिंग चुंग चांग चींग आवाज होती है। उस आवाज में से ये लोग नाम निकालते हैं। नहीं तो ऐसे-ऐसे नाम निकालेंगे कैसे!
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। हम ऐसे ही अंधे हैं। हम सब ऐसे अंधे हैं। हमारे अंधेपन की बड़ी प्रगाढ़ता है, बड़ी सघनता है। संन्यासी को यह अंधापन तोड़ना पड़े। यह दुनिया प्यारी है, क्योंकि यहां भिन्न-भिन्न लोग हैं, वैविध्य है। विविधता में रस है। विविधता में आनंद है।
लेकिन हम एक-दूसरे को बरदाश्त नहीं कर पाते, क्योंकि एक-दूसरे को देख
कर हमें अड़चन होती है। फिर हमारी स्थिति क्या है? हम कहां? हम सदा इसी हिसाब में लगे रहते हैं कि क्यू में कौन आगे खड़ा है? यहां क्यू है ही नहीं; वर्तुलाकार लोग खड़े हैं। सब सब के आगे, सब सब के पीछे। चक्कर में खड़े होकर देखो, कौन किसके आगे है? कोई न कोई आगे है, कोई न कोई पीछे है। पीछे की तरफ देखो तो सब तुम्हारे पीछे हैं; आगे की तरफ देखो तो सब तुम्हारे आगे हैं। यह पृथ्वी गोल है, और हम वर्तुलाकार खड़े हैं। लेकिन सदियों से ये मूढ़तापूर्ण बातें दोहराई गई हैं। इसलिए तुम आकर अगर मेरे संन्यासी भी हो जाते हो तो

भी एक-दो दिन में यह सदियों-सदियों का अंधकार टूटता नहीं है। तुम मेरी बात भी सुनते हो, तो पता नहीं क्या अर्थ लगाते होओगे!
मैं कोई भारत देश की गरिमा थोड़े ही गा रहा हूं! न कृष्ण ने गाई है, न बुद्ध ने गाई है, न महावीर ने, न नानक ने, न कबीर ने। ऐसे लोग क्षुद्रताओं के पार होते हैं। वे सारी पृथ्वी के हैं। यह सारी पृथ्वी इकट्ठी है; कहीं तो बंटी नहीं है। कहीं कोई दरार है, जहां एक देश दूसरे देश से अलग हो जाता हो? कहीं कोई दरार नहीं है। सब संयुक्त है। पृथ्वी ही संयुक्त नहीं है, चांद-तारे भी संयुक्त हैं। यह सारा अस्तित्व इकट्ठा है। यहां कौन आगे, कौन पीछे!
मगर अहंकार इसी भाषा में सोचता है--आगे-पीछे--धन हो कि पद हो। और धन और
पद में आगे-पीछे के सोचने का गणित, तर्कसरणी क्षमा भी कर दी जाए, लेकिन धर्म के जगत में तो क्षमा नहीं की जा सकती। यहां तो प्रथम होने की बात ही पाप है।
तुम पूछते होः "क्या भारत-भूमि धार्मिकता की दृष्टि से सदा अग्रणी रहेगी?"
क्यों? कब थी अग्रणी? तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं सोचता कि अग्रणी कभी थी। तुम जरा अपने ही भीतर तो जांच कर देखो। हिंदू महावीर को मानते हैं कि वे भगवान हैं? जैन बुद्ध को मानते हैं कि वे भगवान हैं? कि बौद्ध कृष्ण को मानते हैं कि वे भगवान हैं? जैनों ने कृष्ण को नर्क में डाला है! डालना ही पड़ेगा। उनके सिद्धांत के हिसाब से कृष्ण से ज्यादा उपद्रवी और कौन! भलामानुस था अर्जुन, सज्जन! युद्ध छोड़ कर मुनि होने की तैयारी कर रहा था। नहीं भागने दिया उसको। कृष्ण ने उसे जाल में बांध कर, समझा-बुझा कर, ठोंक-पीट कर किसी तरह... । इतनी लंबी गीता ऐसे ही तो नहीं चलती! खूब ठोंका, खूब पीटा। यहां से भागना चाहा, वहां से... । यह संदेह उठाया, वह संदेह उठाया। कृष्ण ने कोई संदेह टिकने न दिया। जबरदस्ती उसको लड़वा दिया! ऐसे-ऐसे सिद्धांत उसको बताए--कि जिनको तू समझ रहा है जिंदा, वे तो मर ही चुके हैं। परमात्मा तो उन्हें मार ही चुका है; तू तो निमित्त मात्र है। और तू नहीं मारेगा, तो कोई और मारेगा। तू क्यों मौका चूकता है? परमात्मा के अवसर का एक मौका मिल रहा है। परमात्मा ने तुझे अवसर दिया कि तू निमित्त हो जा। परमात्मा तो कोट टांगेगा, कोई न कोई खूंटी पर टांगेगा। तेरी खूंटी पर टांग रहा है, तू क्यों भाग रहा है? टंग जाने दे कोट! यह धन्यभाग्य है। बड़ी मुश्किल से मिलता है ऐसा भाग्य।
कई तरह से अर्जुन ने निकलना चाहा कि मैं चला जाऊं जंगल। क्या करूंगा
इस राज्य को लेकर! अगर अपनों को ही मार कर यह राज्य मिलता हो तो इसका मूल्य कितना?
अगर गौर से तुम देखो, तो अर्जुन की बात ज्यादा आध्यात्मिक मालूम पड़ती है। क्योंकि वह यह कह रहा है, मारने से क्या फायदा? हिंसा से कहीं कोई पुण्य हो सकता है? लाखों लोग कटेंगे। अठारह अक्षौहिणी सेना खड़ी है, इसमें लाखों लोग कट जाएंगे। पट जाएगी धरती लाशों से। और सब अपने हैं, क्योंकि युद्ध गृहयुद्ध था, सही अर्थों में गृहयुद्ध था। आधे-आधे बंट गए थे। खुद कृष्ण अर्जुन की तरफ थे, उनकी फौज विपरीत लड़ रही थी। भाई इस तरफ थे, चचेरे भाई उस तरफ थे। मामा यहां थे, फूफा वहां थे। बचपन के मित्र बंट गए थे। क्योंकि सब साथ बड़े हुए, साथ पढ़े। भीष्म पितामह उस तरफ थे। जिनके सदा चरण छुए, आज उनकी छाती पर गांडीव लेकर हमला करने चलना पड़ेगा! द्रोणाचार्य उस तरफ थे, जिनसे धनुर्विद्या सीखी। जिनसे सीखी धनुर्विद्या, उन्हीं की छाती में तीर भोंक देंगे, छुरा भोंक देंगे! गुरुहत्या से बड़ी हत्या दुनिया में कही नहीं है कोई और।
अगर तुम गौर से देखो, तो लगता है अर्जुन ठीक ही तो कह रहा है कि इस युद्ध में रखा क्या है! चलो, इन्हीं को भोगने दो। मैं जंगल चला जाता हूं। अगर इनको इसमें रस है, तो लेने दो। पड़ा क्या है! दो दिन की जिंदगी है, जंगल में गुजार लूंगा। नहीं वस्त्र होंगे तो पत्तों से शरीर को ढांक लूंगा।
मेरा मन ऊबता है। मेरा मन राजी नहीं होता।
लेकिन कृष्ण बड़े तर्क देते हैं और किसी तरफ ठोंक-पीट कर राजी कर लेते हैं! अगर पूरी गीता को गौर से देखो तो ऐसा लगता हैः अर्जुन राजी नहीं होता,

राजी किया जाता है। और जब वह राजी होता मालूम भी पड़ता है, तब भी ऐसा ही लगता है कि जैसे उसकी बोलती बंद कर दी गई। इतने तर्क दिए कृष्ण ने उसको कि उसने सोचा कि इससे बेहतर है लड़ ही लो! अब कब तक यह बकवास जारी रहे! और यह आदमी मानने वाला नहीं। और यह तो पक्का है कि यह आदमी मेधावी है। और इसकी मेधा के सामने मैं टिकूंगा नहीं। मेरे तर्क सब खंडित कर डाले, मेरे संदेह सब काट डाले। तो अर्जुन ने अंत में कहा कि ठीक है। आप ही ठीक कहते हैं। मेरे सब संदेह गिर गए। मजबूरी में अपना गांडीव उठा लिया!
युद्ध हुआ। भयंकर हिंसापात हुआ। इतना हिंसापात हुआ कि उस युद्ध के पहले भी इतना बड़ा युद्ध नहीं हुआ था भारत में, उसके बाद भी नहीं हुआ। इसलिए तो उसे महाभारत कहते हैं। फिर सब युद्ध छोटे पड़ गए--आगे के भी और पीछे के भी।
जैनों की तो सारी की सारी जीवन-दृष्टि अहिंसा पर खड़ी है। इसमें अर्जुन ज्यादा अहिंसक मालूम पड़ता है; कृष्ण हिंसक मालूम पड़ते हैं। और कृष्ण भाग्यवाद सिखा रहे हैं--कि सब नियत है, परमात्मा पहले ही मार चुका है। और जैनों की तो पूरी चिंतना कर्म पर खड़ी है, भाग्य पर नहीं। मनुष्य चाहे तो अपने भाग्य को बदल सकता है--यह उनकी आधारभूमि है। और जैन तो कहते हैं, कोई परमात्मा है नहीं, जिसने भाग्य लिख दिया हो; जिसने तुम्हारे माथे पर नियति खोद दी हो कि ऐसा ही होगा। तुम जो निर्णय करोगे, वही होगा। तुम्हारा निर्णय ही तुम्हारी नियति है।
तो जैन क्या करें? अर्जुन को सातवें नर्क में नहीं डाला है; कृष्ण को सातवें नर्क में डाला है! अर्जुन तो निमित्त मात्र है। ठीक ही कहा था कृष्ण ने कि तू निमित्त मात्र है। वे तो कह रहे थे परमात्मा का निमित्त मात्र; जैनों ने कहा कि यह निमित्त मात्र है कृष्ण का। यह चालबाजी कृष्ण की है! यह तो बेचारा केवल फंस गया जाल में; यह जवाब नहीं दे पाया। इसलिए अर्जुन तो पड़ा है पहले नर्क में, कृष्ण गए सातवें नर्क में! अर्जुन तो छूट भी गया होगा; उसका तो समय पूरा हो गया। कृष्ण नहीं छूटे हैं, और नहीं छूटेंगे। जब तक यह पूरी सृष्टि नष्ट नहीं होगी और नयी सृष्टि निर्मित नहीं होगी, तब तक नहीं छूटेंगे!
लेकिन जो कृष्ण को मानते हैं, उन्होंने महावीर का उल्लेख करने योग्य
भी नहीं माना। उन्होंने अपने शास्त्र में महावीर का कोई उल्लेख नहीं किया है।
मेरे एक परिचित थे, ऋषभदास रांका। वे ही मुझे पहली दफा पूना लाए थे। जैन थे और गांधीवादी थे, तो गांधी का सर्व-धर्म-समन्वय उनके सिर में खूब भर गया था। मुझसे बोले कि मैं एक किताब लिख रहा हूं बुद्ध और महावीर पर। आप जरा देख जाएंगे तो अच्छा होगा। मैंने कहा, जरूर। जब उन्होंने अपनी किताब मुझे दिखाई, तो मैं शीर्षक पर ही अटक गया; आगे नहीं बढ़ा। फिर मैंने कहा, आगे मैं नहीं पढूंगा अब। शीर्षक थाः भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध!
मैंने पूछा, या तो दोनों को महात्मा लिखो या दोनों को भगवान।
वे कहने लगे कि दोनों को तो एक साथ कैसे रखूं? महावीर तो उपलब्ध हो गए हैं; बुद्ध उपलब्ध होने के करीब-करीब हैं, अभी हुए नहीं। महात्मा तक तो मान सकता हूं, लेकिन भगवान? क्योंकि भगवान के जो लक्षण महावीर ने कहे हैं वे बुद्ध में पूरे नहीं हो रहे हैं!
और बौद्धों से पूछो! बौद्धों ने जो लक्षण भगवान के कहे हैं वे महावीर में पूरे नहीं होंगे। क्योंकि लक्षण तो अपने-अपने गुरु को देख कर तय किए जाते हैं, वे दूसरे गुरु पर लागू कैसे होंगे? बौद्ध ग्रंथों में मजाक उड़ाया गया है महावीर का। क्योंकि जैन कहते हैं महावीर को त्रिकालज्ञ, तीनों काल का ज्ञाता। बौद्ध कहते हैं, जब भाग्य होता ही नहीं, तो भविष्य का कोई ज्ञाता कैसे हो सकता है? भविष्य का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब भाग्य होता हो।
अगर कोई तुमसे कहे कि कल सुबह ऐसा-ऐसा होगा कि तुम्हारे हाथ से चाय की प्याली गिर कर टूट जाएगी। तो इसका मतलब तो यह हुआ कि यह तय है अभी कि कल चाय की प्याली गिरेगी। तुम लाख कुछ भी करो, कुछ होने वाला नहीं; चाय की प्याली गिरनी है। अगर यह तय ही है तो फिर मनुष्य के हाथ में क्या रहा? फिर कर्म का सिद्धांत खंडित हो जाता है।

और बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि महावीर को कहते हैं जैन त्रिकालज्ञ! और हमने तो ऐसा सुना है--बौद्ध शास्त्र कहते हैं--कि एक बार महावीर ने एक ऐसे घर के सामने भिक्षा मांगी जिसमें कोई था ही नहीं! त्रिकालज्ञ--और ऐसे घर के सामने भिक्षा मांगने खड़े हो गए जिसमें कोई है ही नहीं! दरवाजा बंद है, और उनको इतना भी न दिखाई पड़ा त्रिकालज्ञ को कि भीतर कोई है नहीं!
और हमने तो ऐसा भी सुना है--बौद्ध शास्त्र कहते हैं--कि महावीर एक सुबह अंधेरे में, यात्रा को निकले होंगे एक गांव से दूसरे गांव को जाते समय, सोए हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ गया! कुत्ता भौंका, तब पता चला कि कुत्ता सोया है। त्रिकालज्ञ--और सामने पड़े सोए कुत्ते का पता नहीं चलता! ये कैसे त्रिकालज्ञ?
अगर तुम बौद्ध और जैनों से पूछो कि राम अवतार हैं, भगवान हैं? कैसे मानेंगे? सीता मैया की मौजूदगी अड़चन डालेगी। और धनुष लिए हुए खड़े हैं। भगवान--और धनुष लिए खड़ा हो, धनुर्धारी हो! और तुलसीदास तो कहते हैं कि मैं तो धनुर्धारी के प्रेम में हूं। वे कृष्ण की प्रतिमा के सामने झुकते नहीं; कहते हैं कि जब तक धनुष-बाण हाथ नहीं लोगे, मैं सिर नहीं झुकाऊंगा। जैसे धनुष-बाण कोई प्रतीक है भगवान का, कि बिना धनुष-बाण के कोई भगवान नहीं हो सकता!
और परशुराम! उनका तो फिर कहना ही क्या! उन्होंने पृथ्वी को अठारह बार, कहते हैं, क्षत्रियों से विहीन कर दिया। गजब के ब्राह्मण! महाब्राह्मण कहना चाहिए। फरसा लिए घूम रहे हैं क्षत्रियों को काटते। हिंसा ही हिंसा जिनके जीवन का स्वर है। इनको हिंदू तो अवतार गिनते हैं।
तुम जरा यहीं गौर करो, और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। बाहर की तो बात छोड़ दो, तुम यहां भी तय नहीं कर पाओगे। और मैं तो कहता हूं, जीसस को भी जोड़ो, और मोहम्मद को भी जोड़ो, और जरथुस्त्र को भी जोड़ो, और मूसा को भी जोड़ो। मैं तो तुम्हें एक विराट दृष्टि दे रहा हूं। और तुम्हारे सबके भीतर संकीर्ण दृष्टियां बंधी हैं। उन संकीर्ण दृष्टियों में बंधे हुए तुम संकीर्ण रह जाओगे। मैं तो कहता हूं, इतनी खुली आंख होनी चाहिए, इतना विराट हृदय होना चाहिए कि राम भी समा जाएं, परशुराम भी समा जाएं--फरसा सहित! और मूसा भी, और मोहम्मद भी, और महावीर भी, और बुद्ध भी, और कृष्ण भी, कबीर भी, नानक भी। सारी पृथ्वी हमारी है। इस पृथ्वी पर खिले सारे फूल हमारे हैं। बगिया को छोटा क्यों करते हो? और एक ही फूल को फूल क्यों कहते हो?
अब जिसने गुलाब को ही फूल मान लिया और जो कहे कि मैं सिर्फ गुलाब को ही फूल मानता हूं, स्वभावतः कमल उसके लिए फूल नहीं रहा, चंपा उसके लिए फूल नहीं रहा, चमेली उसके लिए फूल नहीं रहा। रजनीगंधा खिलेगी, रात उसकी सुगंध से भर जाएगी, लेकिन जो गुलाब को ही फूल मानता है वह अपनी नाक पर रूमाल रख कर निकल जाएगा। वह इसको दुर्गंध कहेगा। वह इसे सुगंध नहीं मान सकता। सुगंध तो होती है गुलाब की!
तुम क्यों फूलों पर तय हो जाते हो? महावीर एक ढंग के फूल हैं, बुद्ध और ढंग के फूल हैं, परशुराम और ढंग के फूल हैं, राम और ढंग के फूल हैं, कृष्ण और ढंग के फूल हैं। इस परमात्मा की बगिया में बहुत फूल हैं। और इसलिए प्यारा है यह जगत! सतरंगा है। इंद्रधनुषी है।
अब तक तुम्हारी जो दृष्टियां हैं, इकतारे जैसी हैं। बस बैठे इकतारा बजा रहे। और भी वाद्य हैं, जिनमें बहुत तार होते हैं। और भी वीणाएं हैं; इकतारा ही सब कुछ नहीं है। लेकिन अब तक के धर्म इकतारे थे, एकांगी थे, एक-आयामी थे। मैं तुम्हें जो धर्म की दृष्टि दे रहा हूं बहु-आयामी है।
श्रवण, ये छोटी बातें छोड़ो। कौन आगे, कौन पीछे! यह भाषा ही भ्रांत है।
यह भाषा ही पाप की भाषा है--आगे और पीछे। क्योंकि महत्वाकांक्षा पाप है।
आकांक्षा से जगो, अहंकार से जगो। सारे अस्तित्व को स्वीकार करो। और इस अस्तित्व में जितने अनूठे-अनूठे पुरुष हुए हैं, सबको पीयो! सबका स्वाद लो।
सबका स्वाद लोगे, तो तुम्हारे प्राणों में भी अपूर्व नाद का जन्म होगा।
श्रवण, तुम्हें तकलीफ है कि यहां विदेशी साधक हैं। इंजीनियर, डाक्टर, विचारक, द्रष्टा सारी दुनिया से पूना भागे आ रहे हैं! क्या वे हमसे आगे निकल जाएंगे?

तुम अपने को अलग क्यों करते हो? जैसे वे आ रहे हैं, वैसे तुम आ रहे हो।
अब और अलग करना हो, तो पंजाबी अलग हो जाएगा, और गुजराती अलग हो जाएगा, और महाराष्ट्रियन अलग हो जाएगा। और फिर और अलग करना हो तो करते जाओ अलग, फिर पंजाब से आया हुआ सिक्ख अलग है और हिंदू अलग है। फिर यह अलग करना कहां रुकता है? यह तो कहीं भी नहीं रुकता। इसको अगर तुम गौर से खींचते जाओगे, तो आखिर में पाओगेः सवाल यह है कि मैं आगे रहूंगा कि कोई और आगे हो जाएगा? अगर तुम इसको खींचते गए, खींचते गए, तो निष्पत्ति, तार्किक निष्पत्ति यह होगी कि मैं आगे रहूंगा कि दूसरा आगे हो जाएगा?
मगर धर्म तो आगे होने की दौड़ ही नहीं है। यह तो अपने को मिटा देने की कला है; अपने को विसर्जित कर देने की कला है।
और अगर तुम्हें लग रहा है कि विदेशियों ने यहां जो प्रेम, करुणा, समर्पण का भाव सीखा है, आत्मसात किया है, वह आश्रम की गतिविधियों में स्पष्ट नजर आता है--तो तुम भी सीखो। तो तुम भी वैसा ही आत्मसात करो--अहिंसा को, करुणा को, प्रेम को, सेवा को। तो तुम भी वैसे ही डूबो।
और उनको विदेशी क्यों कहते हो? या तो हम सब विदेशी हैं। अगर परम चिंतन
की बात करो, तो हम सब विदेशी हैं। हंसा, उड़ चल वा देस! तो यहां हमारा किसी का भी घर नहीं है; देश किसी का भी नहीं है यहां। जाना है हमें परलोक, पाना है परमात्मा को--उस दूसरे किनारे। इस किनारे पर हमारा घर नहीं है, सिर्फ पड़ाव है, बीच का पड़ाव है। ठहर गए हैं दो क्षण को, तंबू बांध लिया है। मगर कल सुबह होगी और उखाड़ना पड़ेगा तंबू। यहां तो सभी को मर जाना है, यह देश कैसा? यह देश नहीं है अपना। या तो इस अर्थ में अगर तुम विदेशी शब्द का उपयोग करो, तो मैं राजी हूं। लेकिन तब श्रवण, तुम भी विदेशी हो।
और अगर इस अर्थ में न कर सको, कि तुम देशी और दूसरे जो आए हैं--कोई इंग्लैंड से, कोई जर्मनी से, कोई इटली से, कोई हालैंड से, कोई जापान से--वे विदेशी हैं, तो फिर तुम गलत भाषा का उपयोग कर रहे हो। फिर कोई विदेशी नहीं है। फिर हम सब एक पृथ्वी के वासी हैं। लद गए दिन देशों के, और लद गए दिन राजनीति के। भविष्य कुछ और ला रहा है--कुछ नया आ रहा है! और तुम उस भविष्य की ही पहली झलक यहां देख रहे हो। तुम चौंकते भी नहीं।
और तुम्हारी ही ऐसी भूल नहीं है; यहां पत्रकार आते हैं--खासकर भारतीय पत्रकार--उनका पहला सवाल यही कि यहां इतने विदेशी क्यों हैं, देशी क्यों नहीं? लेकिन जर्मन नहीं पूछता कि यहां इतने इटालियन क्यों हैं! इटालियन नहीं पूछता कि यहां इतने डच क्यों हैं! डच नहीं पूछता कि यहां इतने जापानी क्यों हैं! यह मूढ़ता तुम्हीं को क्यों पकड़ती है?
और विदेशी ज्यादा दिखाई पड़ेंगे--स्वभावतः उसमें डच सम्मिलित है, स्वीडिश सम्मिलित है, स्विस सम्मिलित है, फ्रेंच सम्मिलित है, इटालियन सम्मिलित है, जर्मन, जापानी, चीनी, रूसी, कोरियन, आस्ट्रेलियन, उसमें सारी दुनिया सम्मिलित है। और भारत तो फिर एक छोटी सी चीज रह गई। तो फिर तुमको अड़चन होती है कि यहां भारतीय कम क्यों हैं? जैसे तुम्हें कुछ हीनता का बोध होता है।
यह सारी पृथ्वी का आश्रम है। यह तो संयोग की बात है कि यह भारत की सीमा में पड़ रहा है; सिर्फ संयोग की बात है। यह पाकिस्तान में हो सकता है, यह ईरान में हो सकता है, यह कहीं भी हो सकता है। यह बिल्कुल सांयोगिक है इसका यहां होना या वहां होना।
मेरी देशना सार्वलौकिक है, सार्वभौम है।
लेकिन हमें हर चीज में यह उपद्रव सिखाया गया है। और अच्छे-अच्छे लोग उपद्रव सिखा गए हैं। जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं, उनमें भी हमारी मौलिक भूलों के आधार बने ही रहते हैं, मिटते नहीं। देशी-विदेशी का भाव जाता ही नहीं।
छोड़ो यह भाव! सब विदेशी या सब देशी--दो में से कुछ एक चुन लो। मैं दोनों में से किसी से भी राजी हूं। मगर खंड न करो, अखंड रहने दो।
अब तुम पूछ रहे होः "क्या आपकी संपदा से भारत-भूमि वंचित रह जाएगी?"
फिर वही भारत-भूमि वापस आ जाती है! तुम्हारा दिमाग विक्षिप्त तो नहीं है? यह भारत-भूमि, भारत-भूमि क्या तुमने लगा रखी है? भूमि को कुछ भी पता नहीं है। जरा भूमि से तो पूछो! जरा मिट्टी भारत की उठा कर और चीन की मिट्टी

उठा कर और जापान की मिट्टी उठा कर, जरा तय करने की कोशिश करो कि कौन सी मिट्टी भारत की है। और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। मिट्टी मिट्टी है। पत्थर पत्थर हैं। पानी पानी है। आदमी आदमी है। पुरुष पुरुष हैं, स्त्रियां स्त्रियां हैं। लेकिन हम विशेषणों के आदी हो गए हैं।
अब तुम्हें यह डर लग रहा है कि यहां इतने विदेशी आ रहे हैं, कहीं इसके कारण, जो सत्य मैं तुम्हें दे रहा हूं, वह विदेशी न लूट ले जाएं!
यह सत्य कुछ लूटने वाली चीज थोड़े ही है। जो लेगा, उसे मिलेगा। और तुम इसी चिंतना में न पड़े रहो। तुम भी जल्दी करो। तुम भी पीयो। और जिनको प्यास है, वे आ रहे हैं। जिनको इस देश में प्यास है, वे भी आ रहे हैं। जिनको बाहर के देशों में प्यास है, वे भी आ रहे हैं।
और स्वभावतः इस तथाकथित भारत के बाहर प्यास ज्यादा है। उसका कारण है। क्योंकि भारत को तो यह भ्रांति है पहले से कि हम तो धार्मिक हैं ही। अब जिसको यह ख्याल हो कि मैं स्वस्थ हूं ही, वह चिकित्सक के पास क्यों जाए? किसलिए जाए? कोई कारण नहीं उसका जाने का। जिसको एहसास होगा कि मैं बीमार हूं, वह चिकित्सक के पास जाएगा।
भारत को यह भ्रांति है कि हमारे पास तो धर्म है ही। हमारा तो धंधा ही धर्म है। हमारा तो काम ही यह है। हमें तो यही काम दिया है भगवान ने कि सारी दुनिया को धर्म का संदेश दें। हम तो धर्म के संदेशवाहक हैं, धर्म हो या न हो!
एक अंग्रेज यात्री ने लिखा है कि दिल्ली स्टेशन पर वह उतरा और एक सरदारजी ने, जो कि ज्योतिषी हैं, उसका हाथ पकड़ लिया। वह हाथ छुड़ाए, मगर सरदार! सरदार ऐसे कोई हाथ छोड़ न दे। फिर वह संकोचवश, एकदम मारने-पीटने को उतारू होना भी ठीक न मालूम पड़े, नया-नया आया है और सरदारजी उसकी सुनते ही नहीं, उसकी रेखाएं देख कर उसका भविष्य बताना शुरू कर दिया। भविष्य बोले ही जा रहे हैं। वह कहता है, मुझे भविष्य जानना नहीं है। मुझे भविष्य में कोई रस नहीं है। मेरी कोई मान्यता नहीं है भविष्य की। आप कृपा कर मेरा हाथ छोड़ो! मगर सरदारजी उसकी सुन ही नहीं रहे हैं! सुन लें तो वे सरदार ही नहीं फिर! और हाथ ऐसा कस कर पकड़ा है कि छुड़ा भी नहीं सकता। और शिष्टाचारवश भी ऐसा लगता है कि यह आदमी कोई बुरा तो कर नहीं रहा है। और जब दस-पंद्रह मिनट सरदारजी धुआंधार बोले ही गए, तो उसने कहा, भाई, मुझे जाने भी दो, मुझे जाना है! तो सरदारजी ने कहा कि दो रुपये फीस! उसने कहा, मैं पहले से कह रहा हूं कि मुझे जानना नहीं है। यह तो जबरदस्ती है। सरदारजी ने मालूम उससे क्या कहा! उसने कहा, अरे भौतिकवादी! दो रुपये के पीछे मरे जा रहे हो!
अब इसमें भौतिकवादी कौन है? सरदार दो रुपये लेकर माना। छोड़ा नहीं पीछा। पीछे ही चलता रहा। चिल्लाता रहा कि अरे भौतिकवादी! अरे भ्रष्ट! अरे दो रुपये के पीछे मरने वाले! मैंने तुम्हारा भविष्य बताया, पंद्रह मिनट खराब किए!
उस आदमी ने सोचा कि दो रुपये देकर झंझट मिटा लेना ठीक, क्योंकि भीड़ इकट्ठी होने लगी। जैसे ही उसने दो रुपये दिए, सरदार ने फिर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि कुछ बातें और रह गई हैं जो मैं बताऊंगा। उसने कहा, अब मुझे बिल्कुल नहीं जाननी। और अगर बतानी हों तो ख्याल रखना, फिर दो रुपये मत मांगने लगना!
इस देश से ज्यादा भौतिकवादी देश खोजना मुश्किल है। लेकिन धार्मिक होने का अहंकार है। धार्मिक होने के वस्त्र ओढ़े हुए हैं। लोग राम-नाम की चदरिया ओढ़े हुए हैं। और सोचते हैं कि हमें क्या जरूरत है! हमें तो धर्म का पता ही है! पश्चिम का सौभाग्य है कि उसको यह बोध है कि उसे धर्म का पता नहीं है। और तुम्हारा यह दुर्भाग्य है कि तुम्हें यह ख्याल है, भ्रांति है कि तुम्हें धर्म का पता है। और तुम्हें यह भ्रांति क्यों? क्योंकि तुम्हें गीता कंठस्थ है। क्योंकि तुम्हें वेद याद हैं। क्योंकि तुम्हें यह ख्याल है कि सारे अवतारी पुरुष तुम्हारे यहां पैदा हुए। यह सारी भ्रांतियों का लंबा इतिहास है, जो तुम्हारी छाती पर पत्थर की तरह बैठा हुआ है। और यही तुम्हारी अकड़ है। और तुम्हारे पास अकड़ को कुछ है भी नहीं! यही थोथी अकड़ बस तुम्हारे अहंकार को फुला कर रखे हुए है। इसलिए तुम आओ क्यों! गीता घर पढ़

लेते हो, तिलक-चंदन लगा लेते हो, आरती उतार लेते हो, यज्ञ-हवन कर लेते हो। तुम्हें आने की जरूरत क्या!
पश्चिम के आदमी के जीवन में एक अपूर्व घटना घट रही है और वह यह कि वह बहुत तथ्यवादी हो गया है। विज्ञान का यह परिणाम है। विज्ञान ने तीन सौ वर्षों में पश्चिम को तथ्यवादी होना सिखाया है। मिथ्या धारणाएं नहीं, आकाश की बातें नहीं--पृथ्वी की बातें! और इन तथ्य को जानने की प्रक्रिया का जो अंतिम परिणाम हुआ है वह यह कि पश्चिम को यह दिखाई पड़ने लगा कि हमारे भीतर कुछ कमी है। यह तथ्य बोध में आने लगा। हम इसे बाइबिल से ढांक न सकेंगे। हम इसे जीसस के वचनों को कंठस्थ करके छिपा न सकेंगे।
यह बोध बड़ा सौभाग्य है, क्योंकि यह बोध की पीड़ा उसे तलाश में ले जा रही है। वह दूर-दूर देशों की यात्रा कर रहा है--जहां संभव हो, जहां से खबर आए, जहां से सूरज की किरण मिले, जहां एक दीया जला मिले। उसे पता हो गया है कि वह अमावस की अंधेरी रात में रह रहा है।
तुम आंख बंद किए बैठे हो और सोचते हो कि पूर्णिमा है। तुम जोर-जोर से चिल्ला रहे हो कि पूर्णिमा है! पूर्णिमा है! पूर्णिमा है! तुम आंख खोल कर देखते नहीं। आंख खोल भी नहीं सकते, क्योंकि देखोगे, तो तुमको अमावस दिखाई पड़ेगी। इस देश में घना अंधेरा है। तुम्हारे पंडित अंधे हैं, उन्हें कुछ पता नहीं है। और अंधों के पीछे अंधे चल रहे हैं। नानक ने कहा, अंधा अंधा ठेलिया! अंधे अंधों को धक्का दे रहे हैं; अंधे अंधों को चला रहे हैं। दोनों कूप पड़ंत! दोनों कुएं में गिरेंगे। मगर कुएं में भी गिर जाएं, तो भी वे कहेंगे कि मानसरोवर आ गए! कुएं में भी गिर जाएं, डुबकी भी खाएं, तो भी कहेंगे कि अहा, कैसा आनंद आ रहा है!
तुम्हारी ये भ्रांत धारणाएं हैं। इससे बड़े कुएं में और तुम गिरोगे कहां जहां तुम आज गिरे पड़े हो? और अंधेरा क्या होगा? और दीनता क्या होगी? और दरिद्रता क्या होगी? इससे ज्यादा और रुग्ण अवस्था क्या होगी? मगर खोपड़ी में एक वहम है, वह वहम नहीं आने देता।
लोग मुझे पत्र लिखते हैं। एक जैन ने ग्वालियर से चार-छह दिन पहले ही पत्र लिखा, कि मैं बीस वर्ष से साधना कर रहा हूं। काफी प्रगति हुई है, अनुभव भी काफी हो रहे हैं। कुंडलिनी भी जग रही है। प्रकाश का भी अनुभव होता है। लेकिन सोचता हूं, शायद आपके पास आने से और भी लाभ हो! लेकिन पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि आप कौन सा मंत्र देते हैं। क्योंकि मंत्र मैं आपसे नहीं ले सकता हूं। मंत्र तो मैंने लिया ही हुआ है।
मैंने उनको लिखवायाः यहां आने की कोई जरूरत ही नहीं है। प्रकाश भी हो रहा है; कुंडलिनी भी जग रही है; मंत्र भी लिया हुआ है। अब और यहां आने की क्या जरूरत है?
और मंत्र भी ले नहीं सकते हैं। गुरु भी बना नहीं सकते हैं। क्योंकि गुरु तो मैं पहले ही, बीस साल पहले किसी को बना चुका हूं। तो फिर यहां आने का सवाल क्या है?
इस देश में हर एक का गुरु है और हर एक ने मंत्र लिया हुआ है। और कुछ उपलब्ध नहीं हुआ है तुम्हारे मंत्रों से और तुम्हारे गुरुओं से। मगर यह कहने के लिए भी छाती चाहिए, बड़ी छाती चाहिए कि मुझे कुछ उपलब्ध नहीं हुआ है। उनके पत्र से जाहिर है कि कुछ उपलब्ध नहीं हुआ है, नहीं तो यहां आने का सवाल क्या? जब तुम ठीक रास्ते पर चल पड़े हो और रोशनी भी आने लगी, आनंद भी आने लगा, तो अब चलते जाओ।
मैंने उनको लिखवा दिया कि मजे से अपने रास्ते पर चलो। मुझे तो उनको रास्ता दिखाने दो, जिनके पास मंत्र नहीं है, गुरु नहीं है, राह नहीं है, जो अंधेरे में खड़े हैं। तुम तो काफी प्रकाश में हो; तुम्हें तो राह मिल ही गई; अब उसी को चले चलो। नाक की सीध में चलते जाना, पहुंच जाओगे!
एक सज्जन कुछ दिन पहले यहां आए। तीस साल से हिमालय रहे हैं, तो अकड़ आ
गई हिमालय की। तीस साल पहले घर छोड़ा था। जवान थे, अब तो बूढ़े हो गए। कहने लगे कि परम आनंद मिल रहा है हिमालय में। फिर मैंने कहा, तुम यहां काहे के लिए परेशान हुए हो? परम आनंद से ऊपर तो और कुछ है नहीं!
वे थोड़े झिझके। कहा कि नहीं, सोचा शायद... ।

मैंने कहा, शायद का कोई सवाल ही नहीं। अगर शायद का कोई सवाल हो, तो पहले परमानंद के संबंध में तय हो जाना चाहिए--कि परमानंद मिल रहा है कि नहीं मिल रहा?
उन्होंने कहा, अब आप अगर आग्रह ही करते हैं, तो शायद मुझसे गलती हो गई। परमानंद नहीं कहना चाहिए, आनंद मिल रहा है।
तो मैंने कहा कि आनंद में भी कमोबेश होता है? कम आनंद, ज्यादा आनंद-- ऐसी भी कोई चीज होती है? जैसे वर्तुल पूरा होता है या फिर वर्तुल नहीं होता। ऐसे ही आनंद पूरा होता है। परम तो अनावश्यक विशेषण है। आनंद तो परम है ही।
वे थोड़े और मुश्किल में पड़े। उन्होंने कहा कि तो आप ऐसा मान लो कि नहीं मिल रहा आनंद। मैंने कहा, मैं क्यों मानूं? आपको मिल रहा हो और मैं मानूं कि नहीं मिल रहा है, मुझे क्यों अज्ञान में डालते हैं? आपको मिल रहा है, तो जरूर मिल रहा होगा। लेकिन जिसको आनंद मिल रहा हो वह हिमालय से यहां की यात्रा किसलिए करेगा?
मैंने कहा, मैं तो आपसे बात भी नहीं करूंगा, जब तक आप अंगीकार न करें सत्य को कि आपको आनंद का कोई पता नहीं। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ रहा है, आपकी आंखों में कोई आनंद नहीं है। तीस साल गंवाए हैं। मगर अहंकार मानने को राजी नहीं होता।
उन्होंने चारों तरफ देखा। इसीलिए मैं लोगों से अकेले में नहीं मिलता। क्योंकि अकेले में वे जल्दी स्वीकार कर लेते हैं। मगर उस स्वीकृति का कोई मूल्य नहीं है। चारों तरफ देखा कि अब कैसे कहें! लेकिन बड़ी दुविधा भी हो गई। इतनी दूर आए हैं। कई दिनों से आने का कहते थे, लिखते थे। आ भी गए। कहा कि ठीक कहते हैं आप। सच तो यही है कि आनंद का कुछ पता नहीं चला। जो-जो कहा, किया। लेकिन कुछ मिला नहीं। इसीलिए आपके पास आया हूं।
मैंने कहा, अब कोई बात हो सकती है। अब आगे बढ़ा जा सकता है। तुम बीमार नहीं, और मैं निदान करूं; तुम बीमार नहीं, और मैं उपचार करूं; तुम बीमार नहीं, और मैं औषधि दूं--तो मुझसे पागल और कौन होगा!
भारत की यही कठिनाई है। श्रवण, यहां सारे लोग ब्रह्मज्ञानी हैं! जो देखो वही ब्रह्मज्ञान की चर्चा में लीन है! सुनते-सुनते ब्रह्मज्ञान की बातें सभी को कंठस्थ हो गई हैं। तुलसीदास की चार चौपाइयां याद हो गईं, कि बस। रहीम के दोहे याद हो गए, कि बस। क्यों जाना कहीं, क्यों खोजना!
और फिर मेरे जैसे लोगों के पास आना तो और भी कठिन हो जाता है, क्योंकि मैं तुम्हें जड़ों से हिलाता हूं। मैं पत्ते-पत्ते नहीं काटता। पत्ते काटने में मेरा भरोसा नहीं है; जड़ें ही काटने में मेरा भरोसा है। क्योंकि जड़ें ही काटें, तो क्रांति। पत्ते काटने से तो फिर ऊग आएंगे; और घने हो जाएंगे।
भारत चूकेगा, अगर अपने अहंकार को छोड़ने को लोग राजी न हों तो। जरूर चूकेगा। अहंकार बाधा है। फिर वह भारतीय का अहंकार हो कि गैर-भारतीय का, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अहंकार जहां है, वहां बाधा है।
और तुम पूछते होः "क्या भविष्य में भी भारत-भूमि पर इसी तरह महान पुरुषों का अवतार होता रहेगा?"
तुम कहां की फिजूल की बातों में पड़े हो! तुम्हें अपनी कुछ फिक्र है कि नहीं? भविष्य से तुम्हें क्या लेना-देना? अतीत में इतने महापुरुष हो गए, तुम्हें क्या लाभ हुआ? और भविष्य में भी होते रहे मान लो, तो तुम्हें क्या लाभ होगा?
तुम कुछ पी लो। तुम कुछ जी लो। तुम औरों की चिंता न करो। अपने माहिं टटोल! अपनी स्थिति समझो। तुम्हारा उत्तरदायित्व तुम्हारे प्रति है। अब भारत में आगे होंगे कि नहीं होंगे, छोड़ो उन पर जो भारत में आगे आएंगे। वे जानें, उनका काम जाने। अतीत में इतने महापुरुष हुए, क्या तुमने लाभ लिया? जब अतीत के महापुरुषों तक का लाभ नहीं ले सके, तो भविष्य के तो अभी हुए ही नहीं हैं, उनका तो तुम कैसे लाभ लोगे? जो फूल खिल गए उनकी गंध नहीं ले रहे हो, तो जो फूल कभी खिलेंगे भविष्य में उनकी क्या तुम गंध लोगे?
और फूल खिलते रहेंगे। यह पृथ्वी कभी सूनी नहीं होती। परमात्मा किसी न किसी रूप में उतरता रहता है। क्योंकि परमात्मा ने अभी आदमी के प्रति आशा

नहीं खोई है। अभी परमात्मा आदमी से निराश नहीं हुआ है। अभी परमात्मा ने मनुष्य से वैराग्य नहीं लिया है। अभी मनुष्य से परमात्मा का राग है, प्रीति है, प्रेम है। लेकिन तुम इन उलझनों में न पड़ो।
श्रवण, सुनो! तुम्हें नाम दिया है श्रवण। सुनो! जी भर कर सुनो! गुनो!
और सुनो और गुनो ही नहीं, जीओ भी। तुम्हारे भीतर का दीया जल जाए।
मेरी सारी निष्ठा व्यक्ति में है; समाज में नहीं, राष्ट्र में नहीं, अतीत में नहीं, भविष्य में नहीं।
मेरी सारी निष्ठा वर्तमान में और व्यक्ति में है। क्योंकि व्यक्ति ही रूपांतरित होता है, समाज रूपांतरित नहीं होते। क्रांति व्यक्ति में होती है, क्योंकि व्यक्ति के पास आत्मा है। जहां आत्मा है, वहां परमात्मा उतर सकता है। समाज की कोई आत्मा ही नहीं होती, वहां परमात्मा की कोई संभावना नहीं है।

दूसरा प्रश्नः तथागत बुद्ध के अनुसार जन्म दुख है, मरण दुख है, जीवन दुख है। आपके अनुसार जन्म क्या है, मृत्यु क्या है, जीवन क्या है? और उपनिषदों की इस प्रार्थना "मृत्योर्मा अमृतं गमय" का क्या आशय है? यह किस मृत्यु से किस अमृत की ओर जाना है? कृपया समझाएं।

चैतन्य कीर्ति! बुद्ध कहते हैंः जन्म दुख है, मरण दुख है, जीवन दुख है। मैं उनसे राजी भी, राजी नहीं भी। एक अर्थ में राजी, एक अर्थ में राजी नहीं। अहंकार का जन्म दुख है, अहंकार का मरण दुख है, अहंकार का जीवन दुख है। इस अर्थ में मैं राजी। लेकिन आत्मा का जीवन आनंद है। आत्मा का जन्म आनंद है, आत्मा की मृत्यु आनंद है।
आत्मा का जन्म आनंद है, क्योंकि आत्मा का जन्म होता ही नहीं, आत्मा जन्म के पहले है। आत्मा का जीवन आनंद है, क्योंकि आत्मा केवल साक्षी है, भोक्ता नहीं। और आत्मा की मृत्यु भी आनंद है, क्योंकि आत्मा की कोई मृत्यु होती ही नहीं, आत्मा अमृत है।
बुद्ध ने अहंकार के आधार पर कहा है कि जीवन दुख है, जन्म दुख है, मरण दुख है।
तुम्हारा जीवन दुख है, मेरा जीवन दुख नहीं है। तुम अगर अहंकार के केंद्र पर जी रहे हो, तो तुम्हारे चारों तरफ नरक पैदा होगा। अहंकार झूठ है, असत्य है, मिथ्या है। उससे बड़ा कोई असत्य नहीं है। और असत्य के आधार पर जो जीवन का भवन खड़ा करेगा वह कागज की नाव में यात्रा करने की कोशिश कर रहा है, कि पत्ते के महल बना रहा है--ताश के पत्तों के घर--जरा सा झोंका हवा का आया कि गए! इसलिए पछतावा होगा, रोना होगा, पीड़ा होगी। जो भी बनाओगे, मिट जाएगा। जो भी जुड़ाओगे, छिन जाएगा। सब जीवन पानी के बबूलों जैसा होगा।
लेकिन कारण जीवन नहीं है, कारण तुम्हारा अहंकार है। इसलिए बुद्ध ने कहा, मैं-भाव छोड़ दो। मैं हूं ही नहीं, शून्य हूं--ऐसा जान लो, तो निर्वाण। जिसे बुद्ध निर्वाण कहते हैं, उसे ही मैं आत्मा कह रहा हूं, उसे ही परम जीवन कह रहा हूं। मैं छूट जाए तो रस ही रस है। रसो वै सः। फिर परमात्मा की रसधार उतरनी शुरू होती है। अहंकार चट्टान की तरह रोक रहा है उसके झरने को फूटने से।
तो चैतन्य कीर्ति, ख्याल रखना, बुद्ध से इस अर्थ में तो मैं राजी हूं। अहंकार का जन्म दुख। और अहंकार का ही जन्म होता है, क्योंकि झूठ का ही जन्म होता है। सत्य तो सदा है, उसका कोई जन्म नहीं होता। और झूठ ही मरता है। सत्य कैसे मर सकता है? सत्य तो शाश्वत है। और सत्य का जीवन कैसे दुख हो सकता है? सत्य का जीवन तो आनंद ही होगा। सत्य की आभा आनंद की होगी। सत्य तो आनंद को ही विकीर्णित करता है। सत्य में तो आनंद के फूल पर फूल खिलते चले जाते हैं। सत्य तो मदिरा है मस्ती की। अहंकार तो कांटा है छाती में गड़ा हुआ; घाव करता है, मवाद पैदा करता है, नासूर बनाता है; कीड़े पड़ जाते हैं। और तुमने पूछा कि "उपनिषदों की इस प्रार्थना--मृत्योर्मा अमृतं गमय--
का क्या आशय है?"

उपनिषद की यह प्रार्थना संसार की श्रेष्ठतम प्रार्थना है। इतनी छोटी, इतनी गहरी, इतनी विराट कोई और प्रार्थना नहीं है। इस प्रार्थना में सब आ गया है।
पूरी प्रार्थना हैः तमसो मा ज्योतिर्गमय! हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।
याद दिला दूं कि अंधकार अर्थात अहंकार। यह बाहर के अंधकार की बात नहीं है। क्योंकि बाहर के अंधकार के लिए प्रभु से क्या प्रार्थना करनी! वह तो बिजली दफ्तर में गए, तो भी काम हल हो जाएगा। घासलेट का तेल काफी है। इसके लिए प्रभु से क्या प्रार्थना करनी! बाहर का अंधकार तो बाहर की रोशनी से मिट जाता है।
लेकिन भीतर एक अंधकार है, वह बाहर की रोशनी से नहीं मिटता। सच तो यह है
कि बाहर जितनी रोशनी होती है, उतना ही भीतर का अंधकार स्पष्ट होता है, रोशनी के संदर्भ में और भी उभर कर प्रकट होता है। जैसे रात में तारे दिखाई पड़ने लगते हैं अंधेरे की पृष्ठभूमि में, दिन में खो जाते हैं। ऐसे जितना ही बाहर प्रकाश होता है, जितनी भौतिकता बढ़ती है, उतना ही भीतर का अंधकार स्पष्ट होता है। जितनी बाहर समृद्धि बढ़ती है, उतनी ही भीतर की दरिद्रता पता पड़ती है। जितना बाहर सुख-वैभव के सामान बढ़ते हैं, उतना ही भीतर का दुख सालता है।
इसलिए मैं एक अनूठी बात कहता हूं जो तुमसे कभी नहीं कही गई है। मैं चाहता हूं, पृथ्वी समृद्ध हो, खूब समृद्ध हो। धन ही धन का अंबार लगे। कोई गरीब न हो। क्यों? क्योंकि जितना धन का अंबार लगेगा बाहर, उतना ही तुम्हें भीतर की निर्धनता का बोध होगा। जितने तुम्हारे पास वैभव के साधन होंगे, उतनी ही तुम्हें पीड़ा मालूम होगी कि भीतर तो सब खाली-खाली है, रिक्त-रिक्त।
आज पश्चिम में, जहां बाहर का धन, बाहर का वैभव अपनी अंतिम पराकाष्ठा
को छू रहा है, वहां एक ही बात की चर्चा है कि आदमी के भीतर इतनी रिक्तता क्यों है, इतना खालीपन क्यों है? भारत में इसकी कोई बात ही नहीं करता कि आदमी के भीतर रिक्तता क्यों है। भीतर की खाक बात करें, अभी बाहर की रिक्तता तो भरती नहीं! अभी पेट की रिक्तता तो भरती नहीं, आत्मा की रिक्तता की बात भी करें तो किस मुंह से करें! अभी पेट खाली है, रोटी चाहिए। अभी जीसस का वचन कि आदमी केवल रोटी के सहारे नहीं जी सकता, जंचेगा नहीं। सुन भी लोगे तो भी जंचेगा नहीं। अभी तो तुम कहोगे, पहले रोटी तो मिले, फिर सोचेंगे कि रोटी के सहारे जी सकता है या नहीं। यह भी रोटी मिल जाए उसके बाद ही सोचा जा सकता है।
मैं जीसस के वचन में एक वचन और जोड़ देना चाहता हूं। अधूरा है वह वचन। असल में अतीत के सारे वचन एक अर्थों में अधूरे हैं। जीसस कहते हैंः मनुष्य रोटी के सहारे ही नहीं जी सकता। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मनुष्य रोटी के बिना भी नहीं जी सकता। रोटी चाहिए, मगर रोटी पर्याप्त नहीं है। जरूरी है, आवश्यक है--काफी नहीं है। रोटी मिल जाए, पेट भरा हो, तो एक नई भूख का अनुभव होता है--आत्मा की भूख। बाहर प्रकाश हो, तो एक नये अंधकार की प्रतीति होती है--भीतर का अंधकार। उस अंधकार का नाम अहंकार है। उस अहंकार के कारण ही दिखाई नहीं पड़ता कि मैं कौन हूं। यह मैं की गलत धारणा ही हमें दिखाई नहीं देने देती उसको जो हम वस्तुतः हैं।
इसलिए उपनिषद के ऋषि की प्रार्थना ठीक है कि हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल। असतो मा सद्गमय! हे प्रभु, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल।
इसमें एक तर्क-सरणी है। अंधकार से प्रकाश का अर्थ होता है अहंकार से आत्मा की ओर। आत्मा प्रकाश है, अहंकार अंधकार है। फिर दूसरा कदमः असत्य से सत्य की ओर ले चल।
अहंकार असत्य है। है नहीं, भासता है। कितना हम उछालते हैं अहंकार को,
जो है ही नहीं! जो नहीं है, उसके पीछे मर जाते हैं, कट जाते हैं। जरा किसी का धक्का तुम्हें लग जाए तो तुम फौरन कहते हो, जानते हो, मैं कौन हूं! खुद भी पता नहीं है कि तुम कौन हो।

प्रसिद्ध दार्शनिक शापेनहार के जीवन में यह घटना है कि वह सुबह-सुबह जल्दी ही बगीचे में घूमने चला गया एक दिन। उसने सोचा था कि सुबह होने के करीब ही है, लेकिन अभी आधी रात ही थी। वह बगीचे में घूमने लगा; कोई न था, सन्नाटा था। जोर-जोर से अपने से पूछने लगा, मैं कौन हूं? अभी-अभी उपनिषद पढ़ रहा था। शापेनहार उपनिषदों से इतना प्रभावित हुआ था कि उनको सिर पर लेकर नाचा था। उपनिषदों ने एक जिज्ञासा उसके मन में जगाई थी कि मैं कौन हूं? वह गूंज रही थी उसके भीतर। उसी के कारण वह सो भी नहीं सका, क्योंकि बड़ी बेचैनी पैदा हो गई कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! नाम तो मैं नहीं हूं निश्चित ही। रूप भी मैं नहीं हूं, क्योंकि बचपन में एक रूप था, जवानी में दूसरा, बुढ़ापे में तीसरा। देह भी मैं नहीं हूं, क्योंकि मेरा हाथ कट जाए तो भी मैं नहीं कटता हूं, मेरा पैर कट जाए तो मैं नहीं कटता हूं। मैं जरा भी कम नहीं होता। तो देह मैं नहीं हूं। और मन भी मैं नहीं हूं, क्योंकि मन तो प्रतिपल भागा जा रहा है, बदला जा रहा है। अभी क्रोध, अभी प्रेम; अभी घृणा, अभी वैमनस्य; अभी करुणा, अभी क्रूरता। कुछ पता ही नहीं, मन तो ऐसा भाग रहा है! इस मन के साथ मैं कैसे हो सकता हूं? जरूर मैं कुछ और हूं--देह, मन, दोनों के पार।
तो पूछ रहा था एकांत पाकर बगीचे में। कोई नहीं था, तो धीरे-धीरे पूछते- पूछते जोर-जोर से पूछने लगा कि मैं कौन हूं? माली जाग गया। लालटेन लेकर माली आया कि इतनी रात अंधेरे में कौन घुस आया! और जब उसने सुना कि पूछ रहा है "मैं कौन हूं?" तो समझा कि कोई पागल है।
पागल ही पूछते हैं कि मैं कौन हूं; और कौन पूछेगा! यहां समझदारों को तो पता ही है। अगर तुमसे कोई पूछे तो तुम कहोगे, इसमें क्या पूछना है! मेरा नाम, मेरा पता, यह रहा मेरा कार्ड! अगर बहुत तुम्हें संदेह हो तो आइडेंटिटी कार्ड बता दोगे, कि अपना पासपोर्ट बता दोगे कि यह लो। यह मेरे पिता का नाम है, यह मेरे गांव का नाम है, यह मेरा नाम है, यह मेरी फोटो रही, और क्या चाहिए! समझदार तो बस इतने पर राजी हो गए हैं। खाक समझदारी है!
माली को लालटेन लिए--ड़रा-डरा माली लालटेन और लट्ठ लिए चला आ रहा है! डरा-डरा, कि पागल आदमी मालूम होता है। आधी रात बगीचे में घुस आया एक तो, और इतने जोर-जोर से पूछ रहा है कि मैं कौन हूं! माली को आता देख कर शापेनहार चुप हो गया। संकोच लगा उसे कि इसके सामने कैसे पूछना जोर-जोर से कि मैं कौन हूं! क्या सोचेगा! माली ने पास आकर जोर से लट्ठ पटका, लालटेन ऊपर उठाई और कहा कि भाई, तुम कौन हो?
शापेनहार ने कहा, हद कर दी! अरे, यही मैं पूछ रहा हूं! मुझे ही पता होता
तो यहां बगीचे में आधी रात इस सर्दी में शोरगुल मचाता, तेरी नींद खराब करता! तुझे पता हो तो बता दे मैं कौन हूं! माली ने कहा, पागल तो नहीं हो? शापेनहार ने कहा, अब तक पागल था, क्योंकि सोचता था कि जानता हूं कि मैं कौन हूं। आज पहली दफा पागल नहीं हूं। तुझे पता है तू कौन है?
माली ने कहा, भैया, ये विचार तुम अपने ही पास रखो। मेरे बाल-बच्चे हैं, पत्नी है। अभी-अभी शादी, अभी घर-गृहस्थी बस ही रही है, कच्ची है। ये सवाल तुम अपने ही पास रखो। ऐसे उलटे-सीधे सवाल मैं नहीं पूछता। यह भी कोई सवाल है--मैं कौन हूं!
जिसको हमने मान रखा है अब तक "मैं हूं", वह असत्य है, झूठ है, मान्यता मात्र है। इसलिए उपनिषद की प्रार्थना कहती हैः हे प्रभु, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। मैंने एक मिथ्या को मैं मान रखा है और उस मिथ्या में मेरा असली मैं छिप गया है।
और फिर तीसरा वचन हैः मृत्योर्मा अमृतं गमय! हे प्रभु, मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो।
मृत्यु अहंकार की ही होती है। मृत्यु अहंकार की ही हो सकती है। मृत्यु सिर्फ झूठ की ही होती है। सत्य की कोई मृत्यु नहीं होती। इसलिए इस प्रार्थना का मेरा अर्थ, चैतन्य कीर्ति, एक हैः अहंकार से निरहंकार की ओर ले चलो। उसके ये तीन चरण हैं, तीन अभिव्यक्तियां हैं, तीन द्वार हैंः अंधकार से प्रकाश की ओर; असत्य से सत्य की ओर; मृत्यु से अमृत की ओर। मगर इशारा एक है। मंदिर के द्वार तीन हैं, पहुंचोगे एक जगह। बोध होगा कि मैं कौन हूं। और वह बोध ऐसा है जो शब्दों में समाता नहीं, कहा नहीं जा सकता।

मस्त तो हो जाओगे। नाच तो उठोगे। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे साथ हो जाएगा। साथ कहना भी ठीक नहीं, क्षमा करना, तुम परमात्मा हो जाओगे, या परमात्मा तुम हो जाएगा। साथ कहना ठीक नहीं, क्योंकि उसमें द्वैत रह जाता है। जैसे दो प्रेमी गहन प्रेम के क्षण में एक हो जाते हैं। मगर वह एक होना बस रुकता है पल भर को; पलक झपी और गया! प्रार्थना परम प्रेम है, पराकाष्ठा है प्रेम की।
प्रेम की तीन सीढ़ियां हैं। एक तो साधारण प्रेम--मित्र-मित्र में, पत्नी-पति में, मां-बेटे में, भाई-भाई में। एक असाधारण प्रेम--शिष्य और गुरु में। और एक साधारण-असाधारण दोनों का अतिक्रमण कर जाए, तीसरा प्रेम-- आत्मा और परमात्मा में, बूंद में और सागर में।
मत शरमाओ, हाथ बढ़ाओ
जो मैं गाऊं, वह तुम गाओ
हर मुश्किल आसान बना लूं--मेरे साथ अगर तुम हो लो।
पथ के कांटे फूल बना लूं
मझधारों को कूल बना लूं
हर रोदन को गान बना लूं--मेरे साथ अगर तुम हो लो। पतझर को मधुमास बना लूं
धरती को आकाश बना लूं
सीना वज्र समान बना लूं--मेरे साथ अगर तुम हो लो।
खोलो, मन के द्वारे खोलो
सोच रहे क्या, कुछ तो बोलो
सत्य सभी अनुमान बना लूं--मेरे साथ अगर तुम हो लो।
यह तो साधारण प्रेमी की, साधारण प्रेम की भाषा है। लेकिन परम प्रेम में भी यही घटता है। अगर परमात्मा का मेल हो जाए तो नाच उठोगे, गीत झरने लगेंगे। जैसे जुही के फूल झर-झर झरें, ऐसे तुम्हारे भीतर गीत झरने लगेंगे। जैसे कमल झीलों में खिल जाएं, ऐसे ही तुम्हारी चेतना के कमल खिल जाएंगे। जैसे अंधेरी रात में दीपावली सज जाए, ऐसे ही तुम्हारे भीतर ज्योति- मालिकाएं जल जाएंगी।
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने!
आंख मेरी हो गई इतनी रसीली,
बात मेरी हो गई इतनी नशीली,
पास जो आता, न जाना चाहता है,
ले लिया जग मोल एक फकीर ने!
देह दर्पण-सी दमकने लग गई है,
सौ दीयों की ज्योति मन में जग गई है, प्राण पर जो कालिमा बाकी बची थी, पोंछ ली कब, क्या पता किस चोर ने!
मैं नशे में चूर होकर भी सजग हूं,
आंसुओं के साथ रहकर भी अलग हूं,
चेतना सोती नहीं अब रात में भी,
कर दिया आजाद हर जंजीर ने!
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने!
प्रेम की पीड़ा एक मदिरा है। पीओगे तो ही जानोगे। और जब भी कोई मंदिर जिंदा होता है तो मधुशाला होता है। वहां पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। वहां पीने वालों की जमात होती है।
मणिकांत को बुलाया था चैरिटी कमिश्नर ने कुछ पूछताछ के लिए। पूछा कि कितना आश्रम में पैसा आता? कहां से आता? कहां जाता? तो मणिकांत ने कहा कि भगवान वहां इतनी पिलाते हैं कि कहां हिसाब रखें! उसने कहा, तो तुम पीते भी हो? तो वहां पीना भी चलता है? कहा क्लर्क से, लिखो जल्दी! वे इसी तरह की तलाश में बेचारे लगे रहते हैं! मणिकांत ने कहा, आप समझे नहीं। यह और ही तरह का पीना है। यह अंगूर की शराब की बात नहीं है--आत्मा की पिलाते हैं। कभी आप भी आओ!
बेचारा उदास हो गया। बात ही खराब हो गई। कुछ मतलब की बात हाथ लगनी शुरू हुई थी।

अंगूर की शराब तो उन्हीं को लुभा सकती है जिन्होंने आत्मा की शराब नहीं पी है। आत्मा की शराब पी ले जो, फिर सब शराबें फीकी; पानी--गंदा पानी! कौन छुए उसे!
कौन सी मदिरा पिलाई पीर ने!
आंख मेरी हो गई इतनी रसीली,
बात मेरी हो गई इतनी नशीली,
पास जो आता, न जाना चाहता है,
ले लिया जग मोल एक फकीर ने!
फकीर हमेशा ही सम्राटों की तरह जीए हैं। फकीर ही सम्राट हैं। यह सारा जगत उनका है।
वही चैरिटी कमिश्नर लक्ष्मी को पूछ रहा था कि मैंने सुना है कि आश्रम
का धन स्विटजरलैंड के बैंकों में जमा है, अमरीका के बैंकों में जमा है। लक्ष्मी ने कहा, अमरीका, स्विटजरलैंड क्या, ऐसा कोई देश नहीं है जहां हमारा धन जमा न हो। उसने कहा, तो कहां-कहां जमा है और कितना-कितना जमा है? लक्ष्मी ने कहा, सारा धन अपना है। धन अपन दूसरे का किसी का मानते ही नहीं हैं!
फिर हो गया बेचारा उदास। बड़ी चिंता में पड़ा है कि कुछ पकड़ आ जाए। मगर
ये बातें उसकी पकड़ में नहीं आतीं।
सब धन अपना है? सारा जगत अपना है। सारा अस्तित्व अपना है। चांद-तारे अपने हैं। छोटे-छोटे आंगन को क्या अपना कहना!
इस छोटी सी प्रार्थना में सारे उपनिषदों का सार आ गया। उपनिषदों का
ही नहीं, कुरान, बाइबिल, धम्मपद, सबका सार आ गया। लेकिन इसका मौलिक सूत्र समझ लेनाः अहंकार जाए, तो तीनों बातें पूरी हो जाएं। अहंकार जाए, तो प्रकाश ही प्रकाश। अहंकार जाए, तो सत्य ही सत्य। अहंकार जाए, तो अमृत ही अमृत।

आखिरी प्रश्नः प्रार्थना क्या है?

अर्चना! प्रार्थना की कोई परिभाषा नहीं। प्रेम की ही कोई परिभाषा नहीं, तो प्रार्थना की कैसे परिभाषा होगी? और चूंकि प्रेम की परिभाषा नहीं, प्रार्थना की परिभाषा नहीं, इसीलिए तो परमात्मा की परिभाषा नहीं हो पाती। परिभाषा होती है मस्तिष्क में, और प्रार्थना होती है हृदय में। ये अलग-अलग दुनियाएं हैं।
यह प्रश्न ऐसा ही है... । लगता तो ठीक, शाब्दिक अर्थों में ठीक लगता है-- प्रार्थना क्या है? प्रार्थना की परिभाषा क्या है? इसको गलत नहीं कह सकते। यह ऐसा ही है लेकिन जैसे कोई पूछे कि हरे रंग का स्वाद क्या है?
हरे रंग का स्वाद क्या है--इस वाक्य में भाषा और व्याकरण की दृष्टि से कोई गलती न निकाल पाओगे। लेकिन अस्तित्वगत भूल है। हरे रंग और स्वाद का कोई संबंध ही नहीं। हरे रंग का कोई स्वाद नहीं। स्वाद का कोई रंग नहीं। हरे रंग का कोई भी स्वाद हो सकता है, मगर वह हरे रंग का नहीं है, किसी चीज का होगा जो हरी है। और स्वाद का कोई भी रंग हो सकता है, लेकिन वह स्वाद का रंग नहीं है, उस चीज का रंग होगा जिसका स्वाद है। स्वाद और रंग का कोई संबंध नहीं।
ऐसे ही प्रार्थना और परिभाषा का कोई संबंध नहीं। प्रार्थना उमगती है हृदय में; परिभाषाएं जन्मती हैं मस्तिष्क में। परिभाषाएं होती हैं शब्दों और तर्कों की; और प्रार्थना है भावना।
और अर्चना, तुझे तो मैंने नाम ही दिया अर्चना! अर्चना यानी प्रार्थना। इसे तो जीकर ही जानना होगा, पीकर ही जानना होगा।
कैसी लंबी रात विरह की, बीत नहीं पाए।
पिया बिन नींद नहीं आए।
मुसकाई संध्या की लाली
आई फिर रजनी घुंघराली
उगा गगन में चांद, मगर मन-मेघ नहीं छाए।
पिया बिन नींद नहीं आए।

आई बगिया में बहार है
जागा यौवन में खुमार है
दूर कहीं मधुबन में कोयल, गीत मधुर गाए।
पिया बिन नींद नहीं आए।
जब से साजन ने मुंह फेरा
कजरा धोते हुआ सबेरा
थके उनींदे दो नयनों में, सावन लहराए।
पिया बिन नींद नहीं आए।
जो प्रेम में रोया न हो, जिसने प्रेम का विरह न जाना हो, उसे तो प्रार्थना की तरफ इंगित भी नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं प्रेम का पक्षपाती हूं, प्रेम का उपदेष्टा हूं। कहता हूं, खूब प्रेम करो! क्योंकि प्रेम का ही निचोड़ एक दिन प्रार्थना बनेगा। प्रेम के हजार फूलों को निचोड़ोगे, तब कहीं प्रार्थना की एक बूंद, एक इत्र की बूंद बनेगी।
सुबह न जानी
शाम न जानी
तेरी सूरत जब पहचानी।

रूप तुम्हारा एक जौहरी
प्यार अंगूठी सा गहना है,
कुछ चाहों से मोल चुका कर मन की अंगुली में पहना है। सदा सुहागिन
पर बंजारिन
सुधियों की बदनाम जवानी।

दिन को चहल-पहल के नगमे
सारी रात मौत का डेरा,
किस पल तुमसे बात करूं मैं सूरजमुखी प्यार है मेरा। गम का पहरा
तम है गहरा
सूनी सी मन की रजधानी।

मन का प्यार कर्ज है, जिसका सारी उमर ब्याज भरना है,
मन के नातों को बतला कर
खुद को बेपरदा करना है।
जीवन के क्रम
बदलें हम-तुम
चलते-चलते डगर अजानी।
सुबह न जानी
शाम न जानी
तेरी सूरत जब पहचानी।
जब भूल जाओगे सब गणित, न सुबह पहचान में आएगी, न शाम पहचान में आएगी; जब भूल जाओगे सब हिसाब-किताब की सारी भाषा; जब उतर आओगे मस्तिष्क से हृदय में, विचारणा से भावना में, मोल-तोल से अतौल में, अमोल में, तब जान पाओगे! तभी जाना जा सकता है कि प्रार्थना क्या है।
यहां बैठो, यहां प्रार्थना बरस रही है। अर्चना, इस शांति को, इस मौन को चखो। यह जो मेरे-तुम्हारे बीच घट रहा है, यह प्रार्थना है। यह कोई बातचीत नहीं। यह कोई प्रवचन नहीं है। यह कोई वार्ता नहीं हो रही है। यह मेरे- तुम्हारे हृदय का साथ-साथ नृत्य है। ये शब्द तो केवल बहाने हैं। निःशब्द की तरफ इंगित कर जाएं, बस इतना इनका प्रयोजन है। निमित्त मात्र हैं। साधों की रिमझिम का
रंग कहीं खो बैठे,

फागुनी फुहारों में--वही याद आता है।
किरन-डोर लिए गगन
रोल-रोल मोती कण
धरती के बालों में गूंथ कर सजाता है।
प्यार के सिंगारों में--वही याद आता है।
केसर, कुमकुम, चंदन
घोल-घोल मलय-पवन
नये सुमन प्यालों में ढाल कर पिलाता है।
झूमते खुमारों में--वही याद आता है।
परिवर्तन का कूजन
डोल-डोल वन, उपवन
लुटी-ठगी डालों को जिंदगी दिलाता है।
पतझर की हारों में--वही याद आता है।
चंदा हर घर-आंगन
बोल-बोल आमंत्रण
मधुबन की तालों में मिलन-स्वर मिलाता है।
रास की बहारों में--वही याद आता है।
वासंती अवगुंठन
खोल-खोल अलस नयन
लाज के गुलालों में चांदनी खिलाता है।
आस की पुकारों में--वही याद आता है।
यहां जो घट रहा है, यह चर्म-च्रुओं से दिखाई पड़ने वाली बात नहीं है। इसलिए जो यहां पक्षपातों को लेकर बैठा है, खाली जाएगा--खाली हाथ आया, खाली हाथ जाएगा। लेकिन जो पक्षपात छोड़ कर सुनने को राजी है; सुनने को ही नहीं, मेरे साथ एक-रस होने को राजी है! संन्यास और क्या है--इसी बात की घोषणा है! प्रेम में मेरे साथ एक-रस होने को जो राजी है, उसे प्रार्थना का अर्थ तत्क्षण समझ में आ जाएगा। उसे पूछने नहीं जाना पड़ेगा कहीं और। प्राणों में घुलता है रस। वहीं मिठास फैल जाती है।
देश अजाना, पंथ अजाना
नाम न जाना, धाम न जाना
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
कठिन है। मैं तो बुलाता हूं, पुकारता हूं कि आओ, बैठो मेरी पालकी! चलो, बैठो मेरी नाव! मगर तुम्हारा डर भी मैं समझता हूं।
देश अजाना, पंथ अजाना
नाम न जाना, धाम न जाना
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
भरी बहारों पवन न डोला
चांद-सितारों ने विष घोला
कभी न लट गूंथी बदली ने लाज लुटाई
गली-गली ने मांग न सेंदुर, आंख न अंजन
पग न महावर, हाथ न कंगन
कैसे बैरिन बिंदिया से, शोभा दमकाऊं भाल की!
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
सेज कली की सदा कंटीली भरी जवानी पीली-पीलीस्वप्नीली तस्वीर मिटा कर कभी सेज पर, कभी चिता परहंसी न मधुऋतु, उड़ी न केसर लसे न भंवरों के नीलम पर कैसे कलियां बन महकूं, तेरी चंपक उरमाल की!
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
उड़-उड़ छाने अंबर भूतलगिरते रहे पंख तिल-तिल जलशाख-शाख ने ताने मारेरूठे तिनके-दाने सारेनीड़ न चहके सांझ-सबेरेघनी रात लुट गए बसेरे कैसे काटूं रैन, विरानी सेज अजानी डाल की!
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
जब-जब मंगल बेला आईबजी नौबतें शुभ शहनाईसिसक पड़ी सिंगार पिटारीसपने दर-दर बने भिखारीदमक न पाई चुनरी-चोलीबाट जोहती सूनी डोली
किससे जोडूं गांठ, उमर बन चली दुल्हनिया काल की।

देश अजाना, पंथ अजानानाम न जाना, धाम न जाना
तुम्हीं बताओ, कैसे चल दूं, बैठ तुम्हारी पालकी!
मगर चलो तो ही जान सको। और नहीं चंदन चाहिए, नहीं केसर, नहीं महावर। नहीं कोई आभूषण, नहीं कोई औपचारिकता। जैसे हो, बस ऐसे ही बैठ जाओ इस पालकी में।
तुम से कुछ भी तो शर्त पूरी नहीं करवाना चाहता हूं, कि ऐसा आचरण हो, कि ऐसा चरित्र हो। तुम पर कोई भी शर्त तो नहीं लादता हूं। बेशर्त प्रार्थना का स्वाद देने को तैयार हूं। मगर थोड़ा साहस तो तुम्हें दिखाना पड़े! तुम्हें दो कदम चल कर पालकी में तो बैठ जाना पड़े!
दो डग उठाओ अर्चना, प्रार्थना समझ में आ जाएगी। ऐसी समझ में आएगी कि रोएं-रोएं में समा जाएगी। ऐसी समझ में आएगी कि श्वास-श्वास में भर जाएगी। ऐसी समझ में आएगी कि आंसू-आंसू में झरेगी। ऐसी समझ में आएगी कि सोओ कि जागो, उठो कि बैठो, चारों तरफ छाया की तरह डोलती रहेगी; तुम्हारी आभा बन जाएगी।
प्रार्थना कृत्य नहीं है, भाव की एक दशा है। और प्रार्थना से तुम भरे होओ, तो परम अनुभूति घटती है। परम अनुभूति से मेरा अर्थ हैः अगर तुम्हारा हृदय प्रार्थनापूर्ण है, तो परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। निश्चित दस्तक देता है। और जो प्रार्थना से भरा है, वही उसकी दस्तक सुन भी पाता है। जो प्रार्थना से भरा नहीं है, वासना से भरा है, वह उसकी दस्तक नहीं सुन पाता है।
और जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं--एक वासना, एक प्रार्थना। वासना का ढंग गृहस्थ का ढंग; प्रार्थना का ढंग संन्यस्त का ढंग। गृहस्थ और संन्यासी में स्थान का भेद नहीं होता, स्थिति का भेद होता है। घर छोड़ कर भाग जाओ तो संन्यासी हो गए, ऐसा नहीं। कि जंगल में कुटी बना कर रहने लगे तो संन्यासी हो गए, ऐसा नहीं। वासना न रहे!
वासना मांगती है--यह मिले, वह मिले। प्रार्थना धन्यवाद देती है--कि जो दिया, मेरी पात्रता से ज्यादा है; मेरे पात्र के ऊपर से बहा जा रहा है। अनुग्रह को जगाओ, अर्चना। प्रार्थना अपने आप जगेगी। धन्यवाद को जगाओ,
और प्रार्थना अपने आप जगेगी। धन्यवाद का भाव ही प्रार्थना है। अनुग्रह की भावदशा ही प्रार्थना है।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
दूसरा प्रवचन

ध्यान, प्रेम और संन्यास

पहला प्रश्नः संन्यास, ध्यान और प्रेम को आप छलांग कहते हैं। छलांग
से आपका क्या आशय है?

नरेंद्र! जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है--ध्यान हो, प्रेम हो, या संन्यास हो--उसकी उपलब्धि गणित की भांति नहीं होती; उसकी उपलब्धि की प्रक्रिया नहीं होती, सीढ़ियां नहीं होतीं। उसमें कोई क्रमिक गति नहीं होती। विस्फोट होता है। एक क्षण में सब घट जाता है। सोच-विचार नहीं--एक हार्दिक दशा है, एक भाव की दशा है। अचानक! जैसे दीया जलाओ, तो अंधेरा क्रमशः दूर नहीं होता--कि पहले थोड़ा हटा, फिर और थोड़ा हटा, फिर और थोड़ा हटा। इधर दीया जला, उधर अंधेरा नहीं हुआ--एक क्षण में, युगपत।
दीये के जलने और अंधेरे के मिट जाने को मैं छलांग कहता हूं। अगर धीरे- धीरे जाता, क्रम से जाता, मात्रा में जाता, जाते-जाते जाता--तो क्रम होता। ऐसा ही संन्यास कोई क्रम नहीं है। किसी बोध की घड़ी में अचानक जीवन की व्यर्थता दिखाई पड़ जाती है। ऐसी प्रगाढ़ता से दिखाई पड़ती है कि छोड़ना नहीं पड़ता कुछ, पकड़ने को ही कुछ नहीं रह जाता, पकड़ने योग्य कुछ नहीं रह जाता। छोड़ना पड़े तो संन्यास सच्चा नहीं। छोड़ना पड़े तो फिर प्रक्रिया होगी, क्रमिक होगी। आज छोड़ोगे कुछ; कल छोड़ोगे कुछ; परसों छोड़ोगे कुछ। छोड़ते- छोड़ते जनम-जनम लग जाएंगे। बोध की प्रगाढ़ता में, जैसे भभक उठे ज्योति भीतर, दिखाई पड़ जाए कि जगत व्यर्थ है। यह सोच-विचार की निष्पत्ति नहीं, यह जागृति का अनुभव हो।
इसलिए संन्यास सत्संग में ही घट सकता है। जहां और-और दीये जले हों। जले दीये के पास बैठ कर घट सकता है।
कभी बुझे दीये को जले दीये के करीब लाए हो? अभी छह इंच की दूरी है; बुझा दीया बुझा दीया है, जला दीया जला दीया है। पांच इंच की दूरी है; अभी भी बुझा दीया बुझा दीया है। चार इंच, तीन इंच, दो इंच, एक इंच; अभी भी बुझा दीया बुझा दीया है। ऐसा नहीं कि थोड़ा-थोड़ा जलने लगा, क्योंकि अब पांच इंच करीब आ गया तो थोड़ा तो जला होगा! फिर और करीब लाए, आधा इंच की दूरी। अभी भी जला दीया जला, बुझा दीया बुझा। फिर और करीब लाए, और करीब लाए। एक सीमा है, जहां अचानक छलांग लगती है, जले दीये की ज्योति बुझे दीये को पकड़ लेती है।
यह क्रम से नहीं होता। इसकी कोई प्रक्रिया नहीं है। यह तो सत्संग में
लग गया रंग है।
संन्यास परिणति है सत्संग की। गुरु के पास आते-आते, आते-आते एक दिन बस पीछे लौटने का कोई उपाय न रहा। ऐसा नहीं कि तुम लौटना चाहते हो और नहीं लौटते। नहीं, लौटना भी चाहो तो नहीं लौट सकते। एक क्षण के बाद बुझा दीया चाहे भी कि अब न जलूं, तो उपाय नहीं है। बस एक खास दूरी पूरी हो जाए, कि बुझे दीये को जलना ही होगा, जलना अनिवार्यता होगी।
इसलिए कहता हूं, विचार नहीं है संन्यास। जो लोग विचार करते हैं, वे नहीं ले पाते। और जो विचार करके ले लेते हैं, लेकर भी नहीं ले पाते। जो सोचते हैं आगा-पीछा, लाभ-हानि, क्या होगा परिणाम, क्या होगी समाज में स्थिति--बड़े अंधड़ में घिर जाते हैं। बहुत ऊहापोह चलता है। चित्त अनेक लहरों से भर जाता है। वैसे ही अशांत चित्त, और एक नई अशांति पैदा हो जाती है कि संन्यास लूं या न लूं। पहले से ही और न मालूम कितने विकल्प घेरे खड़े थेः यह करूं कि वह करूं? अब एक और महाविकल्प सामने आ गयाः संन्यास लूं या न लूं?
सोचने-विचारने वाला तो ले ही न पाएगा। सोच-विचार कभी किसी अंतिम निर्णय पर लाते ही नहीं। सोच-विचार की प्रक्रिया में सभी निर्णय सापेक्ष होते हैं, सशर्त होते हैं। और सोचोगे-विचारोगे, तो निर्णय बदलना पड़ेंगे। इसलिए विज्ञान में कोई निष्पत्ति कभी भी अंतिम नहीं होती, क्योंकि विज्ञान का आधार है सोच-विचार। विज्ञान कभी सिद्धांतों पर नहीं पहुंचता।

सिद्धांत का अर्थ होता हैः सिद्ध हो गया जो। विज्ञान तो केवल परिकल्पनाएं, हाइपोथीसिस पर पहुंचता है। परिकल्पना और सिद्धांत का भेद ठीक से समझ लेना।
परिकल्पना का अर्थ होताः अब तक जितना सोचा, उसमें यह ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन कल और सोचेंगे। फिर कौन जाने--ठीक रहे, न रहे। परसों और सोचेंगे। फिर कौन जाने--नये तथ्य उघड़ेंगे, नये तथ्य हाथ में आएंगे, तो पुराने सत्य बदलने पड़ेंगे। लेकिन जिस सत्य को बदलना पड़े, वह तो सत्य ही नहीं, केवल सत्य की भ्रांति थी। जैसे एडीसन ने कुछ कहा। जब तक आइंस्टीन पैदा न हुआ, वह सत्य रहा। फिर आइंस्टीन पैदा हुआ, और न्यूटन असत्य हो गया।
सत्य कहीं असत्य हो सकता है! सत्य था ही नहीं; केवल विचार की निष्पत्ति थी। विचार की कोई निष्पत्ति अंतिम नहीं होती। और विचार होगा, निष्पत्ति बदलनी होगी। आइंस्टीन के बाद फिर कोई होगा, और आइंस्टीन के सिद्धांत फिर सिद्धांत न रह जाएंगे।
अच्छा हो, इनको हम सिद्धांत कहें ही न। और आइंस्टीन कहता भी नहीं। यही
है उसका आधार-स्तंभ सापेक्षवाद का कि किसी भी सत्य में कोई परिपूर्णता नहीं है। आज की स्थिति में अब तक जो जाना, उसमें यह ठीक मालूम पड़ता है। कल के संबंध में कोई वक्तव्य नहीं है। कल आएगा, फिर देखेंगे। शायद ठीक रहे, शायद ठीक न रहे।
इसलिए महावीर ने स्यातवाद को जन्म दिया। स्यातवाद का अर्थ हैः विचार
से कोई भी निर्णय स्यात के पार नहीं जाता। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी विचार के द्वारा ली गई निष्पत्तियों को दावे के साथ घोषित नहीं करेगा। कहेगाः शायद ऐसा हो; शायद ऐसा न हो। अब तक जितना जाना-समझा, सोचा-विचारा है, जितना तौला-परखा-पहचाना है, उससे यह ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन कल सुबह सूरज कौन सी नई खबरें लाएगा, हवाएं कौन से नये संदेश ले आएंगी, आकाश कौन से रहस्य खोलेगा--सब अज्ञात है।
लेकिन ऐसी हाइपोथीसिस, ऐसी परिकल्पनाओं से जीवन रूपांतरित नहीं हो सकते। लचर हैं, अथिर हैं, डांवाडोल हैं, तो तुम्हें क्या थिरता उनसे मिलेगी! थिरता तो मिल सकती है किसी ऐसे सत्य से, जो अपरिवर्तनीय हो, शाश्वत हो; समय की धार जिसे बदल न सके। पतझड़ हो तो सत्य; और वसंत हो तो सत्य। और जीवन हो तो सत्य; मृत्यु हो तो सत्य। बचपन कि जवानी कि बुढ़ापा; सफलता कि असफलता; सुख कि दुख--लेकिन सत्य अडिग, थिर; वैसा का वैसा; रत्ती भर भेद नहीं। रंच मात्र परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।
ऐसे सत्य विचार से पैदा नहीं होते। ऐसे सत्य तो हृदय में आविर्भूत होते हैं। प्रेम ऐसा ही सत्य है। ध्यान ऐसा ही सत्य है। और संन्यास--प्रेम और ध्यान की अंतिम पराकाष्ठा है। जहां ध्यान और प्रेम का मिलन होता है उस संगम का नाम संन्यास है। संन्यास घटे तो प्रेम और ध्यान घट जाएगा। प्रेम और ध्यान घटे तो संन्यास घट जाएगा।
लेकिन यह रंग कहां लगेगा? जहां फाग मची हो, जहां होली खेली जाती हो, जहां पिचकारियां रंगों से भरी हों; जहां आनंद का महोत्सव चल रहा हो। अगर तुम बगीचे से निकलोगे फूलों से भरे, तो चाहे फूलों को छुओ या न छुओ, तुम्हारे वस्त्रों में बेला की गंध अटकी रह जाएगी, कि रातरानी की गंध तुम्हारे बालों में उलझी रह जाएगी। घर जाओगे, बगिया से दूर निकल जाओगे, तो भी तुम्हारे नासापुटों में बगिया की स्मृति आती रहेगी। तुम्हारे चारों तरफ बगिया का कुछ हिस्सा छाया की तरह मौजूद रहेगा।
सत्संग का अर्थ हैः जहां खूब फूल खिले हैं। सत्संग का अर्थ हैः जहां
से गुजरोगे तो रंग जाओगे; गंध से आपूरित हो जाओगे। जहां बहुत दीप जले, वहां से अपना बुझा दीया कैसे ले जाओगे! जलना ही होगा। किसी जले हुए दीये के करीब सरकना होगा। जब तक सरक रहे हो, तब तक तुम बुझे ही हो। और एक छलांग होगी--अभी बुझे थे, अभी जल गए। इसलिए छलांग कहता हूं। छलांग शब्द को ठीक से समझना। और चूंकि संन्यास छलांग है, ध्यान और प्रेम छलांग है, इसलिए दीवाने, परवाने, बस उनके ही सामर्थ्य की बात है।
सोच-विचार एक तरह की कायरता है। बैठे रहो। गणित बिठाते रहो। गुनते रहो। जिंदगी आई है और चली जाएगी। तुम गणित ही बिठालते रहना, बीज कभी बो न

पाओगे। तुम हिसाब ही लगाते रहना लाभ-हानियों का। कहीं तुम्हारे जीवन का अवसर ऐसे ही न बीत जाए।
नींद बड़ी गहरी थी
झटके से टूट गई
तुमने पुकारा या द्वार आकर लौट गए!
जैसे किसी की नींद तोड़ दें हम झटका देकर। वह छलांग है। जब तुम्हें कोई झकझोर कर जगा देता है, तो बस एक क्षण में--अभी नींद थी, अभी नींद नहीं; अभी आंख बंद थी, अब आंख खुली; अभी बेहोश थे, अब होश।
परमात्मा तो पुकार रहा है, मगर परमात्मा की पुकार बड़ी सूक्ष्म है, इसलिए तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती। कोई सदगुरु चाहिए, जो उसकी पुकार को बल दे दे, जो उसकी पुकार को जोर दे दे। परमात्मा तो हिला रहा है तुम्हें, लेकिन उसके हाथ अदृश्य हैं। कोई दृश्य हाथ चाहिए।
इंग्लैंड में ऐसा हुआ दूसरे महायुद्ध में, लंदन में एक चौराहे पर जीसस की प्रतिमा थी, उस पर बम गिर गया। प्रतिमा खंड-खंड होकर बिखर गई। बड़ी प्यारी प्रतिमा थी। बड़ी कलात्मक प्रतिमा थी। लोगों ने उसके सारे खंडों को इकट्ठा किया और एक मूर्तिकार को निवेदन किया कि तुम इन खंडों को फिर से जोड़ दो।
और सब खंड तो मिल गए, लेकिन दो हाथ जीसस की प्रतिमा के नहीं मिले। शायद बिल्कुल चकनाचूर हो गए। उनका कुछ पता न चला। लोगों ने मूर्तिकार को कहा, तो हाथ दो नये बना दो और जा.ेड दो। मगर इस पुरानी प्रतिमा से हमें प्रेम है बहुत।
लेकिन मूर्तिकार ने कुछ किया, जो बहुत अदभुत है। उसने नये हाथ नहीं बनाए। उसने प्रतिमा के नीचे पत्थर पर एक वचन खोदा, छोटा सा वचनः मेरे कोई हाथ नहीं हैं। अब से तुम्हारे हाथों से ही मैं अपने हाथों का काम लूंगा! जीसस की प्रतिमा वह अब भी खड़ी है, बिना हाथों की; नीचे यह वक्तव्य हैः मेरे अपने कोई हाथ नहीं हैं। तुम्हारे हाथों से ही मैं अब से काम लूंगा! परमात्मा के हाथ तो और भी अदृश्य हैं। तुम्हें परमात्मा छुए भी तो तुम पहचान न पाओगे। सोचोगेः हवा का झोंका आया कि क्या हुआ? कौन छू गया? शायद तुम डर भी जाओ। पहली बार परमात्मा का स्पर्श होता है तो भय होता है, घबड़ाहट होती है।
किसी सदगुरु के हाथ चाहिए--पार्थिव, जो तुम्हें छू सकें और तुम्हें जगा सकें। परमात्मा की वाणी तो शून्य है, उसे शब्द कौन देगा? उस अनभिव्यक्त को व्यक्त कौन करेगा? कोई वेद, कोई उपनिषद, कोई कुरान, कोई बाइबिल उस परमात्मा को शब्द देती, रूप देती, ढंग देती, रंग देती--तब कहीं तुम्हारी पकड़ में आना शुरू होता है।
नींद बड़ी गहरी थी
झटके से टूट गई
तुमने पुकारा? या द्वार आकर लौट गए!
बार-बार आई मैं द्वार तक, न पाया कुछ
बार-बार सोई, सपना भी न आया कुछ
अनसोया अनजागा
हर क्षण तुमको सौंपा
तुमने स्वीकारा? या द्वार आकर लौट गए! कुछ भी मैं कह न सकी, चुप भी मैं रह न सकी जीवन की सरिता, बन झील रही, बह न सकी रूठा मन राजहंस
तुम तक पहुंचा होगा
तुमने मनुहारा? या द्वार आकर लौट गए! रात चली पुरवाई, ऋतु ने ली अंगड़ाई
मेरे मन पर किसने केसर सी बिखराई सुधि की भोली अलकें
माथे घिर आई थीं
तुमने संवारा? या द्वार आकर लौट गए! सझवाती बेला में कोयल जब कूकी थी

मेरे मन पर कोई पीड़ा सी हूकी थी अनचाही पाहुनियां
पलकों में ठहर गईं
तुमने निहारा? या द्वार आकर लौट गए! मन के इस सागर में सीप बंद मोती सी मेरी अभिलाषा सपनों में भी सोती सी पलकों के तट आकर
बार-बार डूबी थी
तुमने उबारा? या द्वार आकर लौट गए!
कितने ही दीपक, मैं अंचल के ओट किए
नदिया तक लाई थी, लहरों पर छोड़ दिए
लहरों की तरणी ने
दीपों के राही को
तट पर उतारा? या द्वार आकर लौट गए!
परमात्मा बहुत अदृश्य है। द्वार पर दस्तक भी दे, शायद द्वार हिलता मालूम भी पड़े, मगर तुम्हें उसके हाथ दिखाई न पड़ेंगे। शायद तुम्हारे हाथ पकड़ कर ले भी चले! चल ही रहा है, अन्यथा तुम चलते कैसे? कौन चलाता है तुम्हारी श्वास? कौन धड़कता है तुम्हारे हृदय में? कौन दौड़ता है तुम्हारे लहू में जीवन बन कर? यह कौन है जो तुम्हारी मांस-मज्जा बना है? यह कौन है जो तुम्हारा चैतन्य है? वही है। लेकिन बड़ी सूक्ष्म है उसके जगत की व्यवस्था।
तुम्हें चाहिए कोई मूर्तिवंत--कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई जरथुस्त्र--जिसकी आंखों में झांक कर तुम अदृश्य को थोड़ा सा देखने में समर्थ हो जाओ। जिसके हाथों में हाथ देकर तुम्हें परमात्मा के हाथों की थोड़ी सुधि आने लगे। जिसके पास बैठ कर, जिसकी सन्निधि में, जिसके सामीप्य में, तुम्हारे हृदय में नई तरंगें उठने लगें--आलोक की, आनंद की। जिसकी मौजूदगी में तुम्हारे भीतर स्फुरणा होने लगे। तुम्हारे रोएं सजग होने लगें। तुम्हारे कण-कण में कोई अदृश्य नाच जाए। तुम्हारे हृदय-तंत्री के तार छिड़ जाएं। तुम्हारा गीत बज उठे। बस वही है संन्यास।
संन्यास के पक्षी के दो पंख हैंः प्रेम और ध्यान। जहां संन्यास है, वहां प्रेम है, वहां ध्यान है।
ध्यान का अर्थ होता हैः अकेले में आनंदित होने की क्षमता; एकांत में
भी रसमग्न होने की पात्रता। और प्रेम का अर्थ होता हैः संग-साथ में आनंदित होने की क्षमता। ध्यान तो है, जैसे कोई बांसुरी अकेली बजाए; और प्रेम है आर्केस्ट्रा--बांसुरी भी हो; तबला भी ताल दे; सितार भी बजे; और-और साज हों। प्रेम हैः दो व्यक्तियों के बीच या अनेक व्यक्तियों के बीच जुगलबंदी। ध्यान हैः एकांत में, अकेले में, अपने ही प्राणों के साथ आनंद-भाव। प्रेम हैः वार्तालाप, संवाद, मैं और तू के बीच सेतु का बनाना। ध्यान हैः स्वयं की पर्याप्तता। नहीं कुछ चाहिए; बस अपना होना काफी है।
और अब तक ऐसा हुआ है--जो कि सौभाग्यपूर्ण नहीं था, जिसके कारण बड़ा दुर्भाग्य घटित हुआ--अब तक ऐसा हुआ कि ध्यान और प्रेम के पंथ एक-दूसरे के विपरीत खड़े रहे हैं। ध्यानी भक्त को मूढ़ मानता है। भक्त ध्यानी को अज्ञानी मानता है। ध्यानियों की परंपरा पूजा, अर्चना, प्रार्थना को कोई जगह नहीं देती; परमात्मा को भी जगह नहीं देती।
इसलिए बुद्ध, महावीर, जो कि ध्यान के अप्रतिम शिखर हैं, उनकी भाषा में, उनकी अभिव्यक्ति में, उनके विचार में परमात्मा के लिए कोई स्थान नहीं है। बस स्वयं का होना काफी है। कोई परमात्मा आवश्यक नहीं है।
पतंजलि ने परमात्मा को स्वीकारा है, मगर बड़ी शर्त के साथ। कहा है कि परमात्मा भी एक आलंबन है ध्यान का; कोई लक्ष्य नहीं है जीवन का, एक आलंबन; चाहो तो उपयोग कर लो, चाहो तो उपयोग न करो। एक उपाय है। जैसे कोई चाहे तो यहां बैलगाड़ी में बैठ कर आ जाए। कोई चाहे, रेलगाड़ी में बैठ कर आ जाए। और किसी की मर्जी हो तो वह पद-यात्रा कर ले। कोई बैलगाड़ी अनिवार्य नहीं है कि बिना बैलगाड़ी के न आ सकोगे। हवाई जहाज भी है। और कुछ भी न हो तो पैदल ही आ

सकते हो। आलंबन मात्र कहा है पतंजलि ने परमात्मा को। एक सहारा। जिनको लेना हो, ले लें। जिनको न लेना हो, उनकी मर्जी। बिना उसके भी चल जाएगा। पतंजलि भी ध्यानी की भाषा बोल रहा है। हालांकि उतनी कठोर नहीं, जितनी बुद्ध और महावीर। पतंजलि बीच में खड़े हैं; प्रेम और ध्यान दोनों के मध्य में हैं। तो थोड़ी सी जगह देते हैं। मगर मौलिक स्वर ध्यान का है। क्योंकि आधार योग का ध्यान है।
बुद्ध तो स्पष्ट परमात्मा से छुटकारा पा लेते हैं। महावीर तो साफ कह देते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है। ध्यानी को जरूरत नहीं है। क्योंकि ध्यानी को होना है अकेला। ध्यानी को करनी है आंख बंद। ध्यानी को डूबना है भीतर। भीतर डूबने के लिए परमात्मा की क्या जरूरत? और जब भीतर डूब जाएगा पूरा तो जो जानेगा वही परमात्मा है। लेकिन ध्यानी उसको परमात्मा अपने ही अर्थ में कहता है--परम आत्मा के अर्थ में परमात्मा; ईश्वर के अर्थ में नहीं।
महावीर ने परमात्मा शब्द का उपयोग किया है, लेकिन उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में कबीर, मीरा या कृष्ण करते हैं। महावीर ने अर्थ ही बदल दिया। महावीर ने परमात्मा कहा है आत्मा की विशुद्ध अवस्था को। महावीर ने कहाः तीन अवस्थाएं हैं आत्मा की। जीवावस्था--सोई हुई आत्मा। फिर आत्मावस्था-- जागती, जागने के करीब, सुबह-सुबह नींद टूट भी गई और नहीं भी टूटी, वह तंद्रा की अवस्था। सोए भी हैं बिस्तर में अभी और इतना जाग भी गए हैं कि सड़क पर चलने वाले लोगों की आवाजें सुनाई देने लगी हैं। बच्चे स्कूल की तैयारियां कर रहे हैं। पत्नी चाय बना रही है। केतली की गुनगुन सुनाई पड़ रही है। कुछ-कुछ एहसास भी हो रहा है, आभास भी हो रहा है कि सुबह हो गई। सूरज की किरणें चेहरे पर पड़ने लगी हैं, उनका ताप भी मालूम हो रहा है। मगर एक करवट और लेकर सो जाने का मन है। और कंबल खींच लिया है। और एक करवट ले ली है। जीवात्मा--सोई हुई आत्मा। आत्मा--अर्ध जाग्रत जीव। और परमात्मा-- आत्मा पूर्ण जाग्रत। मगर ये आत्मा की ही अवस्थाएं हैं--महावीर ने कहा। परमात्मा कोई बाहर जगत को बनाने वाला स्रष्टा नहीं है। जगत को चलाने वाला नियंता नहीं है। तुम्हारे ही भीतर बैठा हुआ साक्षी है। यह ध्यानी का भाव रहा।
तो स्वभावतः ध्यानी ने कहाः कैसी पूजा? कैसी अर्चना? कैसी प्रार्थना? किसके लिए पूजा के थाल सजाते हो? पागल हो गए हो! अरे, भीतर जाओ! यह सब तो बाहर है।
और प्रेमी ने भी ध्यान को वर्जित किया। प्रेमी ने कहाः ये भीतर जाने
की बातें, फिर पूजा का थाल कौन सजाएगा? फिर प्रार्थना कौन करेगा? फिर प्रेम में किसके गिरेंगे हम? और बिना प्रेम के सब सूखा हो जाएगा।
प्रेमी ने कहाः मूर्ति में परमात्मा है--काबा में, और काशी में, और कैलाश में। प्रेमी ने कहाः मैं तो उसे पुकारूंगा। आकाश उससे भरा है। चांद-तारों में वह मौजूद है। यह सारा अस्तित्व उसकी लीला है। मैं तो एक बूंद हूं। इस बूंद को इस सागर में डुबाना है। बूंद बूंद में ही डूबती रहे, तो सागर कैसे हो जाएगी? बूंद बूंद में ही डूबती रहे, तो भी बूंद ही रहेगी। सागर में बिना डूबे निस्तारा नहीं है।
इसलिए प्रेमी ने पुकारा परमात्मा को कि तू कहां है? तू उबार मुझे! ध्यानी भीतर गया; प्रेमी ने अपने आंखें खोलीं और दूर चांद-तारों में उसकी झलक देखनी चाही।
दोनों सही थे; लेकिन दोनों अधूरे सही थे। और उन दोनों के अधूरेपन के कारण दुनिया में अधूरे धर्म पैदा हुए। ध्यानी के धर्म पैदा हुए; उन्होंने प्रार्थना वर्जित कर दी; उनके कारण प्रेम मर गया। और जब प्रेम मर जाए, तो जगत मरुस्थल हो जाता है। फिर उसमें हरियाली नहीं होती। झरने नहीं होते। कोयल नहीं कूकती। पपीहा नहीं बोलता। फूल नहीं खिलते। रास बंद हो जाता है। सब निराशा हो जाती है। अस्तित्व एक मरघट हो जाता है।
और प्रेमियों ने प्रेम के गीत गाए, बांसुरी बजाई, पैरों में घूंघर बांधे, नाचे। लेकिन चूंकि ध्यान की कमी थी; तू को तो पुकारा, मगर मैं का कोई पता न था। पुकारने वाले का भी पता न हो, तो तुम किसको पुकारोगे? अपना ही पता न हो, तो परमात्मा का क्या खाक पता होगा! जब तक बूंद से पहचान न हो, किस

बूंद को सागर में डुबाओगे? तो प्रेमी की दुनिया में थोड़ा रस तो दिखाई पड़ा, उसकी आंखों में थोड़ी मस्ती तो दिखाई पड़ी, लेकिन होश नहीं दिखाई पड़ा। उसके जीवन में गीत तो खूब बने, मगर गीतों में कुछ कमी रह गई। गीतों में ज्योति नहीं थी।
मैं चाहता हूं मेरा संन्यासी पूरा मनुष्य हो, अखंड मनुष्य हो। उसमें मरुस्थल जैसी शांति भी हो, सन्नाटा भी हो, विस्तार भी हो। बगिया जैसे फूल भी हों, झरने भी हों, कोयल भी बोले, पपीहा भी पुकारे। वह अपने को भी जाने और विराट को भी। कभी आंख बंद करके जाने; कभी आंख खोल कर जाने। क्योंकि बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। ध्यान से भीतर को जाने, प्रेम से बाहर को जाने। इसलिए मैं प्रेम और ध्यान को संन्यास के दो पंख कहता हूं। पर संन्यास घटता है छलांग की भांति। यह दीवानों का काम है। अगर परवाना सोचने लगे कि शमा पर गिरूं या न गिरूं? फायदा क्या है? मिट जाऊंगा। ज्योति के साथ एक हो जाऊंगा! बचूंगा तो नहीं। यह तो आत्महत्या है। तो परवाना ज्योति से दूर ही दूर रहने लगे; अंधेरे में ही जीने लगे; अंधा हो जाए। और ज्योति फिर कभी बन न पाए। परवाना तो देखता है शमा को, देखता है ज्योति को--और लगा जाता है छलांग। मिट जाता है। और मिट कर अपने को पा जाता है। मिट कर अंतरतम की अभीप्सा पूरी हो जाती है; ज्योति के साथ एक होने का आनंद पूरा हो जाता है। संन्यास छलांग है--सदगुरु की ज्योति में एक हो जाने की।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि प्रेम प्रगाढ़ होकर प्रार्थना बनता है
और प्रार्थना परमात्मा की ओर ले जाती है। जब कि मेरे जीवन में प्रेम दुख बन गया है। कृपापूर्वक इस संबंध में मार्ग-दर्शन करें।

सत्यनारायण! अमृत जहर हो सकता है, अगर नासमझ के हाथ में पड़ जाए। जहर अमृत हो जाता है, अगर समझदार के हाथ में पड़ जाए। तो न तो अमृत अमृत है, न जहर जहर। असली बात है, तुम पर निर्भर। किसी वैद्य के हाथ में पड़ कर जहर औषधि हो जाता है, मरते को बचा लेता है। और कोई नासमझ इतना अमृत पी सकता है कि पीकर ही मर जाए। जरूरत से ज्यादा पी जाए! सीमा के बाहर पी जाए!
मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, शायद तुम उस प्रेम की बात नहीं कर रहे हो। तुम किसी और ही प्रेम की बात कर रहे हो। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं जो प्रार्थना की तरफ ले जाता है। तुम उस प्रेम की बात कर रहे हो जो वासना की तरफ ले जाता है। और ये यात्राएं अलग-अलग हैं। ये यात्राएं विपरीत हैं।
प्रेम नीचे गिरे तो वासना बनता है; ऊपर उठे तो प्रार्थना बनता है। प्रेम उतार पर हो तो वासना; चढ़ाव पर हो तो प्रार्थना। प्रेम पहाड़ से लुढ़कने लगे पत्थर की भांति, तो वासना। और प्रेम को पंख लग जाएं और उड़ चले सूरज की तरफ, तो प्रार्थना।
नीचे उतरना तो दुखपूर्ण है। इसलिए तो सारे धर्म कहते हैं कि नरक नीचे है। नीचे का मतलब भौगोलिक मत समझना कि जमीन में गड्ढा खोदते चले जाएंगे, खोदते चले जाएंगे, खोदते चले जाएंगे, एक दिन नरक मिलेगा। नरक नहीं मिलेगा, अमरीका पहुंच जाओगे। और अमरीका के लोग अगर खोदते चले आएं, तो भारत-भूमि में, इस पुण्य भूमि में आ जाएंगे! वे भी यही सोचते हैं कि नरक नीचे है। दुनिया के सारे लोग सोचते हैं कि नरक नीचे है। नीचे की बात भौगोलिक नहीं है; नीचे की बात बड़ी गहरी है; उसका संदर्भ समझो। जब भी जीवन-चेतना नीचे की तरफ उतरती है, तो नरक में ले जाती है।
और यही अर्थ है स्वर्ग के ऊपर होने का। ऊपर होने का ऐसा अर्थ नहीं कि चले बैठ कर अंतरिक्ष यान में, और एक दिन स्वर्ग पहुंच जाएंगे! ऐसी भ्रांति रही होगी यूरी गागरिन को। क्योंकि उसने लौट कर जो पहली बात कही वह यह कही कि मैं चक्कर लगा आया चांद का, अंतरिक्ष की यात्रा कर आया, परमात्मा कहीं मिला नहीं। स्वर्ग इत्यादि कहीं भी नहीं है!
रूस में उन्होंने चंद्रयात्रा का पूरा का पूरा म्यूजियम तैयार किया है। तो चंद्रयात्री जो भी खबरें लाए हैं, चांद पर जाकर जो मिट्टी-पत्थर लाए गए हैं, वे सब वहां संगृहीत हैं। उस म्यूजियम के दरवाजे पर यूरी

गागरिन का यही वचन खोदा गया है--कि मैं देख आया चांद तक; अंतरिक्ष का चक्कर मार आया। न कोई स्वर्ग है, न कोई ईश्वर है।
आस्तिक भी भ्रांति है--और नास्तिक भी। आस्तिक की भ्रांति है, वह सोचता हैः स्वर्ग ऊपर। तो तुम जब प्रार्थना करते हो तो हाथ ऊपर उठा कर कि जैसे परमात्मा ऊपर।
परमात्मा तो सब तरफ है। नीचे भी वही, ऊपर भी वही। बाएं भी वही, दाएं भी वही। सब दिशाओं में वही। लेकिन ऊपर की बात सांकेतिक है, अर्थपूर्ण है। अर्थ को जोर से मुट्ठी बांध कर पकड़ोगे तो मर जाएगा।
कुछ अर्थ होते हैं जिनको मुट्ठी बांध कर नहीं पकड़ा जाता। नाजुक चीजें हैं ये। इनको झपट्टे से नहीं पकड़ते हैं। "नरक नीचे"--पकड़ लिया झपट्टे से। नक्शे लटके हैं मंदिरों में कि नरक नीचे, स्वर्ग ऊपर! और जिन धर्मों में अनेक नरकों की चर्चा है, वहां नरकों के नीचे नरक, सात नरक! तो चले जाओ नीचे, और नीचे। ड्रिलिंग करते जाओ। और स्वर्ग, सात स्वर्ग! चढ़ते जाओ! चढ़ाई पर चढ़ाई, पहाड़ पर पहाड़ आते जाते हैं। फिर सातवें स्वर्ग में ईश्वर विराजमान है।
ऊपर और नीचे काव्यात्मक प्रतीक हैं। नीचे का अर्थ हैः चेतना का अधोगमन। ऊपर का अर्थ हैः चेतना का ऊर्ध्वगमन। ऊर्ध्वरेतस हो जाना स्वर्गीय हो जाना है। तुम्हारे भीतर प्राण ऊपर की तरफ चलने लगें। वासना नीचे खींचने वाला तत्व है। वासना ऐसे है जैसे जमीन का गुरुत्वाकर्षण। सत्यनारायण! तुम कहते होः "मेरे जीवन में प्रेम दुख बन गया है।"
तुम्हारे जीवन में ही नहीं, सौ में से निन्यानबे प्रतिशत लोगों के जीवन में प्रेम दुख बनता है। क्योंकि बोते तो नीम हैं, और प्रतीक्षा करते हैं आम की! मैं कह रहा हूंः आम बोओ, तो आम की फसल आएगी। और फल से सिद्ध होता है कि वृक्ष क्या था। फल के पहले पता भी नहीं चलता।
जब नीम बोते हो, तब तो पता भी नहीं चलता कि क्या होने वाला है। जरा चख
कर बोओ। जरा निबोली को चखो। जरा उसके कड़वेपन को चखो। और फिर जब पहले-पहले पत्ते आने लगें नीम के, तो उनको भी चखो। इस पर जीवन समाप्त मत करो। इसमें कड़वाहट ही कड़वाहट है।
स्वर्ग के दरवाजे पर एक आदमी ने दस्तक दी। द्वारपाल ने खिड़की खोली। पूछा, आप कौन हैं? उस आदमी ने कहा, मेरा नाम चंदूलाल!
आप क्या चाहते हैं? यह स्वर्ग है।
चंदूलाल ने कहा, और क्या चाहता हूं! दरवाजा खोलिए। उस देवदूत ने पूछा
कि पहले एक बात का उत्तर देना होता है स्वर्ग में प्रवेश के पहले। शादीशुदा हो, गैर-शादीशुदा? चंदूलाल ने कहा कि शादीशुदा हूं। देवदूत ने कहा कि ठीक है फिर। नरक तुम देख चुके। अब आ जाओ स्वर्ग में। दरवाजा खोल दिया।
दरवाजा बंद ही कर पाया था कि फिर दस्तक। फिर खिड़की से झांका, आप कौन हैं? उसने कहा, मैं अभी वह जो चंदूलाल भीतर गया, उसका दोस्त ढब्बूजी! हम साथ ही साथ मरे कार एक्सिडेंट में। उसकी चाल जरा तेज है; मेरे पैर में जरा चोट ज्यादा आई है, तो मैं जरा घिसटता आ रहा हूं। दरवाजा खोलो! जब चंदूलाल भीतर चला गया तो मैं भी भीतर जाऊंगा। देवदूत ने पूछा कि पहले एक प्रश्न का जवाब दो। शादीशुदा कि गैर-शादीशुदा? ढब्बूजी ने कहा, चार बार शादी की। द्वारपाल ने दरवाजा बंद करते हुए कहा कि यह स्वर्ग है, कोई पागलखाना नहीं! भूलों से सीखो। एक बार तक माफ किया जा सकता है। मगर चार बार! एक सीमा होती है भूलों की। लेकिन लोग भूल वही की वही भूल दोहराए चले जाते हैं जीवन भर। फिर-फिर नीम के बीज बो देते हैं। सोचते हैं कि इस बार फसल कड़वी हो गई, अगली बार ठीक हो जाएगी, मगर बीज वही! बीज बदलने होंगे।
वासना का अर्थ होता हैः तुम भिखारी हो। और भिखारी प्रेम को नहीं जान सकते। वासना का अर्थ होता हैः तुम मांग रहे हो। पुरुष हो, तो स्त्री से मांग रहे हो कुछ कि तू दे दे सुख। उसके पास खुद ही नहीं है। वह तुमसे मांग रही है कि मैं झोली फैलाती हूं, भर दो मेरी झोली सुख से। वह भी भिखमंगिन, तुम भी भिखमंगे। दो भिखमंगे एक-दूसरे के सामने झोली फैलाए खड़े हैं, अड़चन न होगी तो क्या होगा! न उसके पास है देने को, न तुम्हारे पास है देने को। तुम भी चाहते हो, वह भी चाहती है। दुनिया में लोग शिकायत करते हैंः प्रेम नहीं

मिलता। ऐसी कोई शिकायत नहीं करता कि मैं प्रेम नहीं देता। मेरे पास कितने लोग आकर कहते हैं कि दुनिया में प्रेम नहीं। कोई देता ही नहीं तो दुनिया में प्रेम हो कैसे? सब चाहते हैं कि मिले।
वासना का अर्थ है--मिले। और प्रार्थना का अर्थ है--दो। प्रार्थना दान है। वासना भिक्षा है। लेकिन देने के पहले होना चाहिए न! वही तो दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। तो प्रेम पैदा करो।
प्रेम को पैदा करना बड़ी कला है। जीवन का आमूल रूपांतरण करना होता है। जिनके चित्त घृणा से भरे हैं, भय से भरे हैं, ईर्ष्या से भरे हैं, वैमनस्य से भरे हैं, अहंकार से भरे हैं, वहां प्रेम के बीज पैदा कैसे होंगे? यह तो ऐसा समझो कि घास-पात, घास-पात ऊगा हुआ है तुम्हारे पूरे प्राणों में, और उसमें तुमने बीज डाले चमेली के कि चंपा के। घास-पात खा जाएगी बीजों को।
घास-पात की एक खूबी हैः उसे बोना नहीं पड़ता, वह अपने आप ऊगती है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोसी ने मुल्ला नसरुद्दीन के बगीचे को देखा। पड़ोसी नया-नया। उसने कहा, बड़ा प्यारा बगीचा लगाया है! घास भी आपकी बड़ी प्यारी है। गुलाब के फूल भी बड़े सुंदर। मैं भी बगीचा बनाना चाहता हूं।
मैंने भी गुलाब बोए हैं। लेकिन पता ही नहीं चलता, कौन गुलाब है, कौन घास-पात है! इसके पता चलाने का उपाय क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, बड़ा सुगम उपाय है। तुम सबको उखाड़ कर फेंक दो। जो फिर से उग जाए वह घास-पात। जो फिर से न उगे, समझ लेना गुलाब था।
घास-पात की एक खूबी हैः वह अपने से उग आता है। वासना की एक खूबी हैः वह अपने से आ जाती है। वह जन्म के साथ ही आती है। सच तो यह है कि तुम्हारा जन्म ही उसी के कारण होता है। मरते वक्त जो वासनाएं तुम्हारे चित्त में थीं, वही तुम्हारे जन्म का कारण बनती हैं। वासनाएं तो पाश हैं, उनमें बंधे, उनमें खिंचे हम चले आते हैं।
हमारे पास एक शब्द है--पशु। वह बड़ा प्यारा शब्द है। दुनिया की किसी भाषा में वैसा शब्द नहीं है। अंग्रेजी में पशु को एनिमल कहते हैं। मगर एनिमल में वह बात नहीं है। उलटी ही बात है। एनिमल बनता है एनिमा से। एनिमा का मतलब होता है प्राणवान, जीवंतता। तो जो प्राणवान है वह एनिमल। जो सप्राण है वह एनिमल।
हमारा शब्द पशु बड़ा अदभुत है। पशु का अर्थ है जो पाश में बंधा है; जिस
पर जंजीरें हैं; जो जंजीरों में खिंचा चला आया है। जैसे गाय को कोई रस्सी में बांध कर ले चले। तो गाय पशु है। लेकिन तुम भी रस्सियों से बंधे हो। और शायद रस्सियां भी ऐसी जो तुम्हीं बुनते हो। तुम्हारे जाल भी ऐसे जो तुम्हीं बनाते हो। जैसे मकड़ी जाला बुनती है और कभी-कभी खुद के बनाए जाले में फंस जाती है। और हम तो सब खुद के ही बनाए जालों में फंसे हैं। किसी और का बनाया जाला नहीं है।
थोड़ा सजग होना होगा, सत्यनारायण! तुमने जिसे प्रेम समझा है, वह प्रेम नहीं है--काम है, कामना है, वासना है। मांग है उसमें। तुम्हारे प्रेम का अर्थ अभी तक इतना ही है कि दूसरे से सुख मिल जाए, दूसरे का शोषण कर लूं। और दूसरा तुम्हारा शोषण करना चाह रहा है! तुम दोनों एक-दूसरे के शोषक हो। तुम एक-दूसरे को दुखी करोगे, और क्या करोगे! शोषण से दुख ही पैदा होता है। तुम्हारा प्रेम दान बनना चाहिए। दान बनने के पहले तुम्हारे पास होना चाहिए। संपदा होनी चाहिए प्रेम की। उसी प्रेम की कला को मैं यहां सिखाने की कोशिश कर रहा हूं।
प्रेम की कला के कुछ सूत्र हैं। पहले तो घास-पात उखाड़ कर फेंको; नहीं
तो गुलाब बढ़ेंगे ही नहीं। अगर किसी तरह बढ़ भी गए, तो उनमें फूल न आएंगे। अगर फूल आए भी, तो बड़े छोटे होंगे, मुर्दा होंगे; उनमें सुवास न होगी। क्योंकि घास-पात चारों तरफ सारी जमीन के रस को पी जाता है; फूलों तक रस पहुंच ही नहीं पाता। अपने जीवन को घास-पात से मुक्त करो। भय, क्रोध, वैमनस्य, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, ये सब घास-पात हैं। इसको जब तक तुम छांट न दोगे, तब तक तुम्हारे जीवन में प्रेम का अनुभव होगा ही नहीं। इस सब में ही तुम्हारी ऊर्जा उलझी हुई है। प्रेम बने तो किस ऊर्जा से बने?
तो तुम इन्हीं के ऊपर प्रेम के लेबल लगा देते हो। तुम घृणा को ही प्रेम कहने लगते हो। तुम ईर्ष्या को ही प्रेम कहने लगते हो। तुम्हारी

पत्नी किसी से बात कर रही है। बस ईर्ष्या जग जाती है। कि तुम्हारा पति किसी स्त्री के साथ तुमने देख लिया।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी को लेकर निकला है बाजार से। एक बड़ी सुंदर युवती ने कहा, हलो नसरुद्दीन! नसरुद्दीन तो कुछ बोला ही नहीं। पतिदेव ऐसी अवस्था में बिल्कुल चुप रहते हैं। मगर पत्नी तो आगबबूला हो गई। उसने कहा, यह औरत कौन है? मैं एक कदम आगे न बढूंगी। पहले इसके संबंध में मुझे समझाओ। नसरुद्दीन ने कहा कि देवी, तू मुझे माफ कर! असल में इससे भी बड़ी मुसीबत मेरे ऊपर है। उसकी पत्नी ने पूछा, वह क्या? उसने कहा, वह यह कि उस स्त्री को मुझे समझाना होगा कि वह कौन औरत थी जो तेरे साथ थी! अब तू मुझे छोड़। एक ही काफी है। उसने जो हलो नसरुद्दीन कहा है, उसका मतलब मैं जानता हूं कि बच्चू! यह कौन औरत? अब मुझे जो झंझट उसके साथ होगी वही काफी है। अब तू तो अपनी पत्नी है, कम से कम तू तो चुप रह।
स्त्रियों का प्रेम, तथाकथित प्रेम; पुरुषों का प्रेम, तथाकथित प्रेम--जरा उस प्रेम को कुरेदो और जरा उसके भीतर झांक कर देखो, तुम बड़े हैरान हो जाओगे! उसके भीतर कुछ और पाओगे।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान आए हुए हैं। पत्नी भोजन परोस रही है। नमक की जरूरत पड़ गई, तो मुल्ला भागा। पांच मिनट बीत गए, दस मिनट बीत गए; मेहमान बैठे हैं। पत्नी ने कहा कि अभी तक तुम्हें नमक का डिब्बा नहीं मिला? आंखें हैं कि नहीं!
नसरुद्दीन ने कहा, करीब-करीब सब डिब्बे खोल कर देख चुका। किसी में हल्दी। किसी में कुछ। किसी में जीरा। नमक का डिब्बा दिखता ही नहीं। पत्नी ने कहा, आंख के अंधे, सामने रखा है तुम्हारे! जिस पर मिर्ची लिखा है, उसी में नमक है!
डिब्बों पर कुछ लिखा है, भीतर कुछ है! तुम जिसको प्रेम कहते हो, उसके भीतर क्या है? तुमने सच में किसी को प्रेम किया है सत्यनारायण? तुमने सच में किसी को अपने को अर्पित किया है? तुमने प्रेम में समर्पण देखा है? तुम जिसे प्रेम किए हो, उसके लिए मर सकते हो, मिट सकते हो? तुमने अपने प्रेम को क्या दिया है?
देने की तो बात ही मत करो! लोग लेने की बात करते हैं। हर एक चाहता है कि मिले।
एक युवक अपने मित्र से पूछ रहा था कि मैं किससे शादी करूं? कोई पांच-
छह स्त्रियां हैं। तय ही नहीं कर पा रहा हूं!
प्रेम भी तय करना होता है? प्रेम तो हो जाता है। तय करना पड़े तो प्रेम नहीं है, कुछ और है।
उसके मित्र ने पूछा, अड़चन क्या है? तो उसने कहा कि सबसे बड़ी अड़चन तो दो स्त्रियों के बीच है। असली सवाल उन दो में से तय हो जाए तो हल हो जाएगा। एक सुंदर है, लेकिन गरीब है। एक कुरूप है, बहुत कुरूप, लेकिन अमीर है।
उस मित्र ने कहा, तुम प्रेम का अर्थ समझते हो? अगर तुम्हें सच में प्रेम है, तो सुंदर स्त्री से प्रेम करो; उसी से विवाह करो। पैसे का क्या है? हाथ का मैल है।
उसने कहा, ठीक। तुमने ठीक सलाह दी। मित्र वही जो वक्त पर काम आए।
जब दोनों विदा होने लगे तो मित्र ने पूछा, और कृपा करके दूसरी स्त्री
का पता-ठिकाना मुझे दे दो!
लोगों की उत्सुकताएं, अपेक्षाएं, आकांक्षाएं बड़ी और हैं। नाम कुछ भी हो।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही थी कि देखते नहीं चंदूलाल को सामने ही! ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता कि अपनी पत्नी को नई साड़ी लाकर न देता हो। इसको कहते हैं प्रेम! ऐसा कोई महीना नहीं जाता कि कोई आभूषण न खरीदता हो। इसको कहते हैं प्रेम! ऐसा कोई साल नहीं जाता जब उसने कुछ हीरे-जवाहरात न खरीदे हों। इसको कहते हैं प्रेम! एक तुम हो। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, चाहता तो मैं भी हूं कि हर सप्ताह साड़ी खरीदूं; हर सप्ताह आभूषण खरीदूं; हर साल हीरे-जवाहरात खरीदूं। अरे कौन नहीं चाहता! मगर मैं चंदूलाल से डरता हूं। उसकी पत्नी ने कहा, चंदूलाल से इसमें डरने की क्या जरूरत? मुल्ला ने कहा, चंदूलाल पहलवान है, हट्टा-कट्टा है। हड्डी-पसली तोड़ देगा। उसकी पत्नी

ने कहा, इसमें चंदूलाल आता ही कहां है? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, आता क्यों नहीं! क्योंकि मैं उसी की पत्नी को तो ये चीजें भेंट करूंगा।
लोग रह रहे हैं किसी के साथ, नजरें कहीं और लगी हैं। शरीर कहीं है, प्राण कहीं हैं। और इसको प्रेम कहते हैं! और प्रेम भी तौला जाता है-- साड़ियों में, आभूषणों में, हीरे-जवाहरातों में।
यह सब प्रेम नहीं है। ईर्ष्या प्रेम के वस्त्र पहने खड़ी है। द्वेष प्रेम के वस्त्र पहने खड़ा है। इसीलिए तो तुम्हारा प्रेम कभी भी घृणा में बदल सकता है; क्षण भर में घृणा में बदल सकता है। जिसके लिए जान देने को तैयार थे, उसी की जान लेने को तैयार हो सकते हो! और प्रेमी चौबीस घंटे लड़ते हैं। अगर उनकी जिंदगी देखो, तो लड़ते ज्यादा हैं। लड़ना-झगड़ना ही जैसे एक प्रेम का ढंग उन्हें आता है। इसलिए अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम ने दुख लाया, तो आश्चर्य तो नहीं। तुमने जैसा प्रेम किया, वैसा फल पाया।
मैं किसी और ही प्रेम की बात कर रहा हूं। मैं कह रहा हूं, प्रेम बेशर्त होना चाहिए। मांगो मत कुछ। दे सको तो दो। जो भी दे सको तो दो।
और देने के पहले तुम्हारे पास होना चाहिए। इसलिए प्रेम के पहले ध्यान में उतरना जरूरी है। ध्यानी ही प्रेम कर सकता है। और प्रेमी ही ध्यानी हो सकता है। क्योंकि जो ध्यान में उतरेगा, वह अपने भीतर ऐसे अजस्र स्रोत पाएगा आनंद के कि बांटना ही होगा उन्हें। फिर बांटोगे किसे? उन्हीं को बांटोगे जो तुम्हारे निकट हैं, समीप हैं, अपने हैं। पत्नी हो, पति हो, मां हो, पिता हों, भाई-बहन हों, मित्र हों। बांटोगे कहां? अपने भीतर जाओगे तो आनंद के झरने पाओगे, तो फिर अपने मित्रों को भी निमंत्रित करोगे कि इन झरनों का थोड़ा स्वाद लो। फिर क्षुद्र से तुम्हारी आंखें उठेंगी। और जब अपने भीतर आत्मा को पाओगे, तो अपनी पत्नी में भी आत्मा को पाओगे। नहीं तो पत्नी देह ही रह जाएगी। और देह मिट्टी है। मिट्टी को लाख प्रेम करना चाहो कैसे प्रेम करोगे! प्रेम तो आत्मा से हो सकता है। प्रेम तो अदृश्य से ही हो सकता है। मगर अदृश्य का तो अपने भीतर ही पता नहीं चलता, तो दूसरे के भीतर कैसे पता चले!
तो पहले जरा अपने भीतर चलो। पहले जरा अपनी खोज करो। अपने पैरों पर खड़े
हो जाओ। अपना खजाना खोजो। फिर बांटो। और तब तुम पाओगेः तुम्हारे जीवन में प्रेम सुख ही सुख लाता है। और जब तुम पाओगे कि बांटने से प्रेम सुख लाता है, तो तुम फिर कंजूसी क्यों करोगे? फिर तुम बांटोगे। उलीचोगे दोनों हाथ। फिर जो भी लेने को राजी होगा, उसको तुम देने को राजी हो जाओगे। फिर अपनों को ही क्यों, परायों को भी। फिर कौन अपना, कौन पराया!
इसलिए जीसस कहते हैंः मित्र से ही नहीं, शत्रु से भी प्रेम। जब प्रेम पैदा होगा, तो मित्र मित्र रहते हैं, शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। फिर कोई और उपाय नहीं है।
सूफी फकीर स्त्री राबिया ने कुरान में एक वचन काट दिया था।
कुरान में वचन काटा नहीं जा सकता। वेद में तुम सुधार कर सकते हो? कि उठाई कलम और काट कर और ठिकाने कर दिया वेद को! हिंदू बहुत नाराज होंगे। और हिंदू चाहे इतने नाराज न भी हों, लेकिन मुसलमान तो बरदाश्त ही नहीं कर सकेंगे कि कुरान में कोई और तरमीम करे! वह तो आखिरी किताब है। परमात्मा ने आखिरी किताब भेज दी। चौदह सौ साल से परमात्मा को फिर कुछ सुधार करने की सूझी ही नहीं! दुनिया इतनी बदल गई। सब बदल गया। लेकिन कुछ लोग हैं जो किताबों में ही, पुरानी किताबों में ही खोजते रहते हैं।
एक स्कूल में कोई पढ़ा रहा है पादरी, बच्चों को, कि परमात्मा ने सब सरकने वाली चीजें बनाईं। एक छोटा सा लड़का खड़ा हो गया--बच्चे भी ऐसे सवाल पूछ देते हैं--कि रेलगाड़ी किसने बनाई? तो उसने कहा, अरे यही तो सरकने वाली चीज है!
सरकने वाली चीज में रेलगाड़ी भी आ गई! जिसने यह वचन लिखा है बाइबिल में
कि परमात्मा ने सब सरकने वाली चीजें बनाईं, उसका मतलब हैः सांप इत्यादि। उसने कभी कल्पना भी न की होगी कि रेलगाड़ी भी सरकने वाली चीजों में आ जाएगी! मगर जिनकी नजरें पुरानी किताबों पर अटकी हैं, वे तो हर अर्थ वहीं से निकालेंगे।

जब पहली दफा यह खोज हुई कि जमीन बहुत प्राचीन है, कोई चार अरब वर्ष पुरानी है, तो ईसाई बड़ी मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि ईसाइयों की किताब तो कहती है कि जीसस से ठीक चार हजार चार साल पहले। जरूर रहा होगा सोमवार का दिन, पहली जनवरी। ठीक चार हजार साल पहले जीसस के। तो अब से समझो कि छह हजार साल पहले पृथ्वी बनी। और छह दिन में सब बना दिया परमात्मा ने। सातवें दिन तो आराम किया। इसलिए तो रविवार की छुट्टी! जब तक ईसाई हिंदुस्तान नहीं आए थे, तब तक हिंदुस्तान में रविवार की छुट्टी का कोई सवाल ही नहीं था। हिंदुस्तान में छुट्टी इस तरह होती ही नहीं थी, साप्ताहिक छुट्टी। क्योंकि हिंदुओं का परमात्मा सात दिन काम करता है। छुट्टी लेता ही नहीं! न रिटायर होता, न पेंशन पर जाता। लगा ही है! ईसाइयों का परमात्मा भी लचर-पचर रहा, छह ही दिन में ठंडा हो गया! सातवें दिन जो वह चादर ओढ़ कर सोया, तो फिर नहीं जगा। फिर उसने लौट कर भी नहीं देखा कि हालत क्या हुई! दुनिया की क्या हालत है!
मुल्ला नसरुद्दीन अपने दर्जी के पास गया था और दर्जी से कह रहा था कि भैया, अगर अब कोट बन गया हो तो दे दो। साथ में अपने लड़के को भी लाया था। कह रहा था कि सत्रह साल हो गए कोट बनने दिए। जब मैंने दिया था, मैं सत्रह साल का था। अब मेरा लड़का सत्रह साल का है। अभी भी दे दो, तो मेरे लड़के के काम आ जाएगा। कम से कम अपनी आंखों को तो तृप्ति मिलेगी; देख लूंगा कि पहन लिया लड़के ने।
दर्जी ने अपने असिस्टेंट की तरफ देखा और कहा कि हजार दफे कहा कि अर्जेंट काम मत लिया करो! और मुल्ला नसरुद्दीन से कहा कि तुमने समझा क्या है! अरे कोई चीज बनती है तो वक्त लगता है। कोई जादू तो है नहीं कि मार दी फूंक और बस कोट बन गया! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सत्रह साल काफी समय नहीं है? अरे परमात्मा ने सारी दुनिया छह दिन में बना दी थी! उस दर्जी ने कहा कि जरा एक दफा नजर डालो दुनिया की तरफ! छह दिन में बनाई, तो कैसी दुर्गति हो रही है! मैं तो जब काम करता हूं तो पुख्ता करता हूं! लड़का पहने, कि लड़के का लड़का पहने, कोई फिक्र नहीं। मगर चीज बनाऊंगा, तो एक चीज बनाऊंगा। छह दिन में जल्दबाजी हुई होगी। भाग-दौड़ में सब बना-बनु दिया होगा। तो सब उलटा-सीधा है!
राबिया को एक ऐसा वचन मिल गया कुरान में जो उसको जंचा नहीं, उसने काट दिया। फकीर हसन उसके घर ठहरा था। उसने कुरान पढ़ी। कुरान में सुधार देखा, लकीर कटी देखी, उसने राबिया को कहा कि हे राबिया, यह किस नासमझ ने कुरान में सुधार किया, तरमीम की? राबिया ने कहा, मैंने की। तब तो हसन और चौंका। उसने कहा, तू इतनी पवित्र, इतनी प्रार्थनापूर्ण, इतनी पहुंची हुई--और तूने कुरान में सुधार किया! उसने कहा, करना पड़ा। मजबूरी हो गई। पहुंचने के कारण ही करना पड़ा। अब यह कुरान में लिखा हुआ है--शैतान को घृणा करो। और जब से मेरे जीवन में प्रेम पैदा हुआ है, मुझे कोई शैतान दिखाई ही नहीं पड़ता। अब मेरे सामने शैतान आकर खड़ा हो जाए तो भी मैं प्रेम ही कर सकती हूं, क्योंकि मेरे पास घृणा ही न बची। मैं घृणा करूंगी कहां से! यह किताब मेरी है। यह कुरान मेरी है। मुझे आखिर अपनी स्थितियों को देख कर ही तो अपनी कुरान ठीक करनी पड़ेगी। इसलिए मैंने ठीक कर दी है यह कुरान। अब मेरे लिए न कोई शैतान है, न मेरे लिए कोई घृणा है। अब तो जो भी है परमात्मा है। और जो भी है, उसे मैं प्रेम ही दे सकती हूं, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे पास और कुछ भी बचा नहीं। मेरी सारी जीवन-ऊर्जा प्रेम हो गई है।
घृणा को विदा करो। वैमनस्य को विदा करो। ईर्ष्या-स्पर्धा को विदा करो। और अपने में डुबकी लगाओ। आत्मा से थोड़े परिचित होओ। तब तुम्हारे भीतर वह ध्यान जगेगा, जो प्रेम बन जाता है संबंधों में। ध्यान ही संबंधों में प्रेम बनता है। और ये एक-दूसरे के ऊपर अन्योन्याश्रित हैं। जितने तुम प्रेम में गहरे उतरोगे, उतनी तुम्हारी क्षमता स्वयं के भीतर जाने की गहरी हो जाएगी। क्योंकि प्रेम दर्पण है। जैसे दर्पण में कोई अपना चेहरा देख लेता है। अपना चेहरा तुम बिना दर्पण के देख भी नहीं सकते।
अमृतसर से एक ट्रेन दिल्ली की तरफ आ रही है। एक सरदार जी बार-बार जाकर संडास का दरवाजा खोलते हैं, भीतर देखते हैं; कहते हैं, क्षमा करिए! बंद करके वापस आ जाते। यह इतनी बार कर चुके कि टिकट कलेक्टर भी बैठा है, उसने

कहा कि मामला क्या है? उन्होंने कहा कि एक सरदार जी अंदर घुसे हैं, सो निकलते ही नहीं। अब एक ही संडास में दो-दो आदमी कैसे घुस जाएं! सो मैं माफी मांग कर वापस आ जाता हूं।
टिकट कलेक्टर उठा। वह भी सरदार जी! उसने भी जाकर धीरे से दरवाजा खोला। जल्दी से बंद किया। कहा, माफ करिए! लौट कर कहा कि आप ठीक कहते हैं। न केवल अंदर घुसा हुआ है, सरकारी कर्मचारी मालूम होता है! कम से कम सरकारी कर्मचारियों को, रेलवे के कर्मचारियों को तो ध्यान रखना चाहिए--कि अब घुसा है तो घुसा ही है! निकल ही नहीं रहा है!
तब पहले सरदार जी की पत्नी उठी थोड़ी देर बाद। जाकर दरवाजा खोला। भीतर झांक कर देखा। कहा, माफ करिए! दरवाजा बंद करके आई और लौट कर अपनी पति से बोली, मुझे पहले ही पता था कि तुम क्यों बार-बार वहां जा रहे हो। मुझे शक था कि कोई रांड वहां होनी ही चाहिए। और टिकट कलेक्टर से कहा कि तुम्हें भी शर्म नहीं आती!
दर्पण में तो चेहरा अपना दिखाई पड़ेगा। प्रेम में तुम्हें वही दिखाई पड़ेगा जो तुम हो। प्रेम दर्पण है। अगर तुम दुखी हो, तो दुख दिखाई पड़ेगा। अगर तुम आनंदित हो, तो आनंद दिखाई पड़ेगा। अगर तुम्हें परमात्मा का अनुभव हुआ है, तो तुम्हें हर प्रेम-पात्र में परमात्मा दिखाई पड़ेगा। और निश्चित ही प्रेम जब प्रगाढ़ होता है, तो परमात्मा तक पहुंचाने का सेतु बन जाता है। मैंने जितने ही चित्र बनाए गीतों के
उतना ही प्राणों के समीप तू आया क्यों?
उस बंधन पर सौ-सौ मुक्तियां निछावर थीं
जिसको तैयार किया तेरे उच्छवासों ने।
उस कण में घिर हृदय-सुमन मुस्काता था
जिसका निर्माण किया तेरे विश्वासों ने। जब-जब भी मझधारों ने मुझे डुबोया था
तब लहरों पर बिठला तट पर पहुंचाया क्यों? मैं भटक रही अब तक मन की उन गलियों में
जिनमें स्वर गूंज रहा तेरी बांसुरिया का।
कैसे वे दृश्य भुला पाऊंगी कह निर्मम
जिनमें जादू बोला मेरी पायलिया का।
जितना नैराश्य-तिमिर से डर कर भागी मैं
उतना जीवन से करना प्यार सिखाया क्यों?
भागो कितने ही, परमात्मा तुम्हें वापस-वापस प्रेम में भेजेगा। क्योंकि प्रेम सीखना ही होगा। बिना उसके दर्पण नहीं मिलता। और प्रेम में अगर दुख भी भोगना पड़े, तो भोगना होगा। क्योंकि वह दुख निखारेगा। और प्रेम के रास्ते पर अगर कांटे मिलें, तो झेलने होंगे। क्योंकि वे ही कांटे फूलों की तरफ इशारा करते हैं।
जितना नैराश्य-तिमिर से डर कर भागी मैंउतना जीवन से करना प्यार सिखाया क्यों?
यह परमात्मा ने झंझट क्यों दी! यह महात्माओं को इतना परेशान क्यों किया है! परमात्मा महात्माओं का दुश्मन मालूम होता है। महात्मा चाहते हैं सब तरह से प्रेम से छुटकारा हो जाए; झंझट छूटे; मुक्ति मिले। निश्चित ही परमात्मा के इरादे कुछ और हैं। अगर परमात्मा को महात्मा ही बनाने होते, तो प्रेम क्यों बनाता! परमात्मा जानता है कि बिना प्रेम के कोई महात्मा नहीं हो सकता। और जो महात्मा बिना प्रेम के हो गए हैं, उनका महात्मापन दो कौड़ी का है, थोथा है, छिछला है; उसकी कोई कीमत नहीं है। उन्होंने दर्पण में झांक कर ही नहीं देखा। उनको पता ही क्या चलेगा कि उनका चेहरा कैसा है! और उन्होंने प्रेम की पराकाष्ठा का स्वाद ही नहीं लिया, इसलिए प्रेम को गालियां दे रहे हैं।
संसार को वही गाली देता है जो यह जानने से वंचित रह गया है कि संसार एक परीक्षा है। परमात्मा प्रतिपल तुम्हें अनेक-अनेक परीक्षाओं से गुजार रहा है।
किसी भी चीज से भागना मत, सत्यनारायण। पलायन मत करना। प्रत्येक चीज
को समझने का उपाय करो। अगर प्रेम दुख दे रहा है, तो समझने की फिक्र करो--

क्यों? कहीं कुछ कारण होगा। और कारण तुममें होगा। प्रेम में तो कारण नहीं है। प्रेम तो अमृत है। लेकिन तुम्हारे पात्र में हो सकता है जहर हो। उस जहरीले पात्र में अगर प्रेम भी डाल दोगे, वह भी जहरीला हो जाएगा। गंदे बरतनों में शुद्ध पानी तो नहीं पी सकते हो। गंदी मटकियों में शुद्ध पानी भरोगे, तो गंदा हो जाएगा।
नीर खूब बरसा है, रोम-रोम तरसा है,
पीर नहीं जाने की, नींद नहीं आने की।
एक मेघ शेष रह गया न आसमान में,
खिल गए हजार फूल सांवरे वितान में,
किंतु और-और गात भीग रहा बात का,
गूंज रही बूंदों की झरर-झरर कान में,
आंख छलछलाती है, और सूख जाती है,
पर न मुस्कुराने की।
नैन आज झपते ही खुलते अनजान में,
लगता है रात गई, सो रहा विहान में,
दृष्टि घूम जाती, भ्रम होता बरसात का--पात झरझराते हैं जब-जब सुनसान में,
खीझ कसमसाती है,
चेतना लजाती है,
पर न मुंह छिपाने की।
पानी में डूबा सा माटी का गेह है
लहरों में सिहर-सिहर तिरती सी देह है
सूख रहे प्राण, जब कि अंग-अंग गीला सा--
उड़ती सी जाती इन सांसों की खेह है
रोशनी न भाती है,
यह शिखा जलाती है,
पर न दम बुझाने की।
प्रेम जलाएगा। प्रेम डुबाएगा। प्रेम मिटाएगा। मिटो! डूबो! जलो! लेकिन प्रेम को मत छोड़ देना। प्रेम को निखारो। प्रेम में जो-जो अप्रेम जैसा है, उसे छोड़ो--और प्रेम को बचाओ।
संसारी हैं वे लोग, जो प्रेम के नाम पर सब तरह का अप्रेम किए जाते हैं।
और भाग गए भगोड़े, त्यागी-व्रती हैं वे लोग, जो अप्रेम के डर से प्रेम को भी छोड़ भागे। माना कि सोना शुद्ध नहीं है, लेकिन शुद्ध किया जा सकता है; छोड़ कर भागने की क्या जरूरत है! दोनों ही मूढ़ हैं। भोगी भी मूढ़, तुम्हारा त्यागी भी मूढ़। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि तुम न भोगी बनो, न त्यागी; दोनों का अतिक्रमण करो। भोग में भी परमात्मा छिपा है, उसे खोजो। और त्याग में भी परमात्मा छिपा है, उसे खोजो। और जिस दिन तुम परमात्मा को पाओगे, उस दिन तुम भोग और त्याग को अलग-अलग नहीं पाओगे। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। व्यर्थ का त्याग अपने आप हो जाता है। सार्थक का भोग अपने आप हो जाता है।
सत्यनारायण, पूछते होः "आप कहते हैं, प्रेम प्रगाढ़ होकर प्रार्थना बनता है... ।"
निश्चय ही। इसमें कोई दो मत नहीं हैं।
और तुम पूछते हो कि "प्रार्थना परमात्मा की ओर ले जाती है, ऐसा भी आप कहते हैं। जब कि मेरे जीवन में प्रेम दुख बन गया है!"
तो जरूर प्रेम के नाम से कुछ और प्रेम के आवरण पहन कर चल रहा है। पहचानो। आंख खोलो। जांच-परख करो। और आंख खोलनी है, तो ध्यान करना होगा। ध्यान के बिना आंख नहीं खुलती। ध्यान के बिना तो अंधे हो। फिर चाहे नैनसुख नाम ही क्यों न रख लो! नैनसृख नाम रखने से अंधे की आंख नहीं आ जाती। और हम नाम रखने में बड़े कुशल हैं। कोई आदमी अंधा होता है, तो उसको कहते हैं प्रज्ञाच्रु। आंख वालों को नहीं कहते प्रज्ञाच्रु। अंधे को कहते हैं।
बेचारे अंधे को खूब सांत्वना दे रहे हो! उसके पास चमड़े की आंखें नहीं हैं इसका यह मतलब नहीं है कि उसके पास आत्मा की आंखें होंगी। जरूरी नहीं है।
नहीं तो सभी अपनी आंखें फोड़ लें और प्रज्ञाच्रु हो जाएं।

आंखें फोड़ने से कुछ भी न होगा; आंखों का उपयोग करना है। अभी बाहर देखा,
अब भीतर देखो। अभी बाहर आंखें भटकाते रहे, अब जरा भीतर ले चलो, जरा अंतर्यात्रा में उतरो।
ध्यान है अंतर्यात्रा। और जिसकी अंतर्यात्रा सफल है, उसकी बहिर्यात्रा भी सफल हो जाती है। क्योंकि फिर वे ही आंखें भीतर के रस को लेकर जब बाहर देखती हैं, तो उस परम रस का अनुभव होने लगता है। जिस दिन तुम्हें अपनी पत्नी में परमात्मा दिखाई पड़े, अपने पति में परमात्मा दिखाई पड़े, अपने बच्चों में परमात्मा दिखाई पड़े--उस दिन जानना कि धर्म का जन्म हुआ है, उस दिन जानना कि संन्यास हुआ। उसके पहले नहीं। उसके पहले सब पलायन है, कायरता है, भगोड़ापन है।

तीसरा प्रश्नः मैं दुखी क्यों हूं?

हरिदास! दुख एक ही है--परमात्मा से पहचान न होना। और सब दुख तो बस नाममात्र के दुख हैं। और सब दुख तो उसी एक दुख के प्रतिफलन हैं, प्रतिध्वनियां हैं। घाव तो एक है--परमात्मा से टूट जाना। पीड़ा तो एक है-- उसकी प्रतीति न होना।
तुम पूछते होः "मैं दुखी क्यों हूं?"
क्योंकि तुम हो, और जरूरत से ज्यादा हो; वही तुम्हारा दुख है। परमात्मा को होने दो। खुद हटो, राह दो, बीच में खड़े न होओ, शून्य हो जाओ।
इसीलिए तो तुम्हें नाम दिया हरिदास का। हरिदास का अर्थ हैः तुम अब हो ही नहीं। बस एक चाकर। मीरा कहती है न--चाकर राखो जी! प्रभु के चाकर हो जाओ।
उसको मालिक होने दो। तुम मिटो। तुम जगह खाली कर दो। सिंहासन को रिक्त कर दो। उसे विराजमान करो सिंहासन पर। और आनंद ही आनंद की वर्षा हो जाएगी।
अगर तुम खोजने चले कि दुख में क्यों हो, तो हजार-हजार कारण मिलेंगे।
शरीर के दुख हैं अनंत। मन के दुख हैं अनंत। भाव के, भावना के दुख हैं अनंत।
उनकी तो कोई गिनती नहीं। अगर एक-एक दुख को मिटाने चले, तो कब मिटा पाओगे? इधर एक को मिटा न पाओगे, तब तक दस और पैदा हो जाएंगे।
एक-एक दुख को मिटाने से काम नहीं चलेगा। रामबाण औषधि चाहिए। किस औषधि
को रामबाण कहते हैं? राम ही रामबाण है। एक औषधि चाहिए जिससे सारी व्याधियां मिट जाएं, तो ही पार हो सकता है। अगर एक-एक दुख को मिटाने का उपाय करना पड़ा, तो जिंदगी बहुत छोटी है, दुख बहुत हैं। और तुम एक को किसी तरह सम्हाल पाओगे कि तुम अचानक पाओगे, दूसरी तरफ छेद हो गया, दूसरी तरफ दीवाल गिरने लगी। वहां टेका लगा पाओगे कि तीसरी तरफ मकान गिरने लगा! वहां किसी तरह सम्हाल पाओगे कि लगेगा जिंदगी हाथ से निकल गई, मौत करीब आ गई। सब सम्हालना-वम्हालना बेकार गया। रहने का अवसर ही न आया; घर कभी बन ही नहीं पाया।
एक है औषधि।
एक झेन फकीर से किसी ने पूछा, संक्षिप्त में कह दें धर्म का सार! तो वह फकीर कुछ बोला ही नहीं। वह चुपचाप बैठा रहा, पूछने वाले की आंखों में देखता रहा। पूछने वाला थोड़ा तिलमिलाया। बेचैन भी हुआ। पसीना-पसीना हो गया कि यह कैसा आदमी है! हम पूछते हैं कि ध्यान, धर्म, सत्य के संबंध में कुछ एक छोटी सी बात कह दें जो हमारे काम आ जाए। यह बोलता ही नहीं! और ऐसे देखता है आंखों में जैसे हमने कोई चोरी की हो! कहा कि आप कुछ बोलते क्यों नहीं? और आंख में क्या देख रहे हैं? और मुझको डरवाते क्यों हैं? फकीरों की आंख तीर की तरह चुभती है अगर देखे तो। उस फकीर ने कहा, कह तो रहा हूं। सुनते क्यों नहीं? उस आदमी ने कहा, आप अभी बोले भी नहीं। एक शब्द नहीं बोले। सुनूं तो क्या खाक सुनूं! फकीर ने कहा, मैंने यही कहा कि चुप हो जाओ, जैसे मैं चुप हूं। और जैसे मैं तुम्हारी आंखों में देख रहा हूं, ऐसे अपनी आंखों में देखो। भीतर जाओ। इसका ही नाम ध्यान है। और ध्यान क्या है!
हरिदास, थोड़ा भीतर देखो। कहां घाव है, जहां से रिस-रिस कर मवाद बह रही है। मवाद बहुत रास्तों से बह रही है, मगर घाव एक है। और वह घाव हैः हम परमात्मा से दूर पड़ गए हैं। हम अपने ही जीवन-स्रोत के विमुख हो गए हैं।

तुम क्या रूठे, इस दुनिया के सब संकट साकार हो गए। ऐसी हवा चली, नगरी
के दीपक भी अंगार हो गए।
जिसने मुझको ठुकराया है
मैं तो उसका भी आभारी,
जिसने गले लगाया वह है
मेरे प्राणों का अधिकारी,
जाने क्या अपराध हो गया,
अनुमानों को खबर नहीं है, तूफानों से रिश्वत लेकर, मांझी भी मझधार हो गए।
पवन उड़ा सकती है मुझको
पानी नहीं डुबा पाएगा,
मैं तृण हूं मेरा हलकापन मुझको लेकर तर जाएगा,
मैंने किए समर्पण अब तक,
सहयोगों से भीख न मांगी,
फिर क्यों बगिया के चंदन पर, विषधर पहरेदार हो गए।
मैंने जिनकी पीड़ाओं पर
नित आंसू के अर्घ्य चढ़ाए, आश्वासन देकर भी मुझको,
वह मेरे कुछ काम न आए,
बनकर सुमन हाथ पतझर के,
सौ-सौ बार लुटा उपवन में, उसी सुमन की आज्ञा के
अब पालन भी इनकार हो गए।
जग सूरज का ताज दिखा कर
मुझसे आंखें मांग रहा है,
चांद गगन का राज दिखा कर
मुझसे पांखें मांग रहा है,
खुशियों पर अधिकार नहीं तो फिर कैसे उपहार लुटाऊं,
जीवन के मधुमास सभी जब मरघट के त्यौहार हो गए।
बाहर जो खोजता रहेगा, आज नहीं कल जीवन को मरघट होता हुआ पाएगा।
खुशियों पर अधिकार नहीं तो फिर कैसे उपहार लुटाऊं, जीवन के मधुमास सभी जब मरघट के त्यौहार हो गए।
बाहर के सब वसंत, याद रखना, पतझड़ों को ही लाने वाले हैं। हर वसंत में पतझड़ छिपा है। हर फूल गिरने को है, बिखरने को है, धूल हो जाने को है।
दुख तो होगा ही। क्योंकि बाहर कुछ भी पकड़ोगे, छूट-छूट जाएगा। जो भी सम्हालोगे, टूट-टूट जाएगा। बाहर तुम लाख उपाय करो, सुखी न हो सकोगे। सुख तुम्हारा आंतरिक स्वभाव है। और अंतर की यात्रा को लोग जाते नहीं। दूर-दूर जाते हैं; चांद-तारों पर जाने को तैयार हैं। अपने भीतर जाने को तैयार नहीं। निकट को नहीं खोजते। और परमात्मा निकट से भी निकट है। और माना कि दूर से भी दूर वही है, मगर पहले उसे निकट जानना होगा, तब तुम उसे दूर भी जान पाओगे। और एक परमात्मा रूठ जाए, तो सब कुछ रूठ जाता है।
तुम क्या रूठे, इस दुनिया के सब संकट साकार हो गए।
ऐसी हवा चली, नगरी के दीपक भी अंगार हो गए।
जाने क्या अपराध हो गया, अनुमानों को खबर नहीं है,
तूफानों से रिश्वत लेकर, मांझी भी मझधार हो गए।
मैंने किए समर्पण अब तक, सहयोगों से भीख न मांगी,
फिर क्यों बगिया के चंदन पर, विषधर पहरेदार हो गए।
बनकर सुमन हाथ पतझर के, सौ-सौ बार लुटा उपवन में, उसी सुमन की आज्ञा के अब पालन भी इनकार हो गए।
खुशियों पर अधिकार नहीं तो फिर कैसे उपहार लुटाऊं, जीवन के मधुमास सभी जब मरघट के त्यौहार हो गए।

बाहर का तो सब व्यर्थ हो जाएगा। हरिदास, भीतर लौटो! भीतर तुम उस मालिक
को पाओगे जो खुश हो जाए तो बाहर खुशियों के झरने फूटने लगते हैं। भीतर तुम्हारा उससे मिलन होगा जिससे बिछुड़न फिर नहीं होता।
अपने ही प्रति उन्मुख होओ। इसे ही मैं ध्यान कहता हूं। और जब ध्यान की गरिमा तुम्हारे भीतर पैदा होगी, तो प्रेम लुटेगा। प्रेम के न मालूम कितने झरने तुमसे फूट पड़ेंगे। जैसे हिमालय से गंगा बहती, ब्रह्मपुत्र बहती, यमुना बहती, सिंधु बहती। नदियां ही नदियां बह जातीं। ध्यान के हिमालय से न मालूम कितनी गंगाएं प्रेम की पैदा होती हैं। न केवल तुम आनंदित होओगे, तुम इस जगत को भी बहुत कुछ आनंद दे पाओगे।
जो दुखी है, वह दुख देगा। और बेचारा करेगा भी क्या! जो सुखी है, वही सुख
दे सकता है।
पहली समझ ध्यान से पैदा होती है, आत्म-निरीक्षण से पैदा होती है, आत्म-अवलोकन से पैदा होती है। हम दूसरों की तो सब भूल देख लेते हैं; उसमें हम बड़े कुशल हैं। अपनी भूल नहीं दिखाई पड़ती। भूलों की भूल नहीं दिखाई पड़ती। मूल भूल नहीं दिखाई पड़ती। दूसरों की आंखों में पड़े तिनके पहाड़ों जैसे मालूम होते हैं। अपनी आंखों में पड़े पहाड़ भी तिनके जैसे भी नहीं मालूम होते। हमारी आंखें ही दूसरों पर टिकी हैं। कितनी चर्चा कर रहे हैं लोग! एक-दूसरे की निंदा में संलग्न हैं। और कोई यह नहीं सोचः रहा काश! इतनी चर्चा, इतनी आंख, इतनी परख अपने पर लौटा लेते, तो यह सारे अस्तित्व का साम्राज्य, यह सारा उत्सव, यह सारा आनंद तुम्हारा था। मगर तुम्हें बड़ी फिक्र है। तुम बड़ी सेवा में लगे हो। बड़े परार्थी हो।
ऐसे लोगों को मैं परार्थी कहता हूं! पर-अर्थ में संलग्न हैं! कौन कितनी भूलें कर रहा है? कौन कितने पाप कर रहा है? कौन शराब पीता है? कौन चाय पीता है? कौन सिगरेट पीता है? कौन किसकी पत्नी के साथ भाग गया है? इतना बड़ा जगत है, इस बड़े जगत में अनंत लोग हैं। वे सब एक-दूसरे की चर्चा में लगे हैं। और तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे संबंध में वे चर्चा नहीं कर रहे हैं। वे किसके संबंध में चर्चा करेंगे? तुम्हारे संबंध में कर रहे हैं। यहां सबके पीठ पीछे उसी की निंदा चल रही है।
सिग्मंड फ्रायड ने कहा है, अगर सारे लोग चौबीस घंटे के लिए ईमानदार हो जाएं और वही बात कह दें हर एक से जो उसके संबंध में सोचते हैं, तो दुनिया में चार दोस्तियां भी नहीं बचेंगी। चार अरब लोग हैं, चार दोस्तियां न बचेंगी।
बात सच है। अगर तुम वही कह दो, जो तुम सोचते हो दूसरे के संबंध में, वैसा का वैसा कह दो; चौबीस घंटे के लिए लोग अगर ईमानदार हो जाएं... । फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि सारे धर्म लोगों को समझाते हैं-- ईमानदार हो जाओ। मगर बचना। इनकी बात मान मत लेना। नहीं तो दुनिया उजड़ जाएगी। दुनिया बेईमानी पर टिकी है। सारे धर्म समझाते हैं--सत्य बोलो। लेकिन नीत्शे ने कहा है कि भूल कर भी यह भूल मत करना। यहां सारे नाते- रिश्ते झूठ के हैं। यहां सच बोले कि सब नाते-रिश्ते नष्ट हो जाएंगे। अगर पत्नी पति से वही कह दे जो उसके संबंध में सोचती है, तो उसी दिन तलाक हो जाए। लेकिन पत्नी सोचती कुछ है, कहती हैः हे पतिदेव! चिट्ठियां लिखती है तो उसमें लिखती है--आपकी दासी। और पतिदेव पढ़ कर बड़े प्रसन्न होते हैं। चित्त उनका एकदम बाग-बाग हो जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन की भाषा में "गार्डन-गार्डन" हो जाता है। उसने बाग-बाग का अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया है।
और पत्नी वही कह दे जो सोचती है तुम्हारे संबंध में, या तुम पत्नी से वही कह दो जो तुम उसके संबंध में सोचते हो!
नहीं, कोई किसी के संबंध में सत्य नहीं कहता। यह सारा जगत झूठ पर चल रहा है।
चंदूलाल का जवान बेटा घंटालाल तीस वर्ष की उम्र में ही काल के गाल में समा गया। मुल्ला नसरुद्दीन की तबीयत कुछ खराब थी; सो उसने अपने बेटे फजलू को कहा, जाओ चंदूलाल के यहां, और सहानुभूति प्रकट करके आओ।
फजलू गया। रास्ते में उसे और लोग भी मिले जो चंदूलाल के यहां जा रहे थे। वे सभी घंटालाल की निंदा कर रहे थे। फजलू सब सुनता रहा। वह चंदूलाल के

यहां पहुंचा। ऐसे मौकों पर क्या कहना चाहिए उसे कुछ पता नहीं था, अतः सुनी- सुनाई बातें ही उसने कह दीं।
फजलू रोनी सूरत बना कर बोला, डैडी को थोड़ा बुखार था इसलिए वे न आ सके
और मुझे भेजा है। हम लोगों को ही नहीं, पूरे गांव को सुन कर यह बहुत खुशी हुई कि आपका बड़ा बेटा घंटालाल असमय में ही मर गया। उस जैसा नीच और धोखेबाज आदमी नहीं देखा! आस-पड़ोस के गांवों की सारी लड़कियों को उसने परेशान कर रखा था। कभी किसी की उधारी उसने नहीं चुकाई। वह जुआरी, शराबी और वेश्यागामी भी था। भगवान की बड़ी कृपा हुई कि उस दुष्ट से पिंड छूट गया। हमें आपके परिवार के दुख से हार्दिक सहानुभूति है!
चंदूलाल को बहुत क्रोध आया, मगर कुछ कहा नहीं। बाद में एक दिन नसरुद्दीन के घर जाकर उसने पूरा हाल सुनाया। नसरुद्दीन ने फौरन फजलू को बुला कर दो तमाचे मारे और कहा, क्यों बे उल्लू के पट्ठे! किसी की मृत्यु पर क्या ऐसी बातें कही जाती हैं! फिर मुल्ला नसरुद्दीन चंदूलाल की तरफ देख कर बोला, मित्र, इस बार क्षमा कर दो। दुख है कि मैंने इस गंवार को भेजा। मगर कोई बात नहीं, जब तुम्हारा छोटा बेटा भोंदूलाल मरेगा तो मैं स्वयं ही अफसोस जाहिर करने आऊंगा, चाहे मुझे बुखार ही क्यों न चढ़ा हो!
नीत्शे शायद ठीक कहता है। लोग सच-सच कह दें तो जीवन की बस्ती उखड़ जाए। यहां के सब नाते-रिश्ते झूठ, सब फरेब। पीठ पीछे लोग गालियां देते हैं, मुंह के सामने एकदम स्वागत करने लगते हैं। शायद दुनिया ऐसे ही चलेगी।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि लोगों से तुम सच-सच कहने लगो। मैं तुमसे इतना जरूर कहना चाहता हूं कि अपने संबंध में सच समझना शुरू करो। दूसरों से सच कहने की तो तुम्हारी भी इच्छा होती होगी। दबा जाते हो, क्योंकि झंझटें खड़ी होंगी। उतनी झंझटें लेने की हिम्मत नहीं है। छुपा जाते हो। मुखौटे लगा लेते हो। पी जाते हो भीतर ही भीतर। उठती है गाली, गीत गा देते हो। सिर तोड़ देने का मन होता है, फूलमाला पहना देते हो।
लेकिन अपने संबंध में सच तो जानना ही होगा। दूसरे के संबंध में सच कहने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। दूसरे ने तुमसे पूछा भी नहीं है। दूसरा तुम्हारा शिष्य भी नहीं है। दूसरे के संबंध में सत्य तो तभी कहा जा सकता है, जब वह शिष्य का भाव स्वीकार करता है। यह तो सदगुरुओं पर छोड़ दो। उनके पास लोग आकर सत्य सुनने को आतुर होते हैं, प्रार्थना करते हैं, तब भी बामुश्किल सदगुरु उनसे सत्य कहते हैं। तभी कहते हैं जब वे उस सत्य को झेलने के योग्य हो जाते हैं। और तब सत्य जरूर अपूर्व निखार लाता है, अपूर्व सौंदर्य लाता है, प्रसाद लाता है।
तुम्हें कोई जरूरत नहीं कि तुम जा-जा कर पड़ोस के लोगों को सत्य बताने लगो। तुम्हें उनका सत्य पता भी क्या हो सकता है? तुम उनके अंतस्तल में बैठे नहीं। तुमने उन्हें बाहर-बाहर से देखा। बाहर-बाहर से कुछ दिखाई पड़ता है? बाहर-बाहर उन्होंने भी धोखे बना रखे हैं, जैसे तुमने बना रखे हैं। अपने सत्य को जरूर जानो। अपने भीतर देखो। जरूर दुख है। और दुख का पहला कारण है कि तुम भीतर नहीं देख रहे हो, बाहर देख रहे हो। और सुख का पहला स्रोत खुलेगा भीतर से।
भीतर देखने का अर्थ हैः बाहर का संसार ही नहीं छोड़ दो, थोड़ी देर के लिए दिन में चौबीस घंटे में भीतर का संसार भी--विचार का, कल्पना का, स्मृति का-- वह भी छोड़ दो। साक्षी मात्र रह जाओ। बस देखते रहो। आंख बंद करके, जो हो रहा है भीतर, देखते रहो। विचार उठेंगे, भावनाएं उठेंगी, कल्पनाएं उठेंगी, देखते रहो। और ध्यान रखो, स्मरण रखो, कहते रहोः नेति-नेति। यह मैं नहीं हूं; यह मैं नहीं हूं। नेति-नेति ध्यान का मौलिक सूत्र है। यह विचार मैं नहीं; यह कल्पना मैं नहीं; यह स्मृति मैं नहीं। मैं कौन हूं? मैं इन सबको देखने वाला हूं। मैं इनका द्रष्टा हूं।
धीरे-धीरे जब समय आएगा, ठीक अवसर पर, विचार विदा हो जाएंगे; निर्विचार दशा फलित होगी। सन्नाटा हो जाएगा। एक अपूर्व शून्य घेर लेगा। भीतर का पूरा आकाश प्रकट होगा--निरावरण, नग्न, शीतल। अपूर्व है शीतलता उसकी। बस द्रष्टा रह जाएगा, देखने को कुछ भी न बचेगा। और जब देखने को कुछ भी नहीं बचता, तो द्रष्टा अपने पर ही लौट आता है, अपने को ही देखता है। जब देखने को

कुछ भी नहीं बचता, तो एक क्रांति घटती है--महाक्रांति--द्रष्टा स्वयं को देखता है। वही है आत्म-दर्शन। और वही है प्रभु-दर्शन का द्वार।
हरिदास, फिर दुख खोजे भी नहीं मिलता। चाहो तो भी नहीं मिलता। फिर सुख
ही सुख है। फिर महासुख है। सच्चिदानंद!
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
तीसरा प्रवचन

प्रेम की आग

पहला प्रश्नः आप कहते हैं--प्रेम करो; तुम्हारे सभी प्रेम का निचोड़ ही प्रार्थना बनेगी। परंतु मैं तो प्रेम करने में बहुत ही कतराता हूं!

योग भरत! कौन नहीं कतराता? प्रेम की लोग बातें करते हैं; बातें करना प्रेम से बचने का एक उपाय है। प्रेम की बात तो प्रेम नहीं। प्रेम की बात तो प्रेम के अभाव को ढंकने की कला है। हां, लोग प्रेम के गीत गाते हैं--वे भी उधार; वे भी अपने निज अनुभव के नहीं। लोग प्रेम की प्रशंसा भी करते हैं, स्तुति करते हैं; प्रेम का समादर करते हैं। लेकिन इस समादर में अनुभव नहीं है, प्रामाणिकता नहीं है। यह समादर मन का भुलावा है।
प्रेम से कौन नहीं कतराता? कतराना ही होगा। क्योंकि प्रेम है जोखिम
का काम। प्रेम से बड़ी जोखिम कोई और नहीं। प्रेम मांगता है दुस्साहस, क्योंकि प्रेम है अभियान, अज्ञात की यात्रा। और मुफ्त नहीं होती यह यात्रा। बड़ी कीमत चुकानी होती है। बड़ी से बड़ी कीमत चुकानी होती है। स्वयं को ही जो अर्पित कर सकता है, वही प्रेम का स्वाद लेने में समर्थ होगा। अहंकार का विसर्जन है प्रेम।
प्रेम का ठीक अर्थ समझ लो, तो कठिनाई समझ में आ जाएगी। अहंकार का विसर्जन है प्रेम का अर्थ। जब किसी के भी संदर्भ में तुम मैं-भाव को छोड़ देते हो, वहीं प्रेम की अविरल धारा बह उठती है। फिर वह स्त्री हो, पुरुष हो, गुरु हो, परमात्मा हो--कोई भी हो; संगीत हो, काव्य हो, मूर्तिकला हो; तुम किसी भी संदर्भ में जहां अपने मैं-भाव को विसर्जित कर देते हो, जहां तुम नहीं होते; नृत्य हो, गीत हो, उत्सव हो। जब नर्तक शून्य हो जाता है और नर्तन ही शेष रह जाता है--नर्तकरहित नर्तन--बस प्रेम का आविर्भाव हुआ। जहां गायक मिट जाता है और गीत ही बचता है; वादक मिट जाता है और वादन ही बचता है--बस वहीं प्रेम का आविर्भाव है।
प्रेम से अर्थ नहीं है संबंध का। संबंध तो प्रेम की सबसे निम्न दशा है। संबंध तो ऐसा है, जैसे पक्षी अभी अंडे में है; अभी प्रेम पैदा नहीं हुआ। अभी अंडे को तोड़ना होगा; पक्षी को बाहर आना होगा; पर फड़फड़ाने होंगे; अज्ञात, अपरिचित आकाश की यात्रा पर निकल जाना होगा। और छोड़ देना होगा वह गेह, वह घर, जहां सुरक्षा थी, जहां सब कुछ था। अंडे में पक्षी कितना सुरक्षित था! न भोजन की चिंता, न दुश्मनों का डर; न मृत्यु का कोई बोध, न जीवन की अड़चनें, समस्याएं। कुछ भी तो न था। शांत, निश्चिंत, सुरक्षित अस्तित्व था। तोड़ दिया उस अंडे को और चल पड़ा एक ऐसी यात्रा पर, जो कहां समाप्त होगी, कुछ पता नहीं! कोई गंतव्य है भी या नहीं, यह भी पता नहीं। और उन पंखों का भरोसा जिनके सहारे कभी उड़ा न था! दुस्साहस चाहिए।
संबंध की तरह प्रेम तो ऐसा है, जैसे अंडे में पक्षी। मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूं, वह संबंध से अतीत प्रेम है, वह प्रेम की भाव-दशा है। प्रेम एक संबंध नहीं, वरन मन की एक शांत, मौन, आनंदित अनुभव की स्थिति। प्रेम एक स्थिति--संबंध नहीं। और तब प्रेम प्रार्थना बन जाता है। और जैसे-जैसे प्रार्थना गहरी होती है, प्रार्थना ही परमात्मा बन जाती है।
परमात्मा कहीं और नहीं है, प्रेम का ही अंतिम रूप है। काम है प्रेम का निम्नतम रूप; और राम है प्रेम का आत्यंतिक रूप। यात्रा हैः काम से राम तक। और लोग काम में ही उलझे रह जाते हैं, क्योंकि काम सस्ता है, सुलभ है। बाजार में मिलता है। धन से खरीदा जा सकता है। पद से खरीदा जा सकता है। अहंकार नहीं गंवाना होता।
इसलिए तुम जिन्हें प्रेम के संबंध कहते हो, अच्छा हो कि काम के संबंध कहो। वासना के संबंध हैं। वासना तो कोई भी कर लेता है; पशु-पक्षी कर लेते हैं। इसके लिए मनुष्य होने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रेम सिर्फ मनुष्य कर सकता है। वासना में जो भी जहर है, उससे जब वासना बिल्कुल ही मुक्त हो

जाती है, तो प्रार्थना का जन्म होता है। जैसे कीचड़ कमल बन जाए, ऐसे वासना प्रार्थना बन जाती है।
मैं उस आत्यंतिक प्रेम की ओर तुम्हें पुकार रहा हूं। और भरत, भय तो लगेगा। कभी गए नहीं उस मार्ग, डर तो पकड़ेंगे। बचना भी चाहोगे, कतराओगे। पर अच्छा है कि होश तो आया कि मैं कतरा रहा हूं। अभागे तो वे हैं, जिन्हें यह होश भी नहीं। कतरा भी रहे हैं और मान भी रहे हैं कि बड़े प्रेम में हैं-- पत्नी को प्रेम करते हैं; पति को प्रेम करते हैं; बच्चों को प्रेम करते हैं; परिवार को, मित्रों को। प्रेम जाना नहीं, मान लिया है।
तुम्हें अपने बेटे से प्रेम है? सच? या कि बेटा तुम्हारी महत्वाकांक्षा को भरने का एक उपाय है, एक साधन? कि तुम जो बंदूक नहीं चला पाए, शायद उसके सहारे चला लो! कि तुम जो पद नहीं पा पाए, शायद उसके सहारे पा लो! उसके बहाने, उसके निमित्त पा लो! कि तुम जो धन नहीं कमा पाए, चलो, बेटा कमाएगा। तुम तो न रहोगे, लेकिन तुम्हारा कोई अंश रहा आएगा। तुम कहीं बेटे में अपनी शाश्वतता तो नहीं खोज रहे हो? यह तो तुम्हें पता है, यह देह मर जाएगी। लेकिन चलो, इस देह का एक अंश बचेगा। किसी रूप में तो जीऊंगा! मेरा नाम तो रहेगा--किसका बेटा है!
पुराने दिनों में जिसको बेटा नहीं होता था, उससे ज्यादा दुखी आदमी नहीं होता था। क्योंकि वंश-परंपरा कौन चलाएगा! बेटा तो होना ही होना चाहिए। अपना न हो, तो उधार भी चलेगा। गोद ले लेना पड़े, तो भी चलेगा। क्योंकि हम तो मिट जाएंगे, यह जाहिर है। चलो, कुछ तो छूट जाएगा! नाम भी बच रहा, तो कोई तो पितृ-पक्ष में पानी चढ़ाएगा! नाम बच रहा, तो किसी तरह हमारी याद तो बची रहेगी। आदमी बचना चाहता है मृत्यु से, इसलिए बच्चों को प्रेम करता है।
पत्नी से तुम प्रेम करते हो? या कि केवल साधन है जिसका शोषण करते हो? पति से तुम प्रेम करते हो? या कि केवल एक साधन है, एक आर्थिक उपाय है--भोजन, घर का आयोजन है, व्यवस्था है?
प्रेम न तो व्यवस्था है, न अर्थशास्त्र है। प्रेम न तो सुविधा है, न सुरक्षा है। प्रेम तो एक काव्य है। और काव्य को अनुभव करने की संवेदनशीलता कितने लोगों में है? कितने लोग हैं, जो फूलों को देख कर मस्त होते हों? कितने लोग हैं, जो आकाश के तारों को देख कर आनंद से भर जाते हों? जिनके जीवन में आकाश के तारों का कोई परिणाम नहीं होता हो, जो पक्षियों के गीत सुन कर पुलक न उठते हों, जो फूलों को हवा में नाचते देख कर पैरों में घूंघर न बांध लेते हों--वे प्रेम कर सकेंगे? असंभव। पत्थर हैं वे। अभी उनके भीतर पाषाण पिघला नहीं है। और उसी पत्थर को मैं अहंकार कह रहा हूं। और वही अहंकार कतराता है, बचता है। और अहंकार के बचने का जो सबसे महत्वपूर्ण उपाय है, वह यह है कि वह तुम्हें यह भ्रांति दिलवा देता है कि प्रेम तो तुम करते ही हो। और क्या प्रेम? यही तो प्रेम है! और चूंकि यह प्रेम नहीं है और इसे तुम प्रेम मान कर जीते हो, आज नहीं कल इस प्रेम से वितृष्णा पैदा होती है। इस प्रेम से विषाद पैदा होता है। इस प्रेम से संताप पैदा होता है!
झूठा था यह प्रेम, पहली तो बात। फिर इस झूठे प्रेम से तुम्हें वैराग्य पैदा होता है। झूठे प्रेम से पैदा हुआ वैराग्य उतना ही झूठा है जितना प्रेम झूठा था। फिर चले तुम जंगल! फिर हो गए तुम संन्यासी, मुनि, महात्मा। यह तुम्हारा मुनि होना, महात्मा होना तुम्हारे झूठे प्रेम की परिणति है। यह महात्मापन भी उतना ही झूठ है।
प्रेम सच्चा हो, तो भी वैराग्य पैदा होता है। लेकिन वह वैराग्य राग के विपरीत नहीं होता, राग के पार होता है। भेद को खूब ठीक से समझ लेना। वह वैराग्य राग का अतिक्रमण है--राग का विरोध नहीं, राग का निषेध नहीं। वह वैराग्य राग का ही सुलझा हुआ रूप है। वह वैराग्य राग का ही छंटा हुआ, निखरा हुआ रूप है।
राग ऐसे है, जैसे अनगढ़ पत्थर। और वैराग्य ऐसे है, जैसे किसी कलाकार के हाथों में पड़ गया अनगढ़ पत्थर--और उसने मूर्ति गढ़ी। हां, बहुत कुछ काटा, बहुत कुछ छांटा, छैनी चलाई बहुत। लेकिन पत्थर से दुश्मनी नहीं है, पत्थर से शत्रुता नहीं है। उससे बड़ा और कौन मित्र होगा पत्थर का! उसने पत्थर को

नये प्राण दिए, नये अर्थ, नई भाव-भंगिमा दी। उसने पत्थर को काव्य दिया; पत्थर को जीवन दिया; पत्थर में सांसें फूंकीं। उसने पत्थर को सप्राण किया।
एक साधारण सा पत्थर जब बुद्ध की प्रतिमा बन जाता है, तो तुम भेद देखते हो! इस पत्थर की तरफ तुम्हारी आंख भी न गई होती। और बुद्ध की यह प्रतिमा तुम्हारे प्राणों को पकड़ लेगी।
पश्चिम के बहुत बड़े मूर्तिकार माइकलएंजलो के जीवन में यह उल्लेख है
कि संगमरमर बेचने वाले दुकानदार के पास वह एक दिन पहुंचा और उसने कहा, तुमने दुकान के उस तरफ रास्ते के किनारे एक बड़ा संगमरमर का पत्थर डाल रखा है। कई वर्षों से मैं गुजरता हूं, उसे देखता हूं। उसे बेचना नहीं? उस दुकानदार ने कहा, वह बिकता नहीं। इसलिए मैंने तो आशा ही छोड़ दी है, उसको उस तरफ डाल दिया है कि अगर कोई ले जाए तो ले जाए। माइकलएंजलो ने कहा कि मैं ले जाऊंगा।
वह दुकानदार बहुत खुश हुआ। उसने कहा, मेरी जगह खाली होगी। वह पत्थर बिल्कुल बेकार है। ढोने का खर्च भी मैं दे दूंगा। तुम ले जाओ। झंझट मिटे और जगह खाली हो!
माइकलएंजलो पत्थर ले गया। कोई साल बीतने के बाद एक दिन माइकलएंजलो उस दुकानदार के पास आया और कहा कि मेरे घर चलोगे? कुछ दिखाने योग्य है! ले गया दुकानदार को। दुकानदार ने देखा जो, आंखों से आनंद के आंसू बहने लगे। उसने बहुत मूर्तियां देखी थीं, पर ऐसी मूर्ति नहीं। माइकलएंजलो ने उस पत्थर को रूपांतरित कर दिया था। उसे तो याद भी न आया कि यह वही पत्थर है, जो मैंने मुफ्त दिया था। और जिसको ढोने के पैसे भी मैंने दिए थे!
माइकलएंजलो ने उस पत्थर में जो प्रतिमा गढ़ी थी, वह है जीसस की प्रतिमा
और मरियम की। जीसस को मरियम ने सूली से उतारा है। जीसस की लाश को मरियम अपने हाथों में लिए बैठी है! कहते हैं ऐसी अदभुत प्रतिमा दूसरी नहीं है। अभी कुछ, दो या तीन साल पहले एक पागल आदमी ने इसी प्रतिमा को रोम में हथौड़ा लाकर तोड़ दिया। और जब उस आदमी से पूछा गया--क्योंकि वह अमरीका से आया तोड़ने इटली--उससे जब पूछा गया कि यह तूने क्या किया? तूने जगत की श्रेष्ठतम कृति नष्ट कर दी! तो उसने कहा, जैसे माइकलएंजलो का नाम प्रसिद्ध था, अब मेरा भी नाम प्रसिद्ध रहेगा। उसने बनाई, मैंने मिटाई। वह बना सकता था, मैं बना नहीं सकता, लेकिन मिटा तो सकता हूं!
इस दुनिया में जो लोग बना नहीं सकते, वे मिटाने में लग जाते हैं। जो कविता नहीं रच सकते, वे आलोचक हो जाते हैं। जो धर्म का अनुभव नहीं कर सकते, वे नास्तिक हो जाते हैं। जो ईश्वर की खोज नहीं कर सकते, वे कहने लगते हैं-- ईश्वर है ही नहीं। अंगूर खट्टे हैं! इनकार करना आसान, स्वीकार करना कठिन। जो समर्पित नहीं हो सकते, वे कहते हैं--समर्पित होएं क्यों? मनुष्य की गरिमा उसके संकल्प में है, समर्पण में नहीं! जो समर्पित नहीं हो सकते, वे कहते हैं--कायर समर्पित होते हैं; बहादुर, वीर तो लड़ते हैं।
ध्यान रखना, सृजन कठिन है, विध्वंस आसान है। जो माइकलएंजलो नहीं हो सकता, वह अडोल्फ हिटलर हो सकता है। जो कालिदास नहीं हो सकता, वह जोसेफ स्टैलिन हो सकता है। जो वानगॉग नहीं हो सकता, वह माओत्से तुंग हो सकता है। विध्वंस आसान है। जो धार्मिक नहीं हो सकता, वह राजनीतिज्ञ हो सकता है। राजनीतिज्ञ होने और राजनीति करने में कोई बुद्धिमत्ता चाहिए! बुद्धिमत्ता ही एकमात्र अड़चन है राजनीति में। बुद्धिमान राजनीतिज्ञ नहीं हो सकता। उतना छोटा नहीं हो सकता। उतना ओछा नहीं हो सकता। उतना क्षुद्र नहीं हो सकता। उतना नीच नहीं हो सकता। उतने नीचे उतरना उसे आसान नहीं होगा। उसकी प्रतिभा उसे रोकेगी।
पत्थर को सुंदर मूर्ति में निर्मित कर लेना प्रेम को जानने का एक उपाय है। साधारण शब्दों को जोड़ कर एक गीत रच लेना प्रेम को जानने का एक उपाय है। नाचना, कि सितार बजाना, कि बांसुरी पर एक तान छेड़ देना--ये सब प्रेम के ही रूप हैं।
तुमने प्रेम को बहुत छोटा समझ रखा है। घर-गृहस्थी बसा ली कि समझा प्रेम हो गया। यह तो प्रेम नहीं है, यह तो पशु भी कर लेते हैं। ये बच्चे पैदा करना, ये घर-गृहस्थी बसाना, यह तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। इसमें

कुछ विशिष्टता नहीं है। इसके कारण तुम मनुष्य नहीं हो। इसके कारण तुम पशुओं के ही हिस्से हो। जिस दिन तुम्हारा प्रेम एक आंतरिक संवेदनशीलता बनेगा, जिस दिन संबंध कम और तुम्हारी सहज अवस्था ज्यादा होगा; ऐसा नहीं कि किसी के प्रति प्रेम, बल्कि ऐसा कि बैठे हैं तो प्रेम में, उठे हैं तो प्रेम में, चले हैं तो प्रेम में, बोले हैं तो प्रेम में, सोए हैं तो प्रेम में; उठना, बैठना, जगना, सोना--तुम्हारा प्रत्येक कृत्य जब प्रेमपूर्ण होगा; प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होगा, बल्कि तुम्हारी श्वास-श्वास में समोया होगा, तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन में बजता होगा उसका नाद; मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं।
और निश्चित ही घबड़ाओगे, डरोगे, कतराओगे। लेकिन बिना इस यात्रा पर-- कठिन यात्रा है, दुर्धर्ष मार्ग है, तलवार की धार पर चलना है--बिना इसके निखरोगे भी नहीं।
तो भरत, कतराओ कितने ही, डरो कितने ही, लेकिन डर के बावजूद जाना है। यह यात्रा करनी ही है; करनी ही होगी।
कब तक विश्वासों का बोझ लादते फिरते,
तुमने यह खूब किया, हर बंधन तोड़ दिया।
जग की व्यावहारिकता का महत्व ज्यादा है,
मन की मजबूरी की कीमत कुछ खास नहीं।
टूट भले जाएं हम चाह के फरेबों से,
यह न कहेंगे लेकिन, पीड़ाएं रास नहीं।
जिसके आलिंगन को भोर तक तरसती थी, तुमने यह खूब किया, वही सपन तोड़ दिया।
यह माना युग तक साथ कहां निभता है,
यह माना दुनिया बेदर्द बहुत होती है।
जो केवल दुखों की सीपी में खिलता है,
मानो या मत मानो, मन ही वह मोती है।
जिंदगी तुम्हें जिसमें जिंदगी नजर आती,
तुमने यह खूब किया, वह दर्पण तोड़ दिया।
बहुत लोग उस दर्पण को ही तोड़ रहे हैं, जिसमें जिंदगी जिंदगी नजर आती। बहुत लोग उस दुख से अपने को बचा रहे हैं, जिस दुख के बिना मोती पैदा नहीं होते। सीपी की पीड़ा में ही तो मोती का जन्म है। और प्रेमी जितनी पीड़ा झेलता है, कोई और नहीं झेलता।
प्रेम है ही महान पीड़ा। लेकिन मधुर, रस डूबी, प्रभुपगी। पहले पहल डर लगेगा। पहले पहल कदम उठाओगे तो डर लगेगा। वैसा ही डर जैसे कि पहली-पहली बार बच्चा चलता है तो डरता है। स्वाभाविक। कभी चला नहीं। मां उसका हाथ पकड़ लेती है। चलाती है। दो कदम आगे खड़ी हो जाती है, हाथ का इशारा करती है कि आ! मैं तुझे सम्हाल लूंगी, बढ़! झिझकता है। डरता है। लेकिन फिर मां पर आस्था, मां पर श्रद्धा; बढ़ आता है। एक कदम चल लेता है, तो उसके आनंद, उसके उल्लास का अंत नहीं है। जैसे मंजिल पा ली। मां तक एक कदम चल कर मां की गोद में गिर गया है, और ऐसा आनंदित है जैसे अब और करने को कुछ शेष नहीं रहा।
सदगुरु का कृत्य यही है कि शिष्य के आगे-आगे रहे। कहे कि और एक कदम! कि
और एक कदम! कि बस एक कदम और! और तुम जब एक कदम चलोगे तो तुम्हारा उल्लास बढ़ेगा। और एक कदम चलोगे तो तुम्हारा अनुभव बढ़ेगा, दो कदम चलने की हिम्मत आएगी। दो कदम चलोगे, तो तीन कदम चलने की हिम्मत आएगी। और जैसा लाओत्सू ने कहा हैः एक एक कदम चल कर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
मगर पहला कदम निश्चित ही कठिन होता है भरत! तुमने अगर देखा हो, नया-नया पक्षी जब उड़ने को होता है, तो अक्सर उसकी मां को उसे धक्का देना होता है। नहीं तो वह घोंसले को पकड़ कर ही बैठा रहता है। पर फड़फड़ाता है। देखता है आकाश। आकाश की नीलिमा उसे भी पुकारती है। किसे नहीं पुकारती! अनंत किसे नहीं छूता! इतना पत्थर तो कोई भी नहीं है। छूता है; डर के कारण तुम अंगीकार नहीं करते उसके आमंत्रण को, वह बात और। बुलाता है। तुम बहरे बने बैठे रहते हो भय के कारण, वह बात और। लेकिन चांद-तारों के इशारे किसे नहीं अनुभव में आते! नहीं तुम उन इशारों को मान कर चलते हो, यह तुम्हारी मर्जी, यह

तुम्हारी कायरता, यह तुम्हारी नपुंसकता। देखता है पक्षी और पक्षियों को उड़ते।
इसलिए तो तुम्हारे पास इतने पक्षी उड़ा रहा हूं--बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर, नानक, दादू, फरीद। इतने पक्षी उड़ा रहा हूं तुम्हारे आस-पास--लाओत्सू, च्वांगत्सू, लीहत्सू, मोहम्मद, बहाउद्दीन, मंसूर। इतने पक्षी उड़ा रहा हूं तुम्हारे पास कि इन उड़ते हुए पक्षियों को देख कर भी तुम्हारे पंख फड़फड़ाने लगें। कि तुम्हें लगे कि मैं कब तक बैठा रहूंगा! क्या मुझे इसी पिंजड़े में बंद रह जाना है? और जब कि द्वार खुले हैं! जब कि पिंजड़ा बंद नहीं है! क्या मुझे इसी घोंसले में आबद्ध रह जाना है? जब कि कोई और तुम्हें रोक नहीं रहा है सिवाय तुम्हारे भय के। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा भय कौन तोड़ेगा! इतने पक्षी तुम्हारे पास उड़ा रहा हूं तुम्हारे आकाश में। इसको ही सत्संग कहते हैं। जहां और उड़ते पक्षियों को देख कर तुम्हें यह बात ख्याल में आने लगे कि मैं भी तो इन जैसा हूं। ये पंख मेरे पास भी तो रहे। तुम फड़फड़ा कर देख लो। तुम जरा दो कदम आकाश में उठा कर देख लो।
अक्सर ऐसा होता है कि मां को धक्का देना पड़ता है। वही धक्का गुरु देता है। धक्का देते समय मां अच्छी न लगती होगी पक्षी को, यह भी याद रखना। किसको अच्छी लगेगी ऐसी मां! दुश्मन मालूम होती होगी; धक्के देती है! गुरु भी अच्छा नहीं लगता जो धक्के देता है। तुम सांत्वना की तलाश में आते हो, धक्कों की तलाश में नहीं।
इसलिए तुम्हें पंडित-पुजारी ज्यादा प्रीतिकर लगते हैं। या बंधे- बंधाए लकीरों के फकीर--जैन मुनि, बौद्ध भिक्षु, हिंदू संन्यासी, मुसलमान फकीर--बंधे-बंधाए लोग, जो तुम्हें धक्का नहीं देते, उलटे तुम्हें सांत्वना देते हैं, तुम्हारी पीठ थपथपाते हैं, कि बेटा तुम खूब अच्छा कर रहे हो। एक अस्पताल और खुलवा दो। एक स्कूल और खुलवा दो। फकीरों को दान देना, भिखमंगों को भिक्षा देना, ब्राह्मणों को भोजन करवाना, यज्ञ करवा देना, हवन करवा देना--मगर घोंसले को छोड़ना मत। घोंसले में मजे से बैठे रहो।
हवन चलता रहेगा। हवन के चलने से घोंसले से छूटने का क्या संबंध है! पंडित-पुजारी आकर प्रार्थना कर जाएंगे। वे कहते हैं, तुम क्यों झंझट में पड़ते हो प्रार्थना करने की? बेटा, तुम तो कमाई करो। इतनी देर में तुम हजारों कमाओगे। और मैं दस-पांच रुपये में तुम्हारी प्रार्थना कर जाता हूं। सीधा हिसाब है! क्यों इतना नुकसान उठाते हो? यज्ञ-हवन हम करने को हैं। यह हमारा व्यवसाय है। हम अपने व्यवसाय में कुशल हैं। तुम अपने व्यवसाय में कुशल हो।
एक भिखमंगे ने अमरीका के बहुत बड़े करोड़पति एण्ड्रू कारनेगी को एक दिन पकड़ लिया सुबह-सुबह घूमते बगीचे में। और कहा कि मुश्किल से मिले हैं, आज तो कुछ लेकर जाऊंगा! जब भी आता हूं तो नौकर-चाकर बाहर से ही टहला देते हैं। एण्ड्रू कारनेगी ने उस भिखमंगे को देखा। मस्त, लंबा, स्वस्थ, युवा। एण्ड्रू कारनेगी ने कहा, तुम्हें शर्म नहीं आती? मुस्तंड होकर भीख मांगते हो! उस भिखमंगे ने कहा, सुनो! तुम्हारा धंधा क्या है? एण्ड्रू कारनेगी ने कहा, मेरा धंधा बैंकिंग का है। सबसे बड़ा बैंकर था कारनेगी। तो उस भिखमंगे ने कहा, मैं तो तुम्हें सलाह नहीं देता कि बैंकिंग किस तरह करो। कभी बाप-दादे भीख मांगे हैं? तुम्हें भीख मांगने की कला आती है? अपनी सलाह अपने पास रखो। जो इतना मुस्तंड मालूम हो रहा हूं, वह इसीलिए, क्योंकि भीख मांगता हूं। तुम क्यों नहीं मुस्तंड मालूम हो रहे? जरा अपना चेहरा आईने में देखो! मस्त हूं। कल की फिकर नहीं है। कल फंसेगा फिर कोई, जैसे आज तुम फंस गए। और ध्यान रखो, यह मेरा व्यवसाय है। और यह पुश्तैनी व्यवसाय है। यह मैं ही नहीं कर रहा हूं, मेरे बाप भी करते थे, मेरे बाप के बाप भी करते थे। हम इसकी कला जानते हैं। और इससे बेहतर कोई धंधा नहीं है--अगर पूछते ही हो तो। न कुछ लागत। न कोई ब्याज-बट्टा। बस सुबह से उठे और जरा दो-चार आदमियों को तलाशना है। कोई न कोई मिल ही जाता है। और फिर धीरे-धीरे हम कुशल हो जाते हैं जानने में भी कि कौन देगा, कौन नहीं देगा।
एण्ड्रू कारनेगी ने उसे कुछ दिया और कहा कि मैं इस कारण दे रहा हूं कि मैंने तेरे जैसा हिम्मतवर भिखमंगा नहीं देखा--कि तू मुझसे कह सका कि जब हम तुम्हें सलाह नहीं देते, तुम हमें क्या सलाह देते हो! यह बात मुझे जंची।

बात तो ठीक ही है। हम क्या जानें भिखमंगे के राज! हमें सलाह नहीं देनी चाहिए।
पंडित-पुरोहित हैं, वे धंधा जानते हैं। वे कहते हैं, हम धंधा कर देंगे। हमारी पहचान शास्त्रों से है। तुम पूजा भी करोगे तो तुम्हारी पूजा अनगढ़ होगी। हमारी पूजा में व्यवस्था होगी, नियोजन होगा, प्रक्रिया होगी; ठीक-ठीक होगी, सम्यक होगी। और हम सस्ते में निपटा देते हैं। हमारा भी काम हो जाता है, और तुम इतनी देर में कितना कमा लोगे!
पंडित-पुजारी तुम्हें सांत्वना दे रहे हैं, धक्के नहीं। इसलिए पंडित-पुजारियों को कभी सूली लगी है? तुमने सुना कि किसी देश में किसी पंडित को लोगों ने पत्थर मारे हों, कि किसी पुजारी को सूली दी हो, कि किसी पुरोहित की हत्या की हो? यह हुआ ही नहीं कभी। लोग पंडित-पुजारी, पुरोहितों के पैर छूते हैं, सम्मान करते हैं। जो तुम्हारी मलहम-पट्टी करते रहते हैं, जो तुम्हारे घावों को ढांकते रहते हैं फूलों से, सुंदर-सुंदर फूलों से, उनका तुम सम्मान न करोगे तो और क्या करोगे!
जो लोग पंडित-पुरोहितों का सम्मान करते थे, उन्हीं लोगों ने जीसस को सूली चढ़ाया। आखिर जीसस का कसूर क्या था? जीसस धक्के दे रहा था। जीसस तुम्हारी मां की तरह है। और धक्के अच्छे नहीं लगते, धक्के कभी अच्छे नहीं लगते। इसलिए मुझे इतनी गालियां पड़ रही हैं; पड़ेंगी; बढ़ती रहेंगी। जैसे- जैसे मैं धक्के दूंगा, जैसे-जैसे मेरे संन्यासी पंख फड़फड़ाएंगे और आकाश में उड़ेंगे, और जैसे-जैसे ये गैरिक पक्षियों से आकाश गैरिक होने लगेगा, जैसे सुबह होने लगी हो और जैसे पूरब सुर्ख हो गया हो, वैसे-वैसे गालियां बढ़ती जाएंगी। पत्थर भी बढ़ते जाएंगे। सूली भी लग सकती है! वह सब संभव है। क्योंकि धक्के कोई पसंद नहीं करता। लोग सांत्वना चाहते हैं। पीठ ठोंको। और मैं तुम्हारा सिर तोड़ने को तैयार! तुम आए थे पीठ ठुंकवाने, और मैं तुम्हारी गर्दन काटने को तैयार! अहंकार का गिर जाना गर्दन का कट जाना है। तो नाराजगी में अगर तुम मेरी गर्दन काटने को उत्सुक होने लगो, तो कुछ आश्चर्य नहीं।
जब पक्षी को उसकी मां धक्का देती है, तो वह जोर से पकड़ता है--और जोर से पकड़ लेता है। घोंसले को बिल्कुल पकड़ लेता है कि छूटे ही न। लेकिन मां इतनी आसानी से नहीं छोड़ देती। उड़ती है। उड़-उड़ कर दिखाती है कि देख मैं उड़ सकती हूं, तू भी उड़ सकता है। तू मुझसे आया, मुझसे जाया। मुझ जैसा है।
अमृतस्य पुत्रः--तू भी अमृत का पुत्र है--यही तो गुरु कहते हैं। कि जैसे मैं, वैसे तू।
बुद्ध मरने लगे, तो आनंद रोने लगा। बुद्ध ने कहा, मत रोओ! क्योंकि जैसा मैं, वैसा तू। अप्प दीपो भव! अपना दीया बन। कब से तो कहता हूं नासमझ! उड़। तू उड़ सकता है। मुझे उड़ते देख कर तुझे इतनी समझ नहीं आई! जैसा मैं, वैसा तू। भेद हममें जरा भी नहीं है।
लेकिन लोग बड़े अजीब हैं। लोग इतने अदभुत हैं, उनकी विक्षिप्तता ऐसी गहरी है, उनकी बेहोशी ऐसी सघन है कि जब बुद्ध उनसे कहते हैं कि जैसे हम, वैसे तुम। तो वे क्या सुनते हैं मालूम? वे सुनते हैं कि जैसे हम, वैसे ही बुद्ध। सो कोई फर्क नहीं! सो तुम भी कहीं पहुंचे नहीं। हम बीमार पड़ते, सो तुम बीमार पड़ते। हम बूढ़े हो गए, सो तुम बूढ़े हो गए। हम मरेंगे, सो तुम मरोगे। तो फर्क क्या? जैसे हम, वैसे तुम। तुम्हीं तो कहते हो!
एक आदमी पागल हो गया था। और उसे एक पागलपन छा गया--अजीब पागलपन--कि मैं
मर गया हूं। जिंदा! और माने नहीं। अब अगर कोई जिंदा आदमी कहे कि मैं मर गया हूं, तो कैसे मनाओगे--कि नहीं मरे हो! सब तरह के उपाय किए घर के लोगों ने। थक गए। परेशान हो गए। वह माने ही नहीं। भोजन करे, स्नान करे, सोए। मगर यह न माने कि मैं जिंदा हूं। कहे मैं प्रेत हो गया हूं। प्रेत भी भोजन करते हैं! प्रेत भी सोते हैं, स्नान करते हैं! तुम मानो या न मानो--वह कहे। तुम लाख मुझे समझाओ। मैं अपना अनुभव! अपने भीतर से जान रहा हूं कि मैं मर चुका। तुम नाहक समय खराब न करो, अपने काम में लगो।
अंततः उसे मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक ने भी बहुत कोशिश की। आखिर उसे एक सूझ आई। उसने कहा, एक काम करो। तुम एक बात तो मानोगे कि मुर्दा आदमी के अगर हम हाथ में चाकू मारें तो खून नहीं निकलेगा! उसने

कहा कि नहीं निकलेगा। मुर्दा आदमी को कहीं खून निकल सकता है! तो उसने कहा, फिर मेरे साथ आओ। वह आईने के सामने ले गया। धारदार चाकू निकाला। उस आदमी के हाथ में जरा सा चाकू मारा। खून फव्वारे की तरह फूट उठा। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, अब तो मानते हो कि तुम जिंदा हो? क्योंकि मुर्दों को खून नहीं निकलता! उसने कहा कि नहीं, अब मैं यह मानता हूं कि मुर्दों को भी खून निकलता है। इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि मुर्दों को भी खून निकलता है। वह मेरी धारणा गलत थी कि मुर्दों को खून नहीं निकलता। आज सिद्ध हो गया। अब तुम औरों को भी समझा देना कि मुर्दों को भी खून निकलता है! बुद्ध कहते हैं, तुम हम जैसे। और तुम सुन लेते हो, बुद्ध हम जैसे। जरा
सी बात का फर्क है। शायद वही की वही बात है एक अर्थ में तो! मगर कितने अर्थ बदल गए! कहां आकाश, कहां जमीन!
और बुद्धों को तुम धक्का नहीं देने देते। तुम उनसे कहते हो, महाराज! शांति दो। सांत्वना दो। संतोष दो। और वे तुम्हें देना चाहते हैं असंतोष, दिव्य असंतोष। ऐसा असंतोष कि जब तक परमात्मा न मिल जाए, तब तक तुम जलते ही रहोगे; लपटों में जलते रहोगे--विरह की, प्रेम की। एक ऐसी अशांति कि जो परम उपलब्धि के पहले, समाधि के पहले जाएगी नहीं; तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगी। तुम चाहते थे कोई मंत्र मिल जाता, कि गुनगुना लेते घड़ी भर, और सब ठीक हो जाता। और वे तुम्हें एक ऐसा उपद्रव पकड़ा देते हैं, एक ऐसी अराजकता, कि जब तक परमात्मा न मिलेगा, तुम तूफानों में ही रहोगे। वे तुम्हारी किश्ती को किनारा नहीं देते, तूफान दे देते हैं। वे धक्का दे देते हैं, किनारे छीन लेते हैं तुमसे।
सदगुरु वही, जिसके पास जाकर किनारे छिन जाएं और तूफान मिले। सदगुरु वही, जो तूफानों में किनारा देखने की कला दे दे। जो तूफानों में नाव को ले जाने का रस, आनंद दे दे।
तो मां पक्षी की, धक्के देती है। उड़ती है। दूसरे वृक्ष पर जाकर बैठती है। वहां से आवाज देती है, पुकार देती है। और बच्चा, एक मन करता उसका, जाऊं। एक मन करता है, खतरा है। कहीं गिर न पडूं! एक मन करता है, मां बुलाती है तो ठीक ही कहती होगी। और मां उड़ सकती है तो मैं क्यों नहीं उड़ सकता! और देखने में मैं मां जैसा ही तो लगता हूं। ये पंख मेरे पास तो हैं, फड़फड़ा तो मैं भी सकता हूं। आज नहीं कल। कल नहीं परसों। मां प्रतीक्षा करती है; धक्के देती है; निमंत्रण देती है; दूर झाड़ियों में छिप कर पुकार देती है। एक दिन बच्चा हिम्मत जुटा लेता है। खोल देता है पंख, उड़ जाता है आकाश में। फिर किसी मां को बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।
मेरा काम है भरत, कि तुम्हें धक्के दूं। मेरा काम है कि तुम्हें प्रेम
के तूफान में छोड़ दूं।
मेरी एक धरोहर है, तू रखना जरा सम्हाल कर,
अपनी कविता छोड़ गया हूं, साथी तेरे गांव में।
पास पड़ी है सरगम, लेकिन मौन है,
तनहाई में सुनता किसकी कौन है?
चैन नहीं मिलता है जलती रात को,
थामे कौन उमड़ती दृग-बरसात को?
एक साधना-फूल खिलाया बड़े जतन से पाल कर, मुरझ न जाए कहीं देखना यह पीपल की छांव में। मेरी एक धरोहर है, तू रखना जरा सम्हाल कर, अपनी कविता छोड़ गया हूं, साथी तेरे गांव में। दुनिया है बेदर्द, पुरानी बात है,
पर सबको सहना पड़ता आघात है,
माना मुझसे कोई कुछ नाराज है,
समझ न पाया वह मस्ती का राज है,
लेकिन मैं तो सबकी सुन लेता हूं यही ख्याल कर, जीत समझता है जो अपनी, हारा है वह दांव में। मेरी एक धरोहर है, तू रखना जरा सम्हाल कर, अपनी कविता छोड़ गया हूं, साथी तेरे गांव में। सांसें चलतीं, मैं भी चलता जा रहा,

बाती जलती, मैं भी जलता जा रहा,
बहुत फासला मेरा-उसका, मीत रे,
दूरी कम कर सकता है बस गीत रे,
मेरा गीत, तराना तेरा, गूंजे जग की ताल पर,
नूपुर बन कर बाजे कोई जीवन-स्वर के पांव में।
मेरी एक धरोहर है, तू रखना जरा सम्हाल कर,
अपनी कविता छोड़ गया हूं, साथी तेरे गांव में।
सदगुरु इतना ही करता है! एक गीत गुनगुना देता है तुम्हारे हृदय में।
एक कविता जगा देता है। फिर छोड़ देता है तुम्हें अनंत की यात्रा पर।
तुम्हारे पैरों में घूंघर बांध देता है; तुम्हारे हाथ में इकतारा सम्हाल देता है।
मेरा गीत, तराना तेरा, गूंजे जग की ताल पर, नूपुर बन कर बाजे कोई जीवन-स्वर के पांव में। मेरी एक धरोहर है, तू रखना जरा सम्हाल कर, अपनी कविता छोड़ गया हूं, साथी तेरे गांव में।
ऐसे ही बुद्धपुरुष सदा-सदा अपनी कविताएं तुम्हारे गांव में छोड़ गए हैं। मगर उन कविताओं के तुम अपने अर्थ कर लेते हो, तो चूक जाओगे। उन कविताओं को अपने अर्थ मत देना। उन कविताओं को अपना हृदय देना जरूर--अपना मस्तिष्क न देना। उन कविताओं को सुनना, गुनना, गुनगुनाना, नाचना, लेकिन उन्हें बुद्धि से विश्लेषण मत करना, अन्यथा तुम चूक जाओगे। तुम जो भी विश्लेषण करोगे, वही गलत होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन बस में यात्रा कर रहा था। वह थोड़ी-थोड़ी देर में बस
के कंडक्टर से कहता जा रहा था, शाहदरा आने पर बता देना। कंडक्टर ने कहा, चिंता मत करो, बड़े मियां! अभी तो बहुत दूर है।
भीड़ अधिक होने की वजह से कंडक्टर मुल्ला को बता न पाया और बस आगे निकल गई। मुल्ला ने फिर पूछा, अब शाहदरा और कितनी दूर है? बस का कंडक्टर बोला, बड़े मियां, माफ करना। शाहदरा तो पीछे निकल गया।
अब तो मुल्ला ने चिल्ला-चिल्ला कर जमीन-आसमान एक कर दिया। और कंडक्टर
से बोला, मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि शाहदरा आए तो बता देना। गलती किसकी है?
बस में बैठे लोगों के अनुरोध पर बस वापस शाहदरा की ओर ले जानी पड़ी। शाहदरा पहुंचने पर मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गिलास पानी बुलाया। कंडक्टर ने उसे पानी लाकर दिया। मुल्ला ने जेब से दवाई की एक पुड़िया निकाली और पानी के साथ उसे फांक गया। और बड़े आराम से पैर फैला कर लेट गया। कंडक्टर बोला, जल्दी उतरो बड़े मियां! इस पर मुल्ला नसरुद्दीन ने लेटे-लेटे जवाब दिया, जाना तो मुझे गाजियाबाद है! कंडक्टर झल्लाया। बोला, अबे उल्लू के पट्ठे! यदि गाजियाबाद ही जाना था तो आधे रास्ते से बस क्यों लौटा कर ले आया? मुल्ला बोला, इसमें मैं क्या कर सकता था! चलते वक्त डाक्टर ने कहा था कि यह दवाई की पुड़िया शाहदरा आने पर ले लेना।
तुम क्या समझोगे, यह तुम पर निर्भर है। तुम समझ को बीच में लाओगे तो कुछ नासमझी हो ही जाने वाली है। तुम समझ को बीच में मत लाना।
सुनो! पीयो! मस्त होओ! समझ तुम्हारी काम की नहीं है। क्योंकि समझ तो तुम्हें समझाएगी कि पकड़े रहो जोर से अपने नीड़ को; छोड़ मत देना। पकड़े रहो अपनी पुरानी धारणाओं को; छोड़ मत देना। क्योंकि उन्होंने इतने दिन तक सुरक्षा दी है। और फिर कौन जाने, इस अनजान-अपरिचित आदमी के साथ चल पड़ना! कहां ले जाए? कहां भटका दे?
जाने-माने लोगों के साथ चलना ठीक लगता है। चाहे जिंदगी भर भटकते ही क्यों न रहो! लेकिन तिलकधारी पंडित पहचाना हुआ मालूम पड़ता है। बचपन से उसे देखा है। बाप-दादे भी उसी के पीछे चलते रहे। रामायण की चौपाइयां दोहरा देने वाला पंडित पहचाना हुआ मालूम पड़ता है। बचपन से सुनी हैं चौपाइयां। खून में समा गई हैं।
जब भी कोई बुद्धपुरुष होगा, वह तुम्हें धक्के देगा अज्ञात की ओर।
ज्ञात में बुद्धों की निष्ठा नहीं है--अज्ञात में है। क्योंकि परमात्मा अज्ञात है। क्योंकि प्रेम अज्ञात है।

होली के दिन थे। मुल्ला नसरुद्दीन एक नाई की दुकान पर दाढ़ी बनवा रहा था। और नाई ने डट कर भांग पी रखी थी। दाढ़ी बनाते-बनाते उसने मुल्ला का गाल ही उस्तरे से काट दिया। मुल्ला बड़ा नाराज हुआ। और नाई से बोला, देखो जी! हजार बार तुमसे कहा है, लेकिन समझे नहीं तुम अभी तक। यह भांग खाने का परिणाम है! नाई बोला, अहा! तभी तो मैं कहूं कि गाल इतना मुलायम क्यों है! तुम्हारी समझ किसी काम नहीं आएगी इस अज्ञात के जगत में। तुम बेहोश हो। तुम सोए हो। तुम्हारी आंखें बंद हैं। तुम आंख वालों की बातें समझ नहीं सकते। हां, तुम आंख वालों की बातें पी सकते हो। उनके स्वर में स्वर मिला कर गा सकते हो। उनके ताल में नाच सकते हो। और उनके साथ नाचो, उनके साथ गाओ, तो तुम्हारी बंद आंखें भी खुल जाएं।
एक पुलिस अफसर और उनकी पत्नी को रात में चलने की बीमारी थी। एक दिन पुलिस अफसर रात को देर से घर आया, कपड़े खूंटी पर टांगे, और सो गया। पत्नी ने देखा कि उसके कोट की जेबें घूस के माल से फटी पड़ रही हैं। वह धीरे से उठी और हजार रुपये जेब से निकालने लगी। पुलिस अफसर भी कोई साधारण आदमी तो था नहीं, उसने झट पत्नी को रंगे-हाथों पकड़ लिया और रोबीली आवाज में बोला, ऐ बदमाश औरत! शर्म नहीं आती पुलिस के एक उच्च अधिकारी की चोरी करते हुए! चल थाने, तुझे मजा चखाऊं। पत्नी घबड़ा गई। सौ रुपये का एक नोट धीमे से पति के हाथ में थमा कर बोली, सुनो! मामला यहीं दबा दो।
और दोनों नींद में हैं! दोनों सोए हैं। और यह सारी पृथ्वी सोई है। और
ये सारी पृथ्वी के लोग सोए-सोए चल रहे हैं। सब चल रहा है। रिश्वत भी ली जा रही है। रिश्वत भी दी जा रही है। जेबें काटी जा रही हैं। जेबें भरी जा रही हैं। मकान बन रहे हैं, गिर रहे हैं। लोग आबाद हो रहे, बरबाद हो रहे। सब चल रहा है। लेकिन नींद नहीं टूटती। और नींद टूटे तो तुम्हारे जीवन में प्रेम आए।
मूर्च्छा है, तब तक कामना। अमूर्च्छा है, तो प्रेम।
इसलिए भरत, जागो! भय तो लगेगा, क्योंकि सोने में जो सपने देख रहे हो, वे
सब छोड़ने पड़ेंगे। भय के बावजूद जागो। और अच्छा हुआ कि तुम्हें इतना समझ में आ गया कि तुम कतरा रहे हो। यह पहला कदम है। अब दूसरा कदम यह है कि कतराने को पड़ा रहने दो एक तरफ और हिम्मत से प्रेम की यात्रा करो। क्योंकि प्रेम की यात्रा ही प्रभु के मंजिल तक ले जाती है।
लेकिन मेरे प्रेम को ठीक-ठीक से समझ लेना। अपने अर्थ मत बिठाना। दूसरे भी, मैं जो कह रहा हूं उसका अर्थ करेंगे, उनसे भी सावधान रहना।
गीता पर हजार टीकाएं हैं! अगर तुम गीता को सीधा-सीधा पढ़ो, तो मामला इतना उलझा हुआ नहीं है। गीता साफ-सुथरी है। मगर अगर हजार टीकाएं पहले पढ़ो और फिर गीता पढ़ो, तो तुम्हारी समझ में गीता बिल्कुल नहीं आएगी।
पहले पढ़ो शंकराचार्य को, तो वे गीता को एक रंग देते हैं--अपना रंग। वे गीता की ऐसी तोड़-मरोड़ करते हैं! वे गीता को ऐसा उलटा-सीधा आसन लगवाते हैं! वे गीता में से ऐसे अर्थ निकाल लेते हैं जो कृष्ण की कभी कल्पना में भी न रहे होंगे!
कृष्ण समझाते हैं अर्जुन कोः उतर जा युद्ध में। और शंकराचार्य कृष्ण
के वचनों में से अर्थ निकालते हैंः कर्म-संन्यास। सब कर्म छोड़ कर संन्यासी हो जाओ।
यह तो हो गया न गजब! पैर के बल खड़े आदमी को सिर के बल खड़ा करवा दिया! शीर्षासन लगवा दिया। कहां कृष्ण कह रहे हैं--कर्म में उतर जाओ, अकर्ता भाव से। कर्म ऐसे कि जैसे अकर्म हो। तुम करने वाले नहीं; करने वाला परमात्मा। तुम सिर्फ उसके वाहन। मगर बस इसमें से शंकर ने ऐसा अर्थ निकाला कि कृष्ण कह रहे हैं--कर्म तो तुम्हारा है नहीं, कर्ता तुम हो नहीं, इसलिए तुम झंझट में क्यों पड़ते हो! तुम कर्म के बाहर हो जाओ; अकर्म साधो; कर्म से संन्यास लो।
कर्ता से संन्यास लो--यह कृष्ण का उद्देश्य था। लेकिन कर्ता से कर्म में बदल देना बड़ा आसान है। और शंकराचार्य जैसे तार्किक के लिए तो बहुत आसान है, कोई अड़चन नहीं है। शंकर को पढ़ोगे तो शंकर ही ठीक मालूम पड़ेंगे। शंकर को पढ़ते वक्त तो ऐसा लगेगा कि अगर कृष्ण भी सामने मौजूद हों तो

शंकराचार्य उनको भी राजी कर लेंगे कि यह अर्थ है--तुम्हारी बात का यह अर्थ है! कह तो तुम गए, लेकिन शायद अर्थ तुम्हें साफ नहीं है।
फिर रामानुज को पढ़ोगे, तो हैरान होओगे! कहीं मेल नहीं है शंकर से। कहां संन्यास, कहां वैराग्य, और कहां रामानुज निकालते हैं कृष्ण के वचनों में से भक्ति, प्रेम, परमात्मा से राग! वे भी उतने ही बड़े तार्किक हैं। वे भी कुछ शंकर से कम नहीं। रामानुज को पढ़ोगे तो ऐसा ही लगेगा कि गीता भक्ति का शास्त्र है।
और फिर लोकमान्य तिलक, इसी पूना में हुए, और उन्होंने तीसरा ही अर्थ निकाला--कर्म, कर्मयोग। न भक्ति, न संन्यास--अखंड कर्मठता। मराठी मानुस को खूब जमी होगी बात। अखंड कर्मठता! यह रही कुछ बात! क्या संन्यास! क्या भक्ति! हो जाए मुठभेड़। लग जाओ कर्म में। टूट पड़ो कर्म में।
कहते हैं, जिस दिन लोकमान्य तिलक की पत्नी की मृत्यु हुई, वे केसरी के दफ्तर में काम कर रहे थे। उनका अखबार केसरी। भागा हुआ आदमी आया। उसने कहा, आपकी पत्नी चल बसी! बीमार तो थी ही। अब गई, तब गई, ऐसी हो रही थी। आप जल्दी करो!
मालूम है लोकमान्य ने क्या किया? लोकमान्य ने घड़ी की तरफ देखा और कहा, अभी तो साढ़े चार बजे हैं! पत्नी आधा घंटा पहले मर गई तो मैं क्या कर सकता हूं! पांच बजे दफ्तर बंद होगा। पांच बजे मैं आऊंगा।
और ऐसे लोग हैं जो लोकमान्य की इस बात की खूब प्रशंसा करते हैं, कि वाह! कैसा अदभुत आदमी! पत्नी मर गई, मगर कर्म न छोड़ा। कर्मयोगी! पांच बजे नियम से, घड़ी से आएंगे! जैसे अब पत्नी के हाथ में है मरना, कि कब मरे--साढ़े चार बजे मरे, कि पांच बजे मरे। अगर होशियार होती तो रविवार को मरना था। छुट्टी के दिन!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी छुट्टी के दिन ही मरी। रविवार का दिन! मुल्ला ने एकदम सिर ठोंक लिया। उसने कहा, मुझे मालूम था कि वह मरते वक्त भी मुझसे बदला लेगी। आज पिकनिक पर जाना था। सुंदर मौसम। दुष्ट को क्या दिन सूझा मरने के लिए! और भी कभी मर सकती थी। सप्ताह में सात दिन होते हैं। मगर आज ही मरना था। मुझे पता ही था कि वह जरूर कोई ऐसा मौका चुनेगी कि आखिरी दम भी मुझे सता जाए!
लोग अपने ढंग से सोचते हैं। और सत्संग उन्हीं को उपलब्ध होता है, जो सोचने को तो किनारे पर रख देते हैं; जो कहते हैं, अब सोचेंगे क्या! अब जीएंगे, अब अनुभव करेंगे। हो चुका बहुत सोच-विचार, जनम-जनम हो गए, युग-युग बीत गए।
भरत, अब प्रेम के संबंध में मत सोचते रहो! नहीं तो प्रेम पर बड़े शास्त्र लिखे गए हैं। और जितने शास्त्र, उतनी उलझन। और जितना प्रेम के संबंध में जान लोगे, उतना प्रेम मुश्किल हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे फजलू से कह रहा था, क्या तुम्हारे मास्टर
जी समझ गए कि यह सवाल हल करने में मैंने तुम्हारी मदद की थी? फजलू बोला, हां, वे एकदम देखते ही समझ गए। तत्काल बोले कि यह काम दो आदमियों का लगता है। केवल एक आदमी इतनी गलतियां कर ही कैसे सकता है!
तुम भी किसी एकाध पंडित के लक्षण नहीं दे रहे हो, अनेक पंडितों के लक्षण दे रहे हो। अनेक ज्ञानियों, अनेक महात्माओं ने तुम्हें बिगाड़ा और बरबाद किया है। तुम्हारी खोपड़ी में इतना कचरा भर गया है!
सारा कचरा खाली करो। प्रेम के संबंध में जो जानते हो, भूल जाओ, तो संभावना है प्रेम को जानने की। परमात्मा के संबंध में जो जानते हो, भूल जाओ, तो संभावना है परमात्मा को जानने की। फिर से अज्ञानी हो जाओ, तो ज्ञान का आविर्भाव हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः क्या कभी सदगुरु भी शिष्य की परीक्षा लेता है?

नंदन! पूछते हो कभी! प्रतिपल लेता है। पल-पल लेता है। सदगुरु के पास होना परीक्षा है। सत्संग परीक्षा है--सतत, अहर्निश। तुम्हें समझ में आए या न आए।

सदगुरु के पास कोई ऐसी परीक्षा नहीं होती, जैसे विश्वविद्यालय में होती है--कि घोषणा की गई कि फलां तारीख से परीक्षा शुरू होगी। और फिर घंटा बजा। और तुम परीक्षालय में गए और कापियां बटीं। और फिर तुमने निकाले सब नोट्स वगैरह, जो तुम ले आए हो छिपा कर। और जो और ज्यादा होशियार हैं, उन्होंने छुरा वगैरह निकाल कर टेबल पर रख लिया, जिससे कोई बाधा न डाले। और परीक्षा शुरू!
सदगुरु के पास परीक्षा सूक्ष्म है। न कोई घंटा बजता; न कोई परीक्षालय में प्रवेश होता; न कोई कापियां बांटी जातीं; न नकल करने का कोई उपाय है। चुपचाप चलती रहती है। हो जाती है तब कहीं पता चलता है कि अरे, परीक्षा हो गई! हो जाने के बाद भी पता चल जाए, तो समझो कि बहुत सौभाग्यशाली हो तुम। नहीं तो हो भी जाती है परीक्षा, और पता भी नहीं चलता। लोग उत्तीर्ण भी होते रहते हैं, अनुत्तीर्ण भी होते रहते हैं, उनको कभी खबर भी नहीं लगती कि क्या हो रहा है! बेहोशी ऐसी है!
एक सूफी कहानी। एक दरवेश के पास कोई आदमी आया और उसने उसे एक सिला हुआ कपड़ा भेंट दिया। उसी समय दरवेश ने अपनी झोली में हाथ डाला और एक मछली निकाल कर उस आदमी को दी। जिस आदमी ने कपड़ा भेंट किया था, उसको तत्क्षण एक मछली निकाल कर दे दी।
दरवेश के पास बैठे हुए उसके बहुत से शिष्यों ने यह देखा, तो उस आदमी और अपने गुरु के बीच हुए उस आदान-प्रदान का रहस्य जानने के लिए आपस में बहस करने लगे। मामला क्या है? न वह कुछ बोला; चुपचाप आकर कपड़ा भेंट किया! और कपड़ा! और अचानक गुरु ने झोली में से मछली क्यों निकाली? और कुछ न सूझा? मछली-कपड़े का क्या लेना-देना? और तत्क्षण उसको मछली पकड़ा दी! इस आदान-प्रदान में जरूर कुछ रहस्य है। कोई गुह्य बात, कोई गुप्त राज, जो हमसे चूका जा रहा है। यह ऊपर का लेन-देन है, भीतर कुछ और मामला है। कपड़ा किसी चीज का प्रतीक होगा। मछली किसी चीज की प्रतीक होगी! बड़ा ऊहापोह चला। बड़ा वाद-विवाद शुरू हो गया। क्योंकि ऐसी चीजों में वाद-विवाद की तो खूब गुंजाइश है। अब मछली का जो मतलब करना हो! कपड़े का जो मतलब करना हो! बोला कोई कुछ है नहीं। शब्द आए नहीं बीच में। शब्द होते तो कुछ इंगित-इशारा मिल जाता। पहेली रही बिल्कुल।
कई दिन बीत गए, तो दरवेश ने उनसे पूछा कि वे किस नतीजे पर पहुंचे। जब सभी शिष्य अपनी-अपनी बात बता चुके, तो दरवेश ने कहा, उस आदान-प्रदान द्वारा मैं देखना चाहता था कि तुममें से क्या कोई इतना अक्लमंद भी है कि जो यह समझ सके कि इस आदान-प्रदान का कोई मतलब नहीं था!
बड़ी अजीब परीक्षा हुई यह तो। यह जानना चाहता था फकीर कि क्या तुममें
से कोई इतना अक्लमंद भी है कि जो यह भी समझ सके कि इस आदान-प्रदान का कोई प्रयोजन नहीं है! मगर यह पराकाष्ठा है प्रतिभा की। क्योंकि अस्तित्व का कोई प्रयोजन नहीं है। यह बस है। इसका कोई गंतव्य नहीं है। यह अस्तित्व कहीं जा नहीं रहा है।
मत पूछो कि अस्तित्व क्यों है? क्योंकि इसके न होने का कोई कारण है, न कोई हेतु है--न पीछे, न आगे। न यह कहीं से आ रहा है, न कहीं जा रहा है। यह सदा यहीं है। यह बस है। इसके है-पन को भोगो। प्रयोजन, हेतु, कारण--मनुष्य की ईजादें हैं। हां, कार का प्रयोजन होता है, क्योंकि एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। कपड़े का प्रयोजन होता है, तन को ढंक देता है। धूप, गर्मी, बरसात में सहयोगी होता है। छाते का प्रयोजन होता है, कि कभी वर्षा हो जाए तो आड़ हो जाती है, धूप पड़े तो आड़ हो जाती है। चीजों का प्रयोजन होता है--आदमी की बनाई गई चीजों का। लेकिन आकाश का क्या प्रयोजन? चांद-तारों का क्या प्रयोजन? फूलों का क्या प्रयोजन? तुम्हारा क्या प्रयोजन? होने का क्या प्रयोजन? कोई प्रयोजन नहीं है।
सूफी फकीर कह रहा है कि मैं जानना चाहता था कि क्या कोई ऐसा भी व्यक्ति यहां है, जिसमें इतनी प्रतिभा हो, जो इस आदान-प्रदान की निष्प्रयोजनता को समझ सके। क्योंकि वही फिर मेरी और बातों को समझ सकेगा, नहीं तो चूक जाएगा।
परीक्षा तो प्रतिपल चल रही है। तुम्हें पता भी नहीं चलेगा परीक्षा का। परीक्षा का पता तो तुम्हें उसी दिन चलेगा, जब तुम उत्तीर्ण हो चुके

होओगे, पूर्ण उत्तीर्ण हो चुके होओगे। जब आखिरी परीक्षा हो चुकी होगी और तुम अपने घर आ गए होओगे, तब तुम्हें पता चलेगा कि अरे, कितनी परीक्षाएं गुजरती रहीं! परीक्षाओं पर परीक्षाएं! लेकिन जब परीक्षाएं गुजरीं, तब तुम्हें जरा भी ख्याल नहीं आया होगा। आ जाए, तो तुम्हारा गुरु बहुत कुशल नहीं। तो गुरु को परीक्षा लेना नहीं आता। अभी वह गुरु ही नहीं है--अगर तुम समझ जाओ कि यह परीक्षा ली जा रही है। क्योंकि तुम्हें अगर समझ में आ जाए कि परीक्षा ली जा रही है, तब तो तुम धोखा कर सकते हो। झूठे उत्तर दे सकते हो। बनावटी उत्तर ला सकते हो। पूछ कर उत्तर आ सकते हो। किताबों को देख सकते हो। शास्त्रों को पढ़ सकते हो।
एक झेन फकीर ने अपने शिष्य से पूछा कि शिष्य का लक्षण क्या है? उस शिष्य ने बड़े सहज भाव से कहा, बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। जो जागे हुए हैं, उनकी शरण जाना शिष्य का अर्थ है। जागे हुओं की जो जमात है, सत्संग है, उसमें डूब जाना, शरणागत हो जाना शिष्य का लक्षण है। जागे हुए जिस सूत्र के कारण जागे हैं, जागे हुओं की जमात जिस सूत्र के कारण फूलों की एक माला बन गई है, उस धर्म, उस परम नियम, उस परम सूत्र पर अपने को समर्पित कर देना शिष्य का लक्षण है।
गुरु ने कहा, ठीक।
दूसरे दिन सुबह-सुबह जब फिर गुरु और शिष्य का मिलना हुआ, तो गुरु ने पूछा, शिष्य का क्या लक्षण है? शिष्य तत्क्षण बोला, बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। गुरु ने कहा, भाग यहां से मूरख कहीं का! यह कोई उत्तर है!
शिष्य ने कहा, यह तो बड़ी अजीब बात हुई। कल आपने कहा था--यही उत्तर है।
और आज कहते हैं--यह कोई उत्तर है!
गुरु ने कहा, कल कल था, आज आज है। कल यह सही था। यह अपने कारण सही नहीं था; तेरी सहज स्फुरणा के कारण सही था।
तुम समझना थोड़ा फर्क। इस उत्तर में क्या रखा है! यह तो बुद्धू सदियों
से दोहरा रहे हैं। हजारों-लाखों बुद्धू दोहराते रहे हैं--बुद्धं शरणं गच्छामि। दोहराते रहे बुद्धं शरणं गच्छामि, और बुद्धू थे सो बुद्धू ही रहे। कुछ फर्क न पड़ा। जाते रहे बुद्ध की शरण, मगर बुद्धूपन जरा भी न हटा। इसमें क्या रखा है! यह तो तोते भी दोहराते हैं। बौद्ध देशों में, जैसे तुम्हारे देश में तोते दोहराते हैं राम-राम, सीता-राम, ऐसा बौद्ध देशों में तोते दोहराते हैंः बुद्धं शरणं गच्छामि।
इसमें क्या रखा है! मगर नहीं, तेरी सहज स्फुरणा; तूने तत्क्षण जवाब दिया था; सोचा नहीं था, विचारा नहीं था। यह तेरी बुद्धि से नहीं आया था; यह तेरे हृदय से उमगा था। कल यह सही था। आज यह झूठा है। क्योंकि आज तू सिर्फ कल को दोहरा रहा है। आज यह बुद्धि से आ रहा है। आज यह कल की कार्बन कापी है। आज यह उधार है, बासा है। कल यह ताजा फूल था। आज पंखुड़ियां झड़ गईं। धूल में पड़ी हैं। धूल-धूसरित हो गई हैं। यह आज सही नहीं है।
उत्तर सीखे नहीं जा सकते--यह परीक्षा ऐसी है। सीखे हुए उत्तर किसी काम
के नहीं हैं--यह परीक्षा ऐसी है। यह परीक्षा तुम्हारी सहज स्फुरणा की है, तुम्हारी सहजता की है। इसलिए कोई भी कुंजियां नहीं हैं, जैसे परीक्षा की कुंजियां होती हैं। और जो कल सही था, आज सही हो या न हो!
इसलिए बहुत बार तुम मुझसे प्रश्न पूछते हो कि आपने पांच साल पहले यह कहा था, आज आपने यह कहा। कौन सी बात सही?
पांच साल पहले की बात आज ला रहे हो! अरे, कल भी आज नहीं रहा। पांच साल गंगा का कितना पानी बह गया! मुझे खुद ही पता नहीं कि पांच साल पहले मैंने क्या कहा था। कौन हिसाब रखता है? ये कोई हिसाब-किताब रखने की बातें हैं! यहां कोई खाते-बही हैं? और पांच साल पहले किससे कहा था! निश्चित ही वह तुम नहीं हो। जिससे कहा था, उसके लिए रहा होगा उत्तर। और उसके लिए भी रहा होगा उत्तर उसी क्षण। वह भी अगर आज यहां मौजूद हो और कहे कि पांच साल पहले आपने मुझसे ऐसा कहा था, अब आप ऐसा कहते हैं! तो मैं उससे कहूंगा, पांच साल में तुम भी तो बह गए। गंगा ही थोड़े बही; तुम भी बह गए।
हेराक्लतु ने कहा है, एक ही नदी में दुबारा नहीं उतरा जा सकता।

और मैं तुमसे कहता हूं, एक ही आदमी से दुबारा मिला नहीं जा सकता। जैसे नदी बह रही है और बदल रही है, ऐसे आदमी बह रहे और बदल रहे हैं।
उस दिन तुम्हारे संदर्भ में उत्तर रहा होगा। उस संदर्भ में सही था।
आज के संदर्भ में उसका कोई अर्थ नहीं है। न तुम तुम हो, न मैं मैं हूं।
तुम अगर फोटोग्राफर के पास जाओ और आज अपनी तस्वीर उतरवाओ और फिर तस्वीर में देखो और कहो कि यह क्या मामला है! पांच साल पहले मैं आया था और तुमने मेरी तस्वीर उतारी थी। इन दोनों में कुछ मेल नहीं मालूम होता!
एक छोटा बच्चा अपनी मां के पास बैठा है और घर का अलबम देख रहा है। एक सुंदर जवान की तस्वीर आई। घुंघराले बाल, बड़े-बड़े बाल, काले बाल, तेजस्वी चेहरा, रोब-दाब, टाई-कोट! बेटे ने पूछा, यह कौन है? इसको तो मैंने कभी देखा नहीं। उसकी मां ने कहा, अरे पहचाने नहीं? ये तुम्हारे डैडी! उस लड़के ने कहा, ये मेरे डैडी! तो वह जो घुटमुंडा अपने घर में रहता है, जिसको मैं अब तक डैडी समझता था, वह कौन है?
बीस साल बीत गए होंगे। अब वे बाल न रहे। अब वह बालों में घुंघरालापन न रहा। अब वह चेहरा न रहा।
तुम जब इस तरह के सवाल पूछते हो कि पांच साल पहले आपने ऐसा कहा था, कि
दस साल पहले ऐसा कहा था, तो तुम उस बच्चे से ज्यादा समझदारी दिखला नहीं रहे हो।
मैं तो जो अभी कह रहा हूं, वह अभी का सत्य है, अभी सत्य है। आने वाले क्षण में क्या होगा--आने वाला क्षण जानेगा।
गुरु के पास परीक्षा चलती रहती है, प्रतिपल चलती रहती है। लेकिन कोई बंधे उत्तरों से काम नहीं होगा। इसलिए परीक्षा का पता भी नहीं चलता।
एक झेन फकीर के पास एक युवक तीन साल से आता रहा, आता रहा। और हर बार उसे
एक पहेली दी गई थी, वह सुलझा नहीं पाता था। जब भी आए, गुरु उसको मारता था।
झेन फकीर मारते हैं। उनकी करुणा महान है। डंडा पास रखते हैं। सिर रहे
कि जाए, सिर टूटे कि फूटे, उनका डंडा निर्ममता से प्रहार करता है।
तीन साल से पिटता रहा शिष्य। आखिर घबड़ा गया कि कब तक पिटना है! दो-चार दिन में तो किसी तरह दर्द जाता। फिर लौट कर आता। नया उत्तर लाता पहेली का। और वह डंडा तैयार! और कई बार तो ऐसा हुआ कि शिष्य को लगा यह तो हद हो गई। एक दिन तो ऐसा हुआ कि उसने जवाब ही नहीं दिया था और डंडा पड़ा। उसने कहा कि कम से कम मेरा जवाब तो सुन लेते! गुरु ने कहा, तुझे देख कर ही मैं समझ गया कि तू गलत जवाब देगा। भाग! रास्ते पर लग!
यह कोई परीक्षा का ढंग हुआ! कम से कम जवाब तो सुन लो! मगर सदगुरु देख सकता है। तुम्हारी चाल कह देती है। वह जैसा घुसा होगा डरते-डरते, झिझका- झिझका; भयभीत; अपने को मजबूत किए; आंखों में संदेह लिए कि अब फिर डंडा पड़ा! घुसा होगा देखता--गुरु को कम और डंडे को ज्यादा। देख रहा होगा कि आज गुरु कैसी स्थिति में है। कितनी दूर से जवाब दूं! तीन साल से जो पिट रहा हो, आखिर अनुभव से भी आदमी कुछ तो सीखता है। इतना तो सीख ही गया होगा।
कई बार तो गुरु ने दरवाजा ही नहीं खोला। वह आकर बाहर दस्तक दे, गुरु कहे, भाग जा! नाहक मुझे डंडा मारना पड़ेगा। तू क्या समझता है, तू ही पिटता है? मेरा हाथ भी तो दुखने लगा।
आखिर उसने सोचा कि ऐसे काम नहीं चलेगा। पुराने शिष्यों से पूछ लूं। किसी को उत्तर मालूम हो। इन लोगों ने कैसे हल किया! इनकी खोपड़ी पर अब डंडे नहीं पड़ते। उसने एक सबसे पुराने शिष्य से पूछा कि आप तो बुजुर्ग हो गए। आप स्वीकृत हो गए। आपने पहेली हल कर ली। आपने कैसे हल की थी? तो उसने कहा, भाई, पिटा तो मैं भी बहुत था। लेकिन एक दिन हल हो गई। मैं गया भीतर, और जैसे ही गुरु ने पूछा, लाए उत्तर? बस न मालूम क्या हुआ, मैं एकदम चारों खाने चित्त गिर पड़ा। आंखें बंद। और गुरु ने कहा, ठीक। मुझे पक्का पता नहीं क्या हुआ। उस दिन डंडा नहीं पड़ा। गुरु ने मुझे गले लगाया। और अपनी प्याली, जो उसको बहुत प्यारी प्याली थी चाय पीने की, वह मुझे भेंट दे दी। वह प्याली रखी है, तुम देखो। चाय तो उससे मैं नहीं पीता। उस पर फूल चढ़ाता हूं। वह मेरा पूजा का आलंबन बन गई। बस उस दिन के बाद पहेली नहीं पूछी गुरु ने। क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं! मगर उस दिन के बाद मैं आदमी दूसरा हो गया, यह पक्का है। उत्तर

कैसे आया, कहां से आया--यह भी तुमसे नहीं कह सकता। लेकिन उस क्षण के बाद मैं वही आदमी नहीं हूं। वह तो मर ही गया। सच ही मर गया। मैं दूसरा ही आदमी हूं। उसने कहा, अरे महाराज! तीन साल से तुम मुझे पिटते देख रहे हो। सिर पर पट्टियां बंधी देखते हो। इतनी तो दया करते--बुद्ध ने कितना समझाया कि करुणा ही धर्म है--इतनी तो दया करते, इतना मुझे बता देते। यह तो मैं कभी भी कर सकता था। इसमें रखा ही क्या है! एक दो दिन अभ्यास करूंगा--और तुम देखना, तीसरे दिन!
दो दिन उसने अभ्यास किया; बार-बार अपने कमरे में चारों खाने चित्त गिर पड़े। एकदम आंखें बंद करके पड़ा रह जाए, सांस बंद कर ले। जब अभ्यास पूरा हो गया, पहुंचा तीसरे दिन गुरु के दरवाजे पर। न केवल दरवाजा खुला था, गुरु अपने डंडे पर तेल मस रहा था। उसकी तो छाती बैठ गई कि हद्द हो गई। तेल मसते कभी नहीं देखा था उसको, कि डंडे की मालिश कर रहा था! थोड़ा घबड़ाया भी कि कुछ पता तो नहीं चल गया! वह गुरु, कहीं उस पुराने शिष्य, कुछ दोनों में बातचीत तो नहीं हो गई! मगर फिर उसने कहा, अब जो करना है, वह करके ही दिखाना है। दो दिन मेहनत भी की है। गुरु ने पूछा, लाए उत्तर? वह एकदम चारों खाने चित्त गिर पड़ा धड़ाम से। हाथ फैला दिए। आंख बंद कर लीं। गुरु खिलखिला कर हंसा। पास आया और एक आंख खोल कर देखी। अब किसी की एक आंख खोलो तो दूसरी भी खुल जाती है! उसने एक आंख खोली; दोनों खुल गईं! उसने कहा, उठ! एक डंडे की जगह दो डंडे मारे।
शिष्य ने कहा, लेकिन यह आप क्या कर रहे हैं! यह दुर्व्यवहार है। यह अन्याय है। आज पहली दफे अपना अन्याय आपको कहना चाहता हूं। आपने यह उत्तर एक शिष्य का स्वीकार किया था।
गुरु ने कहा, किया था। मगर उसने अभ्यास नहीं किया था उत्तर का। सहजस्फूर्त था। उसे पता ही नहीं कहां से आया था। अज्ञात से उतरा था। कहो कि परमात्मा का था, उसका नहीं था। निसर्ग का था। उसके स्वभाव से जन्मा था। फूल अदभुत था। उसके प्राणों में खिला था। तुम अभ्यास करके आए हो। यह कागजी फूल है। और मुर्दों की अगर एक आंख खोलो तो दूसरी नहीं खुलती। ख्याल रखना, दुबारा अगर अभ्यास करो, तो यह भी ख्याल रखना कि अगर मुर्दे की आंख खोलो एक, तो दूसरी नहीं खुलती। यह कैसा मुर्दापन कि हमने खोली एक आंख, तुम्हारी दोनों ही खुल गईं! यह मुर्दापन झूठा है। ऐसे मर कर तुम मर न पाओगे। और मर न पाए, तो नये न हो पाओगे।
सदगुरु के पास तो निरंतर परीक्षा चल रही है। प्रत्यक्ष नहीं--परोक्ष। सत्संग परीक्षण है। और जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना का विकास हुआ है, वैसे- वैसे सदगुरुओं की प्रक्रियाएं सूक्ष्म होती गईं।
मैं कोई डंडा लेकर नहीं बैठा हूं। मगर डंडे मारता जरूर हूं। अब डंडा हाथ में लेकर क्या मारना! वह तो कोई भी कर दे। जिन सदगुरुओं को जापान में डंडा हाथ में लेना पड़ा, उसका मतलब साफ है कि बड़ी मजबूत खोपड़ियों वाले लोग रहे होंगे। डंडा मारना जरूरी था। इससे सूक्ष्म बात उनकी समझ में न आती। मेरे पास भी डंडा है, पर सूक्ष्म है; दिखाई नहीं पड़ता; अदृश्य है। मैं
भी मारता हूं। चोटें भी पड़ती हैं। मगर चोटें सीधी नहीं हैं। कब किस ढंग से चोट मारता हूं, तुम उसका कोई पूर्व-निर्धारण नहीं कर सकते। कभी हो सकता है हंस कर चोट मारी जाती हो। कभी सिर्फ एक लतीफा कह कर तुम्हें चाट मारता होऊं। कभी पिटता हो मुल्ला नसरुद्दीन, लेकिन वस्तुतः तुम पीटे जाते होओ। मुल्ला तो सिर्फ निमित्त हो। कभी ढब्बू जी की बात करता हूं और वह बात तुम्हारी ही हो।
ये सूक्ष्म प्रक्रियाएं हैं। मनुष्य की चेतना के साथ ये प्रक्रियाएं सूक्ष्म होती गई हैं। हम एक बहुत ही अदभुत समय में जी रहे हैं, जब मनुष्य एक उत्तुंग शिखर छूने के करीब है चेतना का। इसलिए सदगुरुओं के सारे ढंग भी बदल जाएंगे। इस नई चेतना के साथ नये ढंगों का प्रयोग करना होगा।
मैं सब तरह के नये ढंगों का प्रयोग कर रहा हूं। चूंकि वे पुराने नहीं हैं, इसलिए तुम्हें शायद एकदम से समझ में भी नहीं आएंगे। समझते-समझते ही समझ में आएंगे।
लेकिन नंदन, तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है। अब थोड़ा होशपूर्वक देखना कि कब-कब तुम्हारी परीक्षा ली जाती है। अब जरा होशपूर्वक, जागरूकता

से निरीक्षण करना। मगर एक बात ध्यान रखना, उत्तर तैयार मत करना, नहीं तो परीक्षा में हमेशा अनुत्तीर्ण होते रहोगे। यह परीक्षा ऐसी है, इसमें जिन्होंने उत्तर याद किए, वे सदा असफल हुए। यह परीक्षा उनके लिए है, जो उत्तर याद नहीं करते, जो प्रश्न को आने देते हैं अपने भीतर--और उत्तर को जगने देते हैं।
रेडीमेड उत्तर काम नहीं आएंगे। तुम्हारा अपने प्राणों का उत्तर चाहिए। तुम्हारे प्राणों का प्रतिसंवाद चाहिए, प्रतिध्वनि चाहिए--तो ही तुम उत्तीर्ण हो सकते हो।

तीसरा प्रश्नः कभी संन्यास जीवन की महिमा से मंडित था। आज वह मृत्यु
का पर्यायवाची है। संन्यास मृत्यु का पर्यायवाची कैसे बन गया? कृपा करके समझाएं।

नरेंद्र! संन्यास तो सदा जीवन रहा, उत्सव रहा--लेकिन बुद्ध का, कृष्ण का, महावीर का, कबीर का। अनुयायी, पीछे चलने वाले लोग, अंधों की भीड़, वह तो सब चीजों को उलटा कर लेती है। उसके उलटा कर लेने के पीछे एक वैज्ञानिक कारण है, वह तुम्हें समझ में आ जाए, तो सब समझ में आ जाएगा।
जैसे महावीर ने उपवास किए, खूब उपवास किए। कहते हैं, बारह वर्षों की लंबी तपश्चर्या में उन्होंने केवल तीन सौ पैंसठ दिन भोजन किया। मतलब एक वर्ष। औसतन हर बारह दिन उपवास किया और एक दिन भोजन किया। ग्यारह दिन उपवास, एक दिन भोजन--ऐसा अनुपात। स्वभावतः लोगों ने देखा कि महावीर ऐसा उपवास करते-करते-करते एक दिन परम प्रकाश को उपलब्ध हो गए। और लोग तो बाहर की बात ही देख सकते हैं। महावीर के भीतर झांकने वाली आंख कहां! महावीर के भीतर जो झांक सके, वह तो स्वयं महावीर हो गया। उसे तो महावीर के भीतर झांकने की जरूरत ही न रही। जो महावीर के भीतर झांक सकता है, अपने ही भीतर झांक लिया उसने। अब और किस महावीर की जरूरत है! वह तो अपना दीया स्वयं बन गया।
लेकिन लोगों ने महावीर को देखा, बाहर से देखा। बाहर से तो आचरण दिखाई पड़ता है, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। यहीं अड़चन है। यहीं से उपद्रव शुरू होता है। यहीं से धर्म की विकृति शुरू होती है।
महावीर के भीतर इतना आनंद था ध्यान का, समाधि का, कि भूल जाते थे भूख-प्यास। दिन गुजर जाते थे। यही उपवास शब्द का अर्थ हैः अपने पास होना-- उपवास। या परमात्मा के पास होना--उपवास। अपने पास थे, इतने अपने पास थे कि शरीर से बहुत दूर पड़ गए; कि शरीर की खबर ही न रही, इतने दूर पड़ गए। आत्मा के पास जब कोई होता है, शरीर से दूर पड़ जाता है। आत्मा और शरीर के बीच अनंत फासला है। ध्यान रखना, कह रहा हूं--अनंत। तौला नहीं जा सकता, इतना फासला है। नापा नहीं जा सकता, इतना फासला है। जो शरीर के पास है, आत्मा से दूर। जो आत्मा के पास है, वह शरीर से दूर।
महावीर का उपवास आत्मा के पास होने से घटित होता था। शरीर भूल जाता था। तुम्हें भी कभी-कभी लगा होगा, बहुत खुशी में भूख नहीं लगती। खुशी पेट भर देती है, तो भूख नहीं लगती।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर की गृहिणी ने मुझे कहा कि मुझे कुछ और नहीं पूछना है, लोग बड़े-बड़े सवाल आपसे पूछते हैं, मुझे सिर्फ एक सवाल पूछना है, वह भी एकांत में। दोपहर को जब मैं सोने जा रहा था, तब उसने कहा, अब कोई नहीं है, मैं पांच मिनट आपका समय ले लूं!
मैंने कहा, पूछ तुझे क्या पूछना है। ऐसा कौन सा सवाल है!
उसने कहा, सवाल मूर्खतापूर्ण है, इसलिए सबके सामने पूछ नहीं सकती। भद्द होगी मेरी। सवाल यह है कि मुझे मेरी सासू से बहुत प्रेम था, जो कि असंभव जैसा है। बहुओं में और सासों में प्रेम नहीं होता। लेकिन मेरी सास ने मुझे इतना प्रेम दिया कि मेरी मां भी नहीं दे सकी। उससे मुझे इतना प्रेम था! और जब वह मरी, सांझ को मरी; जैन परिवार; तो उस दिन अनथऊ, सांझ का भोजन नहीं हो सका। तो उस गृहिणी ने मुझे कहा कि रात मुझे इतनी भूख लगी कि मैं अपने पति से कह भी न सकूं कि मुझे भूख लगी है। क्योंकि पति क्या कहेंगे कि मेरी मां मर गई और तुझे आधी रात भूख लगी है! तुझे इतना भी दुख नहीं है!

तो उसने कहा कि मैं चोरी से चौके में गई, और जो कुछ मिल सका, चोरी से अंधेरे में मैंने खाया। मुझे भी अपराध-भाव सताए कि मैं यह क्या कर रही हूं! मेरी सास मर गई। लाश घर में पड़ी है। और सास से मेरी दुश्मनी होती तो ठीक भी था, कि चलो, अच्छा हुआ, झंझट मिटी। मगर उससे मेरा प्रेम था। और ऐसा प्रेम मेरा किसी से भी नहीं था। जितना उसने मुझे चाहा, किसी ने मुझे नहीं चाहा। मेरा मेरे पति से भी इतना लगाव नहीं है, जितना मेरा सास से था। उसके मरने से मेरे जीवन का सब कुछ खो गया। और मुझे भूख लगी! मैं किसी से यह सवाल पूछ नहीं सकी कि लोग क्या कहेंगे। आपसे पूछती हूं।
मैंने उससे कहा कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह बिल्कुल मनोवैज्ञानिक है। आनंद में जब कोई होता है, तो आत्मा ही भरी नहीं मालूम पड़ती, सब भरा मालूम पड़ता है। इसलिए भूख भूल जाती है, प्यास भूल जाती है। लेकिन जब कोई दुख में होता है, पीड़ा में होता है, तो सब खाली हो जाता है, रिक्त हो जाता है। आत्मा ही खाली नहीं हो जाती, शरीर भी खाली हो जाता है। भयंकर भूख लग सकती है। इसमें कुछ बेबूझ नहीं है। तू व्यर्थ अपने को अपराध-भाव से ग्रसित न कर। यह केवल सबूत है कि तूने अपनी सास को सच में ही प्रेम किया था।
उसके सिर से जैसे हिमालय का बोझ टल गया। उसने कहा कि मैं इस अपराध-भाव
से दबी रही, दबी रही। यह मुझे काटता ही रहा, कि मैं एक रात भूखी न रह सकी! और जैन घर! और वही महिला हर पर्यूषण में दस दिन का उपवास करती है। तो जो दस दिन का उपवास कर सके, वह एक रात भूखा न रह सके, यह असंभव मालूम होता है।
लेकिन ऐसा हो सकता है कि दुख इतना गहरा हो कि भीतर इतनी रिक्तता मालूम पड़े कि उसे भरना पड़े। अब तो मनोवैज्ञानिक इस सत्य को स्वीकार करते हैं। जिन देशों में रिक्तता का बोध है, जैसे अमरीका खासकर, जहां लोगों का जीवन बड़ा सूना-सूना हो गया है; जहां सब है और कुछ भी नहीं है; वहां लोग खूब भोजन से अपने को भर रहे हैं। अमरीका की सबसे बड़ी बीमारी है मोटापा। अमरीका के अधिक लोग पीड़ित हैं इससे। जो देखो वही डाइट कर रहा है! जो देखो वही नेचरोपैथी की तलाश कर रहा है! जो देखो वही जा रहा है उपवास करने! किसी तरह शरीर का वजन कम हो जाए।
मेरी एक संन्यासिनी है प्रीति गांगुली। प्रसिद्ध अभिनेता अशोक कुमार
की लड़की है। लाख उपाय किए गए, उसका मोटापा कम नहीं हुआ, नहीं हुआ। मोटापा बढ़ता ही चला गया। भारत की फिल्म दुनिया में दो ही तो मोटी औरतें हैं--एक टुनटुन और एक प्रीति। प्रीति का चेहरा सचमुच प्यारा है। अगर देह उसकी अनुपात में होती, तो वह हेमामालिनी हो सकती थी। उसकी कला भी उतनी ही है। उसकी कुशलता भी उतनी ही है। मगर देह इतनी बड़ी हो गई कि उसे कोई हीरोइन के पार्ट तो मिल नहीं सकते। सब उपाय हार गए। मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूं! मैंने उससे कहा, बस एक ही चीज है जो शायद कभी तेरे काम आ सके। और वह है
कि तेरा किसी से प्रेम हो जाए। ऐसा प्रेम हो जाए कि प्रेम तुझे भर दे! उसने कहा, प्रेम तो मेरा है किसी से। मगर वह शादीशुदा है! मैंने कहा, शादीशुदा आदमी से प्रेम करने का मतलब इतना ही होता है कि प्रेम से बचना। शादीशुदा आदमी से प्रेम करने का मतलब यही होता है कि यह जीवन का मूल नहीं बन सकता; किनारे-किनारे। कभी-जभी मिल-जुल लिए। शादीशुदा आदमी है। बाल-बच्चे वाला आदमी है। उसकी अपनी दुनिया है। कभी-कभी मिल लिए। यह तेरे जीवन का आधार नहीं बन सकता। इससे कुछ हल नहीं होगा। फिर बात आई-गई हो गई।
अभी परसों मैंने अखबार में पढ़ा कि प्रीति का किसी से प्रेम हो गया है।
और एक चमत्कार हुआ है। एकदम साठ पौंड वजन कम हो गया! प्रीति के लिए तो बहुत सुखद खबर है। लेकिन फिल्म बनाने वाले लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। क्योंकि जिन्होंने उसको पार्ट दे दिया था मोटापे के कारण, अब वे क्या करें! वह मोटी प्रीति कहां से लाएं! और मोटी प्रीति के चेहरे पर जो मुस्कुराहट थी, जो कि हमेशा मोटे आदमियों के चेहरों पर होती है, वह भी नदारद हो गई। वह मुस्कुराहट भी एक तरकीब है। वह शरीर में जो कमी है, उसको पूरा करने का मनोवैज्ञानिक उपाय है। मोटा आदमी मुस्कुराता है, हंसोड़ होता है। मोटे आदमी को देख कर ही तुम्हें प्रसन्नता होती है। क्योंकि मोटा आदमी तुम्हें किसी तरह आकर्षित करना चाहता है।

प्रीति की हंसोड़ अवस्था भी चली गई। मोटापा भी चला गया। जो फिल्में आधी अटकी हैं, उनमें मुश्किल खड़ी हो गई। उसका पूरा भविष्य भी अभिनेत्री की तरह खतरे में है। मगर उसे इसकी चिंता भी नहीं है। अब उसे समझ में आया होगा कि मैंने जो उससे कहा था, कभी किसी से तेरा सच में प्रेम हो जाए; कोई तुझे भर दे; किसी का होना तुझे भर दे; तो तेरा खाने का जो अतिशय लोभ है, वह समाप्त हो जाए। वह दिन भर खाने-पीने में ही लगी रही है। रात-दिन खाना-पीना! जितना खा सके, खाती रही! जितना पी सके, पीती रही।
सुख में आदमी इतना भर जाता है! जब सुख में इतना भर जाता है, तो आनंद की
तो कहना ही क्या! महावीर को आनंद मिला, परमात्मा मिला। उपवास फलित हुए। यह उनकी भीतरी कहानी, यह भीतर की कथा। जो मैं तुमसे कह सकता हूं, क्योंकि मेरी जानी कथा, यह मेरा अनुभव। मैंने भी वैसे उपवास किए हैं, मगर जब मेरे भीतर आनंद--तो।
फिर पीछे आता है अनुयायी। वह भी उपवास करता है। उसका उपवास अनशन है, उपवास नहीं। वह भूखा मरता है। वह जबरदस्ती अपने पर थोप लेता है।
तो महावीर का उपवास तो उत्सव है, आनंद है। और महावीर के पीछे चलने वाले जैन मुनि का उपवास दुख है, जीवन-विरोधी है, आत्मघाती है, मृत्योन्मुख है।
नरेंद्र, तुमने पूछाः "कभी संन्यास जीवन की महिमा से मंडित था... ।"
जब भी कभी कोई सच्चा संन्यासी हुआ है, जीवन की महिमा से मंडित ही हुआ है। संन्यास जीवन की सुगंध है। संन्यास जीवन की अंतिम उड़ान है। संन्यास जीवन का सार है। संन्यास जीवंतता है।
तुमने पूछाः "लेकिन आज वह मृत्यु का पर्यायवाची हो गया है।"
वह हो गया है भगोड़ों के कारण, झूठों के कारण, पाखंडियों के कारण, अनुयायियों के कारण। क्योंकि अनुयायी ऊपर से पकड़ते हैं। महावीर इतने आनंदित हुए, इतने निर्दोष हुए कि उन्होंने कपड़े छोड़ दिए। इतनी निर्दोषता आ गई कि वे छोटे बच्चे जैसे हो गए। उन्हें ध्यान ही न रहा कपड़ों का। बाइबिल में कहानी है कि जब अदम और हव्वा ने ज्ञान के वृक्ष का फल खाया,
तो उनको जो पहली बात ख्याल आई, वह ख्याल आई कि हम नंगे हैं। यह कहानी समझने जैसी है; खासकर महावीर के संदर्भ में। ये दोनों कहानियां एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अदम और हव्वा को जो पहली बात ज्ञान का फल खाते ही याद आई, वह यह थी कि हम नंगे हैं। और उन्होंने पहला काम क्या किया मालूम? जल्दी से उन्होंने पत्ते इकट्ठे करके पत्तों को लकड़ी की सीखचियों से जोड़ कर अपने वस्त्र बनाए। पहला काम अदम और ईव ने ज्ञान का फल चखने के बाद वस्त्र बनाने का किया।
महावीर फिर निर्दोष हो गए। जैसे अदम और हव्वा रहे होंगे ज्ञान का फल चखने के पहले। ध्यान का फल वही चख सकता है जो ज्ञान के फल को त्याग कर दे।
महावीर फिर निर्दोष हो गए। इसलिए जो पहली घटना उनकी घटी होगी, वह वस्त्रों के गिर जाने की घटी। यह नग्नता बड़ी और है। यह नंगापन नहीं है।
नग्नता और नंगेपन में फर्क है। नग्नता एक अत्यंत अपूर्व अवस्था है। नंगापन एक बड़ी ओछी मनोस्थिति है, क्षुद्रता है।
जैन मुनि नंगे हैं, नग्न नहीं। उन्होंने आयोजन किया है। उन्होंने अभ्यास किया है। जैसे उस आदमी ने अभ्यास किया था न, दो दिन तक लेट कर, आंखें बंद करके, चारों खाने चित्त, मर गए, सांस रोक ली। बस ऐसा ही अभ्यास। अभ्यास से फलित जो नग्नता है, वह नंगापन है। निर्दोषता से बही जो नग्नता है, उसकी सुगंध और, उसका संगीत और। उसमें तो जीवन का उल्लास है। छोटे बच्चों का नृत्य है, किलकारी है। जो अभ्यासजन्य नग्नता है, वह झूठी है, व्यर्थ है, थोथी है, अहंकारी है, मृत्योन्मुख है, जीवन-विरोधी है।
लोग एक तो ऐसे हैं, जो संन्यास लेते हैं जीवन के प्रति अनुग्रह के कारण। और कुछ लोग संन्यास लेते हैं जीवन से घबड़ा कर। इन दोनों का संन्यास अलग-अलग होगा। किसी की पत्नी मर गई, तो कहते हैं--मूंड़ मुड़ाए भए संन्यासी! किसी की पत्नी मर गई; अब क्या करें! अब सिर घुटा लिया, संन्यासी हो गए। अब कौन पंचायत करे दुकान चलाने की! अब ऐसे ही संन्यासी होकर आदर भी मिल जाएगा, भोजन भी मिल जाएगा। लोग आकर सेवा भी कर जाएंगे। अब कौन पंचायत करे रोटी- रोजी की! पत्नी मर गई तो उन्हें एक मौका मिल गया संसार से भागने का। पत्नी

के रहते भाग नहीं पा रहे थे। जिम्मेवारी अनुभव होती थी। अपराध अनुभव होता था। और पत्नी इतनी आसानी से भागने भी न देती। भागते भी कहां! खोज लाती। निकाल लाती, कहीं भी छिपते, वहीं से।
मैं जानता हूं एक पत्नी को। उसने अपने भागे हुए पति को पंद्रह साल बाद बनारस में खोज लिया। पंद्रह साल का संन्यास, और जैसे ही पत्नी को देखा पसीना-पसीना हो गया संन्यासी। और पत्नी ने कहा, उठो, चलो घर! और उठे संन्यासी और पत्नी के पीछे हो लिए! कि अब और कौन फजीहत करवाए! जब वे लौट आए, उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि ले आई उनको। आखिर पंद्रह साल लगे, मगर मैंने भी एक अड्डा नहीं छोड़ा। एक-एक आश्रम खोज डाला।
मैंने उससे कहा कि तू मेरे आश्रम नहीं आई?
उसने कहा, यह वह जगह है जहां उनको नहीं पाया जा सकता। यहां दूसरी तरह
के लोग संन्यासी होते हैं। यहां मैं नहीं आई। मुझे पक्का था कि यहां वे नहीं पाए जाएंगे। काली कमली वाले बाबा! वहां देखा। हरिद्वार, ऋषिकेश, काशी, मथुरा-वृंदावन, वहां खोजा। यहां नहीं आई।
उसकी बात ठीक है। उसकी समझ ठीक है। उसने कहा, यहां उनको क्या पाया जाएगा!
यहां एक और तरह का संन्यास घटित हो रहा है, जो जीवन-विरोधी नहीं है, जो भगोड़ेपन का नहीं है, पलायनवादी नहीं है। एक तो थकान से आता है संन्यास-- उदासी से, विषाद से।
प्राण, अपने मन-सघन-तरु में छिपा लो,
मैं मुसाफिर थक गया हूं!
पांव ने गति का निरंतर प्यार पाया,
दृष्टि में विस्तार अंबर का समाया,
मन विकल खग की तरह निर्लक्ष्य उड़ता
नीड़ अपना मन, प्रहर भर को बना लो,
मैं मुसाफिर थक गया हूं!
गीत रचने को बहुत मैंने रचे हैं,
पर हृदय में कुछ अभी ऐसे बचे हैं--जो तुम्हारे होंठ छूना चाहते हैं आज इनको स्वर-सिंहासन पर बिठा लो,
मैं मुसाफिर थक गया हूं!
काटने को कट गया पथ जिंदगी का,
इस तरह जैसे तरसता तट नदी का,
छोर छूकर सब दिशाओं के,
क्षितिज में--ढल रही है सांझ, अब तो स्नेह ढालो,
उम्र का बुझता दीया हूं।
मैं मुसाफिर थक गया हूं।
एक तो थकान से--कि बुझ रही उम्र; जीवन जा रहा; अब तो मौत आ ही रही। मौत
को देख कर, मौत की घबड़ाहट में, भय में, स्वर्ग के लोभ में, नरक के डर में एक संन्यास घटित होता है। वह संन्यास थोथा है, मिथ्या है, सच्चा नहीं है। परमात्मा तो जीवन है, इसलिए वह संन्यास परमात्मा की तरफ ले जाने वाला नहीं हो सकता है।
जब भी संन्यास सच्चा होता है, तो जीवन की थकान से नहीं, जीवन के उल्लास
से पैदा होता है; जीवन की तरंगों से पैदा होता है--पक्षियों के गीतों से; वृक्षों की हरियाली से; फूलों के रंग से, गंध से; तारों की चमक से। जीवन के अनंत-अनंत अनुभवों से पकता है। जीवन के पार ले जाता है, जीवन के विपरीत नहीं।
योग प्रीतम ने मुझे एक कविता भेजी है। वह दूसरे संन्यास का तुम्हें स्मरण दिलाएगी।
डगर-डगर तू गाता चल, यह मस्ती बिखराता चल
जो भी राही मिले राह में, सबको प्रेम लुटाता चल
डोल रहे हैं मदहोशी में, यह बस्ती दीवानों की
पिए प्रेम की मदिरा हैं जो, बात उन्हीं मस्तानों की
ऐसा नर्तन, गायन, उत्सव, और कहीं पर मिला नहीं
जली हुई है यहां शमा और भीड़ लगी परवानों की

तू भी साज बजाता चल, हंसता और हंसाता चल
यह जो है बासंती दुनिया, उसके रंग लुटाता चल हिम्मत वाले, दिल वाले जो, यह मजमा उन प्यारों का लगे हुए जो नई सृष्टि में, यह मजमा उन यारों का जिसकी प्रभु से प्रेम-सगाई, जो उसमें ही डूब गया जो बेशर्त गंवा बैठे दिल, मजमा उन दिलदारों का
तू भी दांव लगाता चल, मन की मौज बढ़ाता चल
हिलमिल जा तू भी इन सबसे, सबको गले लगाता चल जाति-वर्ग का भेद नहीं है, नहीं राष्ट्र का बंधन है जो भी खोजी हैं, प्यासे हैं, उन सबका अभिनंदन है नहीं शर्त है, बंदिश कोई, जीवन जिसको प्यारा है उनमें फूल लगेंगे निश्चित, उन सबका मधु-वंदन है तू भी आता-जाता चल, डुबकी यहां लगाता चल
यह तीर्थों का तीर्थ, यहां पर आकर पुण्य कमाता चल कह सकते हैं धरतीवासी--यह अभियान हमारा है
यहां कला-विज्ञान मिल रहे--यह उद्यान हमारा है तरह-तरह के फूल खिले हैं, सबकी गंध अनूठी है,
सभी नहाएं स्वर-गंगा में--यह आह्वान हमारा है
तू भी बीन बजाता चल, कुछ संगीत सुनाता चल
यह धरती ही स्वर्ग बनेगी, सुंदरता बिखराता चल
डगर-डगर तू गाता चल, यह मस्ती बिखराता चल
जो भी राही मिले राह में, सबको प्रेम लुटाता चल
एक संन्यास है--बूढ़ों का, मुर्दों का। एक संन्यास है--युवाओं का, जो अभी जीवंत हैं। और ध्यान रहे, बुढ़ापा शरीर की बात नहीं, मन की हारी हुई अवस्था का नाम है। जवान भी बूढ़ा हो सकता है। बच्चा भी बूढ़ा हो सकता है। और जवानी भी उम्र की बात नहीं, एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। बूढ़ा भी जवान हो सकता है। जीवन से जिसका प्रेम है, वह युवा है। और जीवन से जिसका प्रेम नहीं है, वह बूढ़ा है।
जीओ! समग्रता से जीओ! और तुम सच्चे संन्यास को जान सकोगे।
यह वैराग्य, राग की आत्यंतिकता में से निकलता है। राग के बीज में से
ही यह विराग का फूल खिलता है। यह विराग उनका नहीं है, जो राग को छोड़ गए हैं डर कर, पीठ कर ली है जिन्होंने। यह दमन करने वालों का संन्यास नहीं है।
और मैं पुनः दोहरा दूं नरेंद्र, जब भी संन्यास पृथ्वी पर आया है--चाहे याज्ञवल्क्य का हो, चाहे उद्दालक का, चाहे बुद्ध का, चाहे कबीर का, चाहे जरथुस्त्र का, चाहे बहाउद्दीन का--जब भी संन्यास पृथ्वी पर आया है, तो गाता हुआ आया है, नाचता हुआ आया है। उसके हाथ में सदा ही वीणा है; उसके ओंठों पर सदा वंशी है; उसके प्राणों में सिर्फ एक स्वर है--अहोभाव का, धन्यता का। धन्य हैं हम कि इस महान अस्तित्व के हिस्से हैं। धन्यभागी हैं हम कि इस विराट अस्तित्व ने हमें जीवन दिया, हमारे प्राणों में श्वास फूंकी। यही कृतज्ञता संन्यास है।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
चौथा प्रवचन

धर्म है प्रेम की पराकाष्ठा

पहला प्रश्नः धर्म क्या है?

रामनारायण! धर्म प्रेम की अंतिम पराकाष्ठा है। प्रेम जैसे फूल है, धर्म प्रेम के फूल की सुवास है। काम है बीज; प्रेम है फूल; धर्म है फूल से उड़ गई सुगंध। इसलिए धर्म अदृश्य है।
दृश्य तो होते हैं बुद्ध, कृष्ण, कबीर, नानक। ये फूल हैं। इनके आस-पास सुगंध की तरह जो व्याप्त होता है, वह धर्म है। जो बुद्धि से सोचने चलते हैं, उन्हें वह दिखाई नहीं पड़ता। वह दिखाई पड़ने वाली बात नहीं, मुट्ठी में आ जाए ऐसा तथ्य नहीं, शब्दों में समा जाए ऐसा अनुभव नहीं। लेकिन जो हृदय को खोल देते हैं--किसी सदगुरु के समक्ष, किसी सत्संग में--जो पीने को राजी हो जाते हैं; जो डुबकी मारने को, गोता लगाने को राजी हो जाते हैं; बुद्धि के हिसाब-किताब को तट पर रख कर जो निकल पड़ते हैं तूफानों में, अनंत की यात्रा पर--वे जान पाते हैं कि धर्म क्या है।
और हमारे नासापुट खराब हो गए हैं। हमें आदत दुर्गंध की पड़ गई है। हम दुर्गंध को ही सुगंध समझने लगे हैं। इसलिए सुगंध जब पहली दफा हमारे नासापुटों को छूती है, तो या तो हमें उसका अनुभव ही नहीं होता; उसकी उपस्थिति भी प्रतीत नहीं होती; या और भी बड़ा दुर्भाग्य कि हमें लगता है वह दुर्गंध है!
एक मछलियां बेचने वाला मछलियां बेच कर लौटता है। और बीच सड़क पर--भयंकर
लू चल रही है, गर्मी के उत्तप्त दिन हैं, आकाश से आग बरस रही है--वह गश खाकर गिर पड़ता है। भूखा; गर्मी; लंबी यात्रा। जिस रास्ते पर गिर पड़ता है, वह गंधियों का रास्ता है, जिनका धंधा ही सुगंध बेचना है। पास की ही दुकान का जो गंधी है, वह अपनी श्रेष्ठतम गंध को लेकर आता है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि अगर श्रेष्ठ गंध बेहोश आदमी को सुंघाई जाए, तो वह होश में आ जाता है। पता नहीं यह बात कहां तक सच है गंध के और साधारण बेहोशी के संबंध में, मगर धर्म नाम की गंध के संबंध में तो बिल्कुल सच है। कितने ही बेहोश आदमी को सुंघाया जाए, अगर उसके हृदय तक गंध पहुंच जाए, तो सोए प्राण तत्क्षण जाग उठते हैं। मगर हृदय तक पहुंचने में बड़ी बाधाएं हैं। और वैसी ही बाधा वहां खड़ी हो गई।
गंधी ने तो अपनी सुगंध की बोतल खोल दी--बहुमूल्य--जिसको सम्राट भी खरीदने में दो क्षण झिझकते, इतनी उसकी कीमत थी। लेकिन यह आदमी मर रहा है, इसको बचाने को गंधी ने जो भी वह कर सकता था, करने की कोशिश की। मगर वह मरता आदमी अब तक तो बेहोश था सिर्फ, अब हाथ तड़फड़ाने लगा, सिर पटकने लगा। बेहोशी में ऐसे तड़फने लगा, जैसे मछली को किसी ने किनारे पर फेंक दिया हो।
भीड़ लग गई। एक आदमी ने उस गंधी को कहा कि रुको मेरे भाई! तुम दयावश जो
कर रहे हो, वह उसके प्राण ले लेगा। मैं भी मछलियां बेचने वाला हूं। तुम हटो। यह अपनी बोतल बंद करो। तुम्हें पता नहीं कि मछलियां बेचने वाले केवल एक ही सुगंध को पहचानते हैं--मछलियों की सुगंध! और तो सब दुर्गंध है। उसने जल्दी से अपनी पोटली खोली, जिन कपड़ों में मछलियां बांध कर वह भी बाजार बेचने आया था। मछलियां तो बेच आया था; कपड़े थे। लेकिन उन्हीं कपड़ों में रोज मछलियां बेचने लाता था। मछलियों की गंध को पी गए थे वे कपड़े। उसने उन पर जल्दी से पानी छिड़का और उस आदमी के चेहरे पर वे कपड़े ओढ़ा दिए।
क्षण भर की भी देर न लगी, उस आदमी ने आंखें खोल दीं! और उसने कहा, किसने
यह सुगंध मुझे सुंघाई! और तूने मुझे बचा लिया। यह आदमी तो मुझे मार डालता। यद्यपि मैं बेहोश था, लेकिन जब इसने दुर्गंध मेरी नाक के पास लाया; कैसी दुर्गंध इसकी शीशी में भरी है कि मैं तड़फने लगा! मुझे भीतर समझ में आने लगा कि मेरी जान अब गई। अब ज्यादा देर बचने का नहीं हूं। अगर किसी ने इस आदमी को न हटाया, तो मेरी मौत निश्चित है। तू ठीक समय पर आ गया।

मछली की सुगंध का जो आदी हो जाए, उसे फिर जगत की सारी सुगंधें दुर्गंध
हो जाती हैं।
बुद्धि के हम आदी हो गए हैं, इसलिए प्रेम से परिचय बनाना मुश्किल। बुद्धि ज्यादा से ज्यादा काम से संबंध बना पाती है। क्योंकि काम का शोषण किया जा सकता है। काम एक शारीरिक जरूरत है। प्रेम तो कोई जरूरत नहीं। प्रेम तो काव्य जैसा है; उसके बिना जिंदगी बड़े मजे से चल सकती है। काम रोटी जैसा है; उसके बिना जिंदगी नहीं चल सकती है। काम बहुत स्थूल है; स्थूल देह को उस पोषण की जरूरत है। लेकिन प्रेम बहुत सूक्ष्म है। और अभी तुम्हारी सूक्ष्म आत्मा जगी ही नहीं कि उसे भोजन की जरूरत हो। और धर्म तो आत्यंतिक है। जब तुम्हारे भीतर परमात्मा जगता है, तो तुम्हारे आस-पास जो आभा विकीर्णित होती है, उसका नाम धर्म है।
धर्म का अर्थ हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं, सिक्ख नहीं। नानक के पास जो गंध थी, उसका नाम धर्म है। सिक्ख--धर्म नहीं है। वह तो सिर्फ उस गंध के संबंध में है। बातचीत रह गई। गंध तो कब की खो गई। फूल ही खो गया, तो गंध आकाश में तिरोहित हो गई।
महावीर के पास जो गंध अनुभव की गई थी, वह धर्म थी। जैन धर्म धर्म नहीं है। महावीर के पास जो गंध थी, वह जिनत्व की थी। जैन धर्म तो पंडितों द्वारा निर्धारित सिद्धांत, शास्त्र में आबद्ध व्याख्या है।
जैसे तुमने फूल सूंघा गुलाब का और फिर किसी को तुम बताने लगे कि कैसी गंध थी। क्या बताओगे? क्या खाक बताओगे? फूल की गंध को किन शब्दों में वर्णन करोगे? कि तुम गए समुद्र पर; और तुमने उत्ताल तरंगें देखीं, और हवाओं में नमकीनपन देखा, और सुबह का उगता सूरज सारे समुद्र को लाल करता हुआ मालूम पड़ा--गैरिक--जैसे संन्यास दे दिया हो सारे सागर को! उसे किस तरह से वर्णन करोगे? कोई तुमसे पूछने लगेगा, तो क्या करोगे? जो भी कहोगे, छोटा पड़ेगा। जैसे भी कहोगे, ओछा पड़ेगा।
मैंने सुना है, एक कवि समुद्र के तट पर टहलता था। सुबह का सूरज, पक्षियों के गीत, हवा की ताजगी, समुद्र की लहरें। बहुत आंदोलित हो उठा! कवि था। हृदय में लहरें ही लहरें हो गईं। सागर भीतर तक चला गया। हवाओं ने प्राणों को जगा दिया और झकझोर दिया। उसकी प्रेयसी अस्पताल में बंद थी। सोचाः काश, वह भी आज यहां होती! यह सुबह फिर आए--न आए। यह सुबह फिर दोहरे--न दोहरे! कैसे आज अपनी प्रेयसी को इस सुबह का दर्शन कराऊं! उसे तो लाया नहीं जा सकता। बहुत रुग्ण है; मरणशय्या पर है।
तो वह एक सुंदर मंजूषा लाया, एक पेटी लाया। उसमें उसने सागर की धूप भरी, सागर की हवा भरी। ताला बंद किया। पेटी को लेकर अस्पताल पहुंचा। अपनी प्रेयसी से कहा कि तू चकित होगी जान कर कि क्या तेरे लिए लाया हूं! शायद ऐसी भेंट कभी कोई नहीं लाया था! सूरज लाया हूं। सूरज की ताजी-ताजी किरणें लाया हूं। सुबह की मदमस्त हवा लाया हूं। पक्षियों के गीत लाया हूं। सागर की तरंगों का नाद लाया हूं।
खोली पेटी उसने। पर पेटी में क्या था? कुछ भी न था! न सागर का नाद था। न हवाओं की ताजगी थी। न सूरज की किरणें थीं। न पक्षियों के गीत थे। पेटियों में कहीं ये चीजें बंद होती हैं! और शब्द पेटियों से ज्यादा नहीं हैं। नानक के पास गंध ली लोगों ने; शब्दों की पेटियों में भर ली--वसीयत रहेगी। आने वालों के लिए कुछ संपदा छोड़ जाएंगे।
बुद्ध के पास गंध पी लोगों ने; सुरा पी लोगों ने; शराब पी लोगों ने। और फिर उस याददाश्त को शब्दों में आबद्ध किया; शास्त्र बनाए; आने वाली पीढ़ियों के ऊपर उपकार किया। मगर उन शास्त्रों में कागजों की गंध आती है, बुद्धों की नहीं। उन शास्त्रों में स्याही की गंध आती है, महावीरों की नहीं। कैसे महावीर की गंध को पकड़ोगे किताब में?
इसलिए धर्म--हिंदू, ईसाई, जैन--इनको मैं नहीं कहता। धर्म तो कभी-कभी अवतरित होता है--जिसने सत्य को जाना हो, उसके सान्निध्य में; जिसने सत्य को अनुभव किया हो, उसके पास बैठ जाने में, उसकी निकटता में; उसके साथ नाचने में, उसके साथ गाने में, उससे आंखें चार करने में। जहां खोजी की दो आंखें उन आंखों से मिल जाती हैं जिसने खोज लिया, उन चार आंखों के मिलन में कुछ होता है--रहस्यपूर्ण, जादू भरा, इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार! उन चार आंखों

के बीच कुछ घटता है, जिसे पकड़ा नहीं जा सकता, छुआ नहीं जा सकता, देखा नहीं जा सकता; फिर भी अनुभव किया जा सकता है। वह जो घटता है उन आंखों के बीच, उसका नाम धर्म है।
धर्म एक काव्य है--महाकाव्य--जो दो हृदयों की धड़कन के बीच जब जुगलबंदी
हो जाती है, तब घटता है। जब दो व्यक्ति--एक जागा हुआ और एक सोया हुआ--एक लय में आबद्ध हो जाते हैं, उस लय में, उस सुर-ताल में, उस सरगम में धर्म छिपा है।
धर्म सत्संग की अनुभूति है।
चांद-सूरज दिए दो घड़ी के लिए
रोज आते रहे और जाते रहे
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन,
चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
मुख तुम्हारा अंधेरी डगर की शमा रात बढ़ती गई तो हुआ चंद्रमा
याद तुमको किया, रोज हमने जहां आंधियों में वहीं छा गई पूर्णिमा बादलों की झड़ी में जली फुलझड़ी, बिजलियों में कमल मुस्कुराते रहे। दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
बीन तुम प्रीति की झनझनाती हुई तुम हवा मेघ की सनसनाती हुई
हम हवा की लहर प्यार की राह पर दर्द की रागिनी गुनगुनाती हुई दूर तुमने किया, दर्द इतना दिया, हम जहां भी रहे गुनगुनाते रहे। दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे। तुम अछूती जवानी, अमर प्यार हम तुम बिना राख की आग, अंगार हम साथ रहते हुए हम अलग हो गए तुम पहुंच से परे और संसार हम तुम गगन से दीये जगमगाते रहे, हम धरा से दीये झिलमिलाते रहे। दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे। व्योम के तीर उस पार तुम रह गए सिंधु के तीर इस पार हम रह गए बीच में बस गई एक दुनिया नई सृष्टि बहने लगी और हम बह गए तुम खड़े तीर पर तोड़ते हो लहर,
हम लहर पर लहर झनझनाते रहे।
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
इस तुम्हारे-हमारे विरह ने, पिया मजहबों के चलन को जनम दे दिया मस्जिदें रास्ते पर खड़ी हो गईं मंदिरों ने हमारा धरम ले लिया मूर्तियों को दीये हम दिखाते रहे, और धूनी तुम्हारी रमाते रहे।
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
फिर तुम्हें ढूंढने चित्रकारी चली ज्ञान, भाषा, कला की सवारी चली

पर तुम्हारा पता आज तक न चला
तो धरम लड़ गए, चांदमारी चली
जो दया-धर्म सब को सिखाते रहे,
दूसरों पर वही तिलमिलाते रहे।
दो हमारे नयन, दो तुम्हारे नयन,
चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
धर्म प्रेम की पराकाष्ठा है, प्रेम का आत्यंतिक अनुभव। जैसे दो प्रेमी मिलते हैं, और तत्क्षण उनकी आंखों में दीये जल जाते हैं! बुझी-बुझी थीं आंखें अभी-अभी; राख-राख जमी थी अंगारों पर। झड़ गई राख, आंखों में दीये जल गए।
जैसे दो प्रेमी मिलते हैं। तार अभी छिड़े न थे वीणा के। पास आते ही तार छिड़ गए। एक गीत जग गया। जैसे दो प्रेमी मिलते हैं--हाथ में हाथ--और नृत्य शुरू हो गया! वैसा ही नृत्य एक बहुत अपूर्व जगत में घटता है--जहां शिष्य और सदगुरु का मिलन होता है। प्रेमियों का नृत्य उसके सामने बिल्कुल फीका है। प्रेमियों की आंखों में दीये जले, तो अभी जले, अभी बुझे। क्षणभंगुर हैं। सदगुरु की आंखों में देख कर शिष्य के भीतर जो दीये जलते हैं, फिर बुझते नहीं।
तुम गगन से दीये जगमगाते रहे, हम धरा से दीये झिलमिलाते रहे। दो हमारे नयन, दो तुम्हारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
सदगुरु की आंखें तो दूर आकाश में हैं। सदगुरु तो आकाश है; शिष्य पृथ्वी है। शिष्य अभी देह से बंधा है; सदगुरु देह से मुक्त है। शिष्य अभी मन से दबा है; सदगुरु मन का अतिक्रमण कर गया है। दूरी बहुत है; लेकिन प्रेमी सब दूरियों को पार कर लेते हैं। दूरी बहुत है; लेकिन प्रेम दूरी जानता ही नहीं, मानता ही नहीं।
सदगुरु के प्रेम में जो स्वाद आता है, उसका नाम धर्म है।
रामनारायण, तुमने सोचा होगाः धर्म की मैं कोई परिभाषा दूंगा। मैं परिभाषा नहीं दे रहा, इशारे दे रहा हूं, इंगित दे रहा हूं।
इस तुम्हारे-हमारे विरह ने, पियामजहबों के चलन को जनम दे दियामस्जिदें रास्ते पर खड़ी हो गईंमंदिरों ने हमारा धरम ले लिया
यह सदगुरुओं और शिष्यों के बीच जो घटा है, यह तो जीवंत होता है। लेकिन सदगुरु सदा नहीं होते। आज नहीं कल देह का पिंजड़ा पड़ा रह जाता है, और हंस उड़ जाता है। फिर तो याददाश्त रह जाती है। याददाश्त यानी स्मृति की रेत पर खींची गई लकीरें। फिर उन लकीरों में तो सिर्फ पदचिह्न हैं; पद नहीं हैं। फिर उन पदचिह्नों की पूजा चलती है, मंदिर-मस्जिद उठते हैं। कितने मंदिर, कितनी मस्जिद, कितने गिरजे, कितने गुरुद्वारे! और फिर उन मंदिर-मस्जिदों में पूजा और पाठ, पंडित और पुरोहित! फिर एक बड़ा जाल खड़ा होता है, क्रियाकांड खड़ा होता है।
मगर धर्म का जन्म जहां होता है, वह बात और! जिस क्षण बुद्ध के पास सारिपुत्र झुका, वहां था धर्म। जिस क्षण मोहम्मद के पास अली बैठा, वहां था धर्म। जिस क्षण जुन्नैद के चरणों में मंसूर ने सिर रखा, वहां था धर्म। जिस क्षण जीसस ने एक सुबह झील पर मछली मारते हुए एक युवक के कंधे पर हाथ रखा, युवक ने लौट कर देखा, और जीसस ने कहा, कब तक मछलियां मारते रहोगे? मैं आ चुका हूं। मेरे पीछे आओ! कब तक मछलियों पर जाल फेंकते रहोगे? मैं तुम्हें लोगों की आत्माओं को फंसाना सिखाऊं। और उस युवक ने जाल फेंक दिया, और वह जीसस के पीछे हो लिया। उस घड़ी दो आंखें आकाश की और दो आंखें जमीन की मिलीं। उस घड़ी था धर्म! चर्चों में नहीं। वेटिकन में नहीं। पोपों- पादरियों में नहीं।
वे नगर के बाहर पहुंचे ही थे कि एक आदमी ने भाग कर खबर दी उस युवक को कि
तू कहां जा रहा है? तेरे पिता की मृत्यु हो गई! घर वापस चल!
उस युवक ने जीसस से कहा, क्षमा करें। मुझे तीन दिन की आज्ञा दे दें, मैं जाकर पिता का अंतिम संस्कार कर आऊं।
जीसस ने कहा, तू फिक्र छोड़। गांव में मुर्दे बहुत हैं, वे मुर्दे की फिक्र कर लेंगे। तू मेरे पीछे आ। इस रास्ते पर जो चलता है वह पीछे नहीं लौटता है।

और अदभुत रहा होगा वह युवक! ऐसी अदभुतता का नाम ही शिष्यत्व है। उसने
उस आदमी से कहा, क्षमा करना। घर के लोगों को कहना--माफ कर देना। मैं एक नये जादू में बंध गया, एक नये तिलिस्म में। मैं तो जाता हूं। और पिता तो जा ही चुके हैं, देह पड़ी रह गई है; गांव के लोग ही ठिकाने लगा देंगे। इसके पहले कि मेरी देह भी जाए, मुझे उसे खोज लेने दो, जो देह में बसा है और अपरिचित है। वह जीसस के पीछे ही हो लिया। जॉन उसका नाम था। उसका यह अदभुत प्रेम जीसस के प्रति--और क्षण में घटा, अनायास घटा, आकस्मिक! बिना किसी पूर्व-आयोजन के! जीसस ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कुछ बात हो गई। वह कंधे पर हाथ रखना और कुछ बात हो गई। बात की बात हो गई। असली बात हो गई। संस्पर्श हो गया। रोमांचित हो गया होगा जॉन!
फिर तो जॉन शब्द का अर्थ ही हिब्रू भाषा में हो गया--वह जिस पर प्रभु
का प्रसाद है। नहीं तो कहां सदगुरु किसी के कंधे पर हाथ रखने आता! परमात्मा ने पुकारा होगा, इसलिए यह हो सका।
और जॉन का दूसरा प्रतीकात्मक अर्थ हो गया--प्यारा शिष्य। शिष्य थे बहुत जीसस के, उनमें बारह खास थे। उन बारह में भी जॉन सबसे ज्यादा प्यारा था।
तुम जान कर हैरान होओगे, दुनिया की भाषाओं में जॉन शब्द के जितने रूप प्रचलित हैं, उतने किसी दूसरे नाम के नहीं। हजारों लोगों को मैंने संन्यास दिया है। हजारों नामों से मैं परिचित हुआ हूं। जान कर मैं हैरान हुआ कि जितने जॉनों को मैंने संन्यास दिया है, उतना किन्हीं औरों को नहीं। अलग-अलग भाषाओं में--डच में उसका कोई रूप है; जर्मनी में कोई रूप है; फ्रेंच में कोई रूप है; इटैलियन में कोई रूप है--सैकड़ों रूप हैं, लेकिन सबके मूल में धातु जॉन है! जॉन शब्द प्यारा हो गया। उस मछुए का शब्द, उसका नाम सार्वलौकिक हो गया।
शिष्यत्व घटता है तो कंकड़-पत्थर हीरे हो जाते हैं।
मूर्तियों को दीये हम दिखाते रहे,
और धूनी तुम्हारी रमाते रहे।
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन, चार दीपक सदा जगमगाते रहे।
फिर तुम्हें ढूंढने चित्रकारी चली
ज्ञान, भाषा, कला की सवारी चली
पर तुम्हारा पता आज तक न चला
तो धरम लड़ गए, चांदमारी चली
यह कोई ढूंढने का रास्ता नहीं है। न तो भाषा उसे ढूंढ सकती है, न विज्ञान, न दर्शन। उसे खोजने का रास्ता तो प्रेम है।
हां, कभी-कभी संगीत में उसकी झलक आ आती है, क्योंकि संगीत में प्रेम की थोड़ी गंध उठ सकती है। और कभी-कभी काव्य में उसकी भनक पड़ती है, क्योंकि काव्य उसके प्रतिफलन को पकड़ लेता है। और कभी-कभी दो प्रेमियों के पास भी उसकी एकाध किरण उतर आती है, क्योंकि दो प्रेमी भी डूब जाते हैं, एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं।
हां, कभी-कभी प्रकृति के सौंदर्य को देख कर तुम्हें परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव होता है। न होता हो बहुत सचेतन रूप से--आभास होता हो, बहुत फीका-फीका, धुंध से भरा। मगर वह मनुष्य अभागा है, जिसने सुबह सूरज को उगते देखा, और जिसके भीतर कुछ भी न उगा! वह मनुष्य अंधा है, जिसने पूर्णिमा का चांद देखा, और पूर्णिमा के चांद में उसे अपने पूर्ण होने की संभावना का कोई दर्शन न हुआ! वह मनुष्य निश्चित ही बदकिस्मत है, जिसने फूल खिलते देखे और जिसे याद न आया कि मेरा फूल कब खिलेगा!
धर्म इन सबकी याददाश्त है। इन सारे स्मरणों का नाम है। धर्म सुरति है, स्मृति है, पुनः-स्मृति है। इस बात का बोध कि मैं कौन हूं! इस बात का बोध कि यह अस्तित्व क्या है!

दूसरा प्रश्नः एक पुस्तक में आपका चित्र देखते हुए, जिसमें संन्यास-दीक्षा के समय झुके हुए एक शिष्य के गले में आप माला डाल रहे हैं, पास बैठे एक गुरु-भाई ने मजाक में कहा कि ऐसा लगता है जैसे कोई रस्सी से बंधा पालतू पशु!

उनके ऐसा कहने पर कबीर का एक वचन स्मरण आया, जिसमें उन्होंने स्वयं को राम का कुत्ता कहा है, जिसकी जंजीर परमात्मा के हाथ में है।
प्रायः सभी संतों ने स्वयं के परमात्मा के प्रति समर्पण को दास शब्द
से प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त किया है, जो कि उनके लिए समर्पण की पराकाष्ठा है। परंतु आज के मनुष्य के लिए एक निंदनीय शब्द है यह। यह आधुनिक मनुष्य के विकास का द्योतक है या उसके बढ़ते हुए अहंकार का? स्वयं को दास कहने या निंदा करने में भी क्या सूक्ष्म अहंकार नहीं है? आप अपने शिष्यों को भी मित्र कहते रहे हैं।
आज के मनुष्य के लिए समर्पण कठिन क्यों हो गया है?
कुछ कहने की कृपा करें।

अरुण सत्यार्थी! पहली तो बात, मनुष्य जब तक शिष्य न बने, तब तक पशु है; पशु अर्थात पाश में बंधा वासना के। पशु अर्थात कामना की जंजीरों में बंधा; वासना की जंजीरों में बंधा। पशु अर्थात मन की बेड़ियों में जकड़ा। शिष्यत्व इन जंजीरों को तोड़ने की प्रक्रिया है। और ये जंजीरें वही तोड़ सकता है, जिसकी जंजीरें टूट गई हों।
तुम कहते हो कि मेरे पास बैठे एक गुरु-भाई ने मजाक में कहा... ।
मजाक भी मजाक नहीं होता। मजाक के भी अपने गहरे अर्थ होते हैं। मजाक भी अकारण नहीं होता। वे गुरु-भाई अभी नाममात्र के ही गुरु-भाई होंगे। अभी शिष्यत्व उन्हें घटा नहीं है। शायद उनके गले में पड़ी हुई माला उनके लिए बंधन मालूम हो रही होगी। वही बात प्रकारांतर से वे दूसरे के संबंध में कह गए हैं। उनका अचेतन ही बोला है। शायद उन्हें प्रीतिकर नहीं लग रहा है। संन्यासी होने में अड़चन तो है। क्योंकि संन्यास स्वतंत्रता की घोषणा है--समाज से, संस्कार से, संप्रदाय से, शास्त्र से, सिद्धांत से, सबसे स्वतंत्रता की घोषणा है। पूर्व-पक्षपातों से, पूर्व-धारणाओं से, बचपन से अब तक जो तुम्हें सिखाया गया है उस सबसे बगावत है, विद्रोह है। और जिनके बीच तुम रहते हो, वे ऐसी बगावत पसंद नहीं करते। तुम्हारी बगावत उन्हें उनकी दीनता का स्मरण दिलाती है। और उनकी भीड़ है। उनकी भीड़ तुम्हें परेशानी में डालेगी। उनकी भीड़ तुम्हारा मजाक उड़ाएगी। उनकी भीड़ तुमसे कहेगी कि तुम गुलाम हो गए।
एच.जी.वेल्स ने एक कहानी लिखी है। मेक्सिको के एक पहाड़ की तराई में अंधे लोगों की एक बस्ती है। और कहानी ही नहीं है, तथ्य भी है। अब भी वह बस्ती है। कोई पांच-सात सौ लोगों का एक छोटा सा कबीला है, जो बिल्कुल अंधा है। उस पहाड़ी के पास एक मक्खी पाई जाती है, जिसके काटते ही से बच्चे अंधे हो जाते हैं। सब बच्चे आंख वाले पैदा होते हैं, जैसे सारी दुनिया में आंख वाले पैदा होते हैं। लेकिन तीन-चार महीने के भीतर ही बच्चा अंधा हो जाता है। क्योंकि वह मक्खी इतनी तादाद में है कि उससे बचना मुश्किल है। और बचाए भी कौन! सब बड़े भी अंधे हैं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, महीने दो महीने बच्चा बच जाए, यह आकस्मिक है। अंततः तो उसे मक्खी काट लेगी और वह अंधा हो जाएगा।
एच.जी.वेल्स ने कहानी लिखी है इस घाटी के संबंध में कि एक यात्री, एक खोजी, एक पर्यटक उस घाटी में पहुंच गया। मक्खी का असर केवल छह महीने तक के बच्चों पर हो सकता है। उसके बाद मक्खी के काटने से आदमी अंधा नहीं होता। आंखें तब तक इतनी सबल हो जाती हैं।
यह आदमी उस घाटी में पहुंच गया। यह पहला आदमी है, जो बाहर की दुनिया से आया अंधों की दुनिया में। इसे तो भरोसा ही न हुआ कि सात सौ आदमी बिल्कुल अंधे! बच्चों से लेकर ब.ूढों तक सब अंधे! यह रुक गया उस घाटी में। यह सेवा में लग गया उन अंधों की। इससे बड़ा और सेवा का अवसर मिलेगा भी कहां! इन लोगों की पीड़ा देखो। इनकी परेशानी देखो। किस तरह जी रहे हैं! किसी तरह खेती-बाड़ी भी करते हैं। अंधे हैं! किसी तरह फल भी तोड़ते हैं, लकड़ी भी काटते हैं, पानी भी भर कर लाते हैं। बड़ी मुश्किल से जीना है। बड़ा कठिन जीना है। मगर जी रहे हैं।
वह उनकी सेवा में लग गया। लेकिन एक बड़े मजे की बात कि वे अंधे यह मानने
को राजी नहीं थे कि वह आंख वाला है। उनकी सात सौ की संख्या थी। लोकमत के

आधार से भी वे बहुमत में थे। अगर हाथ भी उठवाए जाते, तो सात सौ कहते कि यह भी अंधा है। अंधे ही होते हैं। उन्होंने कभी आंख वाला आदमी न देखा था। मगर यह आंख वाला भी जिद्दी था। आंख वाले अक्सर जिद्दी होते हैं। असली आंख वाले भी जिद्दी होते हैं। तुम चाहे जीसस को सूली पर लटका दो, कोई फिक्र नहीं; मगर वे अंधों को जगाने का काम करते रहते हैं। बुद्ध को तुम पत्थर मारो, गालियां दो, कोई फिक्र नहीं; वे अपने काम में संलग्न रहते हैं। सुकरात को तुम जहर पिला दो... ।
जहर पिलाने के पहले सुकरात से कहा गया था कि अगर तू सत्य बोलना बंद कर
दे, तो माफ किया जा सकता है। उसने कहा, सत्य बोलना मेरा धंधा है। मैं जिंदा रहूं तो सत्य बोलूंगा। अगर सत्य बोलना रुकवाना है तो मृत्यु के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। आखिरी सांस तक सत्य बोलूंगा। इसलिए मुझे मरना स्वीकार है, लेकिन यह सत्य बोलने का धंधा मैं नहीं छोड़ सकता। यह तो मेरा प्राण है, यह तो मेरी आत्मा है। मार कर तो तुम मेरी देह, मेरा शरीर छीन लोगे। लेकिन सत्य बोलना बंद करके तो तुम मेरी आत्मा को मार डालोगे। वह महंगा सौदा है। वह मैं नहीं कर सकता हूं। उतना मैं अंधा नहीं हूं।
आंख वाले जिद्दी होते हैं। एच.जी.वेल्स की इस कहानी में भी वह आंख वाला जिद्दी है। वह मानता ही नहीं। वह उनकी सेवा में लगा ही रहा, लगा ही रहा। आखिर कुछ लोग धीरे-धीरे विश्वास करने लगे कि कुछ तो बात है जो इसमें अलग है। उसका चलना, उठना, बैठना, काम करना, उसकी गति, उसका दौड़ना! जो काम उनसे न हो सकें, वह मिनटों में कर लाए। जिन कुओं से पानी भरने में उनको घंटों लग जाएं, वह मिनटों में भर लाए। जिन जानवरों को ढूंढने में उनको दिन भर लग जाए, वह घड़ी भर में ले आए। उसके पास कुछ तो है। अब उसको आंख कहो या कुछ कहो, मगर यह आदमी हमसे भिन्न है, यह धीरे-धीरे स्वीकृति उन अंधों को भी हो गई।
उनके पास रहते-रहते वह युवक एक अंधी युवती के प्रेम में पड़ गया। उस कबीले की एक युवती के प्रेम में पड़ गया। वह चाहता था कि उससे प्रेम है तो विवाह भी हो जाए। वह उस कबीले का हिस्सा ही हो जाना चाहता था, अंतरंग अंग बन जाना चाहता था। लेकिन गांव की पंचायत बैठी और उसने कहा, हम एक ही शर्त पर विवाह की आज्ञा दे सकते हैं। क्योंकि हमारे कबीले में कभी भी किसी युवती ने किसी आंख वाले से शादी नहीं की। यह हम न होने देंगे।
जैसे कोई हिंदू मुसलमान से शादी न होने दे। कि जैसे कोई मुसलमान हिंदू से शादी न होने दे। जैसे कोई ब्राह्मण किसी शूद्र से शादी न होने दे। कि यह हमारी कुल-परंपरा में कभी नहीं हुआ। यह कैसे हो सकता है कि ब्राह्मण का बेटा और शूद्र की लड़की से शादी करे! असंभव! इससे तो मर जाना अच्छा। चुल्लू भर पानी में डूब मरो।
गांव के लोगों ने कहा, यह हम कभी नहीं कर सकते। यह तो हमारी बड़ी अवमानना हो जाएगी। जो कभी नहीं हुआ, वह कैसे हो सकता है! आंख वाले युवक से हम अपनी युवती की शादी नहीं कर सकते। एक ही उपाय है कि तुम अपनी आंखें फोड़ने को राजी हो जाओ, तो हम आज्ञा देंगे, जरूर आज्ञा देंगे। हमें तुमसे प्रेम है। तुमने हमारी सेवा की है। और तुमने हमारा हृदय जीत लिया है। और तुमने धीरे-धीरे हमें यह भरोसा दिला दिया है कि कुछ तुम्हारे पास है जो हमारे पास नहीं है। लेकिन उसी भरोसे के कारण अब हम यह निश्चित कर लेना चाहते हैं कि तुम ठीक हम जैसे हो--हमारी जाति के हो, हमारे वर्ण के हो। हम जैसे हो, तो ही विवाह हो सकता है।
तुम सोच सकते हो उस युवक की मुसीबत! वह रात ही भाग गया। उसने वह बस्ती छोड़ दी। उसने कहा, यह महंगा सौदा है। और यहां रुकना खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि वह युवती रोएगी, गाएगी। कौन जाने किसी कमजोर क्षण में मैं राजी ही हो जाऊं कि चलो ठीक, मेरी भी आंखें फोड़ दो। या मैं राजी न भी होऊं, ये गांव के लोग ही इकट्ठे होकर मेरी आंखें फोड़ दें।
आंख वालों के ये पुराने अनुभव हैं। अंधों ने उनकी आंखें फोड़ दी हैं!
अरुण सत्यार्थी, तुम जिन गुरु-भाई की बात कर रहे हो, उनको अड़चन मिल रही होगी। समाज से असुविधा मिल रही होगी। माला से उनको आनंद कम, कष्ट ज्यादा हो रहा होगा। मजाक सिर्फ मजाक नहीं। सिग्मंड फ्रायड ने मजाक पर बहुत काम किया है--कि मजाक के पीछे भी सत्य छिपे होते हैं। मजाक भी सत्यों को कहने

का एक ढंग है, खूबसूरत ढंग। उन्होंने जो दूसरे के संबंध में कहा है, वह खुद के संबंध में कहा है, उन्हें याद दिला देना। लौट कर जाओ तो उनसे कह देना कि माला अभी तुम्हारे गले का हार नहीं है। और जब तक माला तुम्हारे गले का हार नहीं है, तब तक कैसा शिष्यत्व? कैसा संन्यास?
अगर उन्हें देख कर ऐसा लगा कि यह तो ऐसा लगता है, जैसे कोई रस्सी से बंधा पालतू पशु, तो शायद उनको अपना संन्यास एक बंधन मालूम हो रहा है--एक असुविधा, एक खतरा। शायद वे पछता रहे हैं संन्यास लेकर। कहीं अचेतन में भाव छिपा हैः अच्छा था कि संन्यास न लिया होता।
सबके जैसे होते, तो गुलाम होते तो भी गुलामी का पता न चलता। सबके जैसे नहीं हैं, स्वतंत्र हैं, तो भी अब अड़चन होगी। और दूसरे लोग मानने को राजी नहीं होंगे कि तुम स्वतंत्र हो। दूसरे तो कहेंगेः गुलाम हो गए। ये क्या गैरिक वस्त्र पहन लिए! यह क्या माला डाल ली! यह क्या नाम बदल लिया! तुम तो गुलाम हो गए। तुम किसी के वशीभूत हो गए। तुम पर किसी का वशीकरण चल गया। तुम किसी से सम्मोहित हो गए। ये सारी बातें उनसे कही गई होंगी। ये सारी बातें उनके व्यंग्य में निकल आई हैं। यह व्यंग्य निर्दोष नहीं है।
अन्यथा संन्यासी ऐसा कह ही नहीं सकता। असंभव! क्योंकि संन्यासी का आंतरिक अनुभव तो परम स्वतंत्रता का है। न हिंदू रहा, न मुसलमान रहा, न जैन रहा, न बौद्ध रहा, न ब्राह्मण रहा, न शूद्र रहा। न भारतीय रहा, न चीनी रहा, न जर्मन रहा, न जापानी रहा। राष्ट्र, वर्ण, धर्म, संप्रदाय, मंदिर-मस्जिद, सब बहुत पीछे छूट गए। सारा आकाश अपना है अब। कुरान भी अपनी, बाइबिल भी अपनी, उपनिषद भी अपने, धम्मपद भी अपना। बुद्ध अपने, नानक अपने, कृष्ण अपने, क्राइस्ट अपने। सारा आकाश अपना। आंगन छूट गया, आकाश अपना हो गया। एक छोटी सी बगिया छूट गई और सारी पृथ्वी की हरियाली अपनी हो गई।
अपने गुरु-भाई को चेताना। कहना जाकरः जाग मछंदर, गोरख आया!
मछंदरनाथ सो गए मालूम होता है। कोई जगाने वाली आवाज चाहिए।
और फिर तुम कहते होः "उनके ऐसा कहने पर कबीर का एक वचन स्मरण आया, जिसमें उन्होंने स्वयं को राम का कुत्ता कहा है।"
उन दोनों की तुलना नहीं हो सकती। कहां कबीर! जब कभी दो व्यक्तियों के वचन तौलो तो पहले व्यक्तियों को तौल लिया करो। क्योंकि असली बात वचन नहीं होते, असली बात व्यक्ति होते हैं। तुम भी ठीक वही वचन बोल सकते हो जो कबीर ने कहा। तुम भी कह सकते हो, मैं राम का कुत्ता। लेकिन उसमें वही अर्थ नहीं हो सकता जो कबीर का था। वह अर्थ तुम कहां से लाओगे! उस अर्थ को लाने के लिए कबीर होना होगा। कबीर ने किस मस्ती से कहा है! किस आनंद से कहा है!
कुत्ते की कुछ खूबियां हैं। कुत्ते से ज्यादा स्वामिभक्त कोई प्राणी नहीं जगत में। आदमी धोखा दे जाएं, कुत्ता धोखा नहीं देता।
तुमने कहानी पढ़ी न महाभारत में! स्वर्गारोहण हुआ पांडवों का। सब गल गए। मित्र, भाई, पति, पत्नी--सब गल गए! अर्जुन भी गल गया! देखते हो, कृष्ण की गीता काम नहीं आई। अर्जुन भी स्वर्ग के रास्ते पर गल गया, स्वर्ग के द्वार तक नहीं पहुंच पाया। कृष्ण की गीता भी इसने ऐसे ऊपर-ऊपर से सुन ली होगी। यह भी इसके प्राणों में रची-पची नहीं। इसने कह तो दिया कि मेरे संदेह दूर हो गए--हुए नहीं होंगे। सिर्फ झंझट छुड़ा ली, कि अब ठीक है, अब ज्यादा बकवास भी कौन करे! अब तुम मानते ही नहीं हो, तो चलो, ठीक है। बेबसी में, असहाय अवस्था में, कृष्ण के तर्कों की प्रखर धार में और चोट में झुक गया होगा।
मगर अंतिम कथा कहती है कि स्वर्गारोहण के समय सब गलने लगे एक के बाद एक। और जब युधिष्ठिर--अकेले युधिष्ठिर--स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे, पीछे लौट कर देखा, तो सिर्फ उनका कुत्ता साथ था! अर्जुन भी गल गया! तो अर्जुन की श्रद्धा भी ऐसी न थी, जैसी कुत्ते की थी। नकुल, सहदेव, भीम--सब गल गए। उनकी भी प्रीति ऐसी न थी, जैसी इस कुत्ते की थी। और युधिष्ठिर ने इस कुत्ते का ठीक सम्मान किया। द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुले। स्वागत में वंदनवार बंधे थे। बैंड-बाजे बजते थे। द्वारपाल ने कहा, प्रवेश करें। भीतर आएं धर्मराज!
लेकिन युधिष्ठिर ने कहा, जब तक मेरा कुत्ता पहले प्रवेश न करे, मैं प्रवेश न कर सकूंगा। मेरे भाई भी रास्ते में गल गए। वे भी इतने दूर मेरा साथ न दे सके। उनका संग-साथ भी थोड़ी दूर तक ही साबित हुआ। यह अकेला कुत्ता

है, जो अंत तक मेरे साथ आया है। यह मेरा बंधु; यह मेरा बांधव; यह मेरा मित्र; यह मेरा सगा; यह मेरा प्यारा। और जब इसने इतने दूर तक साथ दिया है, तो पहले इसका प्रवेश, पीछे मैं।
द्वारपाल मुश्किल में पड़े। उन्होंने कहा, किसी कुत्ते को यहां कभी प्रवेश नहीं मिला!
तो युधिष्ठिर ने कहा, द्वार बंद कर लो। मैं और मेरा कुत्ता द्वार के बाहर ही भले। ऐसे स्वर्ग को लेकर क्या करेंगे, जहां प्रेम की यह अंतिम कड़ी टूट जाए! ऐसे स्वर्ग को लेकर क्या करेंगे, इतनी कीमत पर! नहीं, युधिष्ठिर नहीं प्रविष्ट हुए, जब तक कुत्ता भी प्रवेश न पा सका।
जब कबीर ने कहा कि मैं राम का कुत्ता, तो ऐसे अर्थों में कहा है, जैसे युधिष्ठिर का कुत्ता। सब छूट जाए, मगर राम नहीं छूटेंगे।
स्वीडन में एक स्टेशन पर एक कुत्ते की प्रतिमा बनी है। शायद दुनिया में अकेली प्रतिमा है। पहले महायुद्ध के समय की घटना है। एक आदमी रोज अपने गांव से ट्रेन पर सवार होकर पास के नगर में काम करने जाता था। उसका कुत्ता उसे रोज स्टेशन पहुंचा जाता। और जब तक ट्रेन दिखाई पड़ती रहती, तब तक वह आदमी भी हाथ हिलाता रहता और वह कुत्ता भी पूंछ हिलाता रहता। जब ट्रेन बिल्कुल आंखों से ओझल हो जाती, तब उस कुत्ते की आंखों से लोगों ने आंसू गिरते देखे थे। वह वापस लौट जाता। और ठीक पांच बजे, जब मालिक की ट्रेन आने का वक्त होता, हमेशा, पहले आकर प्लेटफार्म पर खड़ा हो जाता। यह बात इतनी नियमित हो गई थी कि सारे स्टेशन के कर्मचारी इससे अवगत थे। कोई उस कुत्ते को भगाता नहीं था। सबका सम्मान था उसके प्रति।
लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मालिक गया और फिर वापस नहीं आया। शहर में ही हृदय का दौरा पड़ा और वह मर गया। कुत्ता पांच बजे आकर प्लेटफार्म पर खड़ा हो गया। ट्रेन तो आई। उसने एक-एक कमरे में जाकर झांका; आवाज दी। मालिक का कोई पता नहीं।
फिर कुत्ता वहां से नहीं हटा। फिर लाख उसे भगाने की कोशिश की गई। रोए;
हर गाड़ी में झांके। जो गाड़ी आए--झांके! न खाए, न पीए। सातवें दिन मर गया-- वहीं--प्लेटफार्म पर ही! उन सात दिनों में जितनी गाड़ियां आईं, सबमें झांका; सबमें पुकारा; सबमें आवाज दी।
सारा गांव उस कुत्ते से आंदोलित हो गया। न भोजन लिया, न पानी पीया। मालिक ही न रहा, तो अब रहने का उसका कुछ अर्थ न रहा। और उस नासमझ, गरीब कुत्ते की प्रीति को तुम देखते हो! उसके समर्पण को देखते हो! उसकी समग्रता को देखते हो! उसकी आहुति देखते हो! उसकी पूजा का भाव देखते हो! और क्या होगी प्रार्थना? और क्या होगी भक्ति? मर गया वहीं बैठा-बैठा, जहां उसका मालिक उसे आकर मिलता था। तो गांव के लोगों ने चंदा इकट्ठा किया और उसकी प्रतिमा वहां बनाई। वह प्रतिमा अब भी है। वह अकेली प्रतिमा है किसी कुत्ते के लिए समर्पित। आज भी उस गांव के लोग उस प्रतिमा पर फूल चढ़ा जाते हैं।
जब कबीर ने कहा, मैं राम का कुत्ता, तो ऐसे किसी अर्थ में कहा है। बड़े आनंद भाव में कहा है। कहा है कि मेरे भीतर वैसी ही भक्ति हो, जैसे एक कुत्ते की अपने मालिक के प्रति होती है। मिटती ही नहीं। मिटाई ही नहीं जा सकती। वर्षों बाद भी कुत्ते अपने मालिक को पहचान लेते हैं। वर्षों की दूरी भी क्षण भर में मिट जाती है। और कुत्ते अपने मालिक को सच में कभी भूल नहीं पाते। उस अर्थ में कहा है।
और कहा कि जिसकी जंजीर परमात्मा के हाथ में है।
जंजीर शब्द से मत भ्रांति में पड़ जाना। ऐसे तो प्रेम भी जंजीर है।
लेकिन जंजीर कहना ठीक नहीं, फूलों की माला कहो। और ऐसे तो सोने के तुमने जो आभूषण पहन रखे हैं, वे भी जंजीरें हैं। लोहे के नहीं हैं, सोने के हैं; लेकिन जंजीरें हैं। और कभी प्रीति में लोहे की जंजीर भी आभूषण हो जाती है।
प्रेम कीमिया है। प्रेम जिस पत्थर को छू देता है, उसे सोना बना देता है। कबीर का वचन तुम अपने गुरु-भाई के वचन से मत तौलना। उससे तुम्हें याद
आ गई, संयोगवशात, साहचर्य से। मगर कहां कबीर! कहां तुम्हारे गुरु-भाई! कबीर तो आनंदोल्लास में यह कह रहे हैं। कबीर तो धन्यभागी हैं यह कह कर।
तुम्हारे गुरु-भाई यह कह कर धन्यभागी न हो सकेंगे। यह कहने में ही संकोच

होगा कि मैं, और किसी का कुत्ता? वह परमात्मा ही क्यों न हो! राम ही क्यों न हों! मेरे गले में, और किसी की जंजीर? अहंकार बाधा बन जाएगा।
कबीर की उदघोषणा निरहंकारिता की उदघोषणा है। और कबीर ने बहुत रूपों में यह उदघोषणा की है। कबीर कहीं कहते हैंः मैं तो राम की दुल्हनिया!
पति में तो थोड़ी अकड़ होती है, पुरुष का भाव होता है। अब कबीर हैं तो पुरुष, लेकिन कहते हैं--दुल्हनिया। क्योंकि वह जो पुरुष की कठोरता है, परुषता है, वह बाधा है, वह चट्टान है, वह पिघलने नहीं देती तुम्हें। भक्त के पास, शिष्य के पास स्त्रैण हृदय चाहिए। शरीर चाहे पुरुष का हो कि स्त्री का, भेद नहीं पड़ता। स्त्रैण हृदय तो चाहिए ही चाहिए। स्त्रैण हृदय में ही शिष्यत्व संभव है। उसी परिप्रेक्ष्य में, उसी आकाश में शिष्यत्व के बादल घिर सकते हैं, बरसा हो सकती है। तो अपने को दुल्हनिया कहा है। लेकिन अगर फ्रायड और फ्रायड के मानने वालों के हाथ में यह वचन पड़ जाए,
तो वे इसकी दुर्गति कर देंगे। राम की दुल्हनिया! तत्क्षण फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुंच जाएंगे कि इसमें कुछ गड़बड़ है। सेक्सुअल परवर्शन! इसमें कुछ काम-विकृति है। कबीर में किसी न किसी अर्थ में होमो-सेक्सुअलिटी दिखाई पड़ जाएगी फ्रायड को।
वह फ्रायड की ही अपनी प्रतीति है। वह फ्रायड का ही प्रक्षेपण है। फ्रायड हमेशा डरा रहा जिंदगी भर होमो-सेक्सुअलिटी से। और उसने अपनी युवावस्था में अपने एक मित्र को जो पत्र लिखे हैं, वे पत्र खबर देते हैं कि वे पत्र जैसे किसी मित्र को नहीं लिखे गए, किसी प्रेयसी को लिखे गए हैं। उन पत्रों से जाहिर होता है कि समलैंगिकता उसमें गहरी रही होगी। और वह जिंदगी भर डरा रहा, भयभीत रहा। उसके भीतर कहीं न कहीं समलैंगिकता का कुछ न कुछ बीज है, हर कहीं वह यही देख लेता है। हम वही देखते हैं, जो हमारी आंखों में छिपा होता है।
वह तो कबीर बच गए, क्योंकि फ्रायड को पता नहीं कबीर का। मीरा बच गई, फ्रायड को पता नहीं मीरा का। नहीं तो फ्रायड ने मीरा में सब तरह की कामवासना खोज ली होती। क्योंकि वह कहती है कि मैंने सेज बिछाई है। प्यारे तुम कब आओगे? मैंने फूलों से सेज बिछा रखी है। टकटकी लगाए तुम्हारी तरफ देख रही हूं। हे प्रियतम, तुम कब आओगे? फ्रायड तो तत्क्षण निष्कर्ष ले लेता, कि यह कामवासना का उदात्तीकरण है, सब्लिमेशन है। चूंकि यह अपने पति से तृप्त नहीं हो सकी, राणा से तृप्त नहीं हो सकी, वही अतृप्ति अब इसकी काल्पनिक बनी जा रही है! अब यह कल्पना के कृष्ण को अपना पति बना रही है! व्यक्ति वही देख सकता है जो वह है। जब तुम किसी के संबंध में कुछ कहते
हो, तो याद रखना, वह उसके संबंध में कम, तुम्हारे संबंध में ज्यादा सूचक होता है।
लेकिन फ्रायड के विश्लेषण से पश्चिम के संत नहीं बच सके। जैसे थेरेसा नहीं बच सकी। थेरेसा वैसी ही है, जैसे मीरा। मीरा कृष्ण की बात करती है, थेरेसा क्राइस्ट की। थेरेसा कहती है कि तुम रात आते हो; मेरे साथ शय्या पर सोते हो! बस फ्रायड के लिए काफी है। और क्या सामग्री चाहिए खोज-बीन के लिए! तुम रात आते हो; मेरी शय्या पर सोते हो--हो गया मामला खतम!
फ्रायड के चित्त में जो भरा है रुग्ण कामवासना का ज्वर, वह आरोपित हो गया। थेरेसा मानसिक रूप से विकार-ग्रस्त हो गई। सच्चाई उलटी है। थेरेसा स्वस्थ है, फ्रायड मानसिक रूप से विकार-ग्रस्त है। लेकिन यह फ्रायड के संबंध में ही हो, ऐसा नहीं। हम सबके संबंध में है।
कबीर को समझने के लिए कबीर जैसी दृष्टि चाहिए।
तुम पूछते होः "प्रायः संतों ने स्वयं के परमात्मा के प्रति समर्पण
को दास शब्द से अभिव्यक्त किया है।"
आज निश्चित ही यह शब्द बहुत निंदित हो गया। एक पश्चिमी मित्र को मैंने नाम दियाः कृष्णदास। उसने दूसरे दिन ही पत्र लिखा कि कृष्ण तो ठीक है, मगर यह दास मुझे रात भर सोने न दिया। और दास का अर्थ आपने किया--स्लेव, गुलाम। मैंने लोगों से पूछताछ की, तो किसी ने मुझे कहा कि दास का अर्थ सेवक भी हो सकता है, नौकर भी हो सकता है। तो कृष्णदास ने मुझे लिखा कि अगर मैं इसका अर्थ सेवक या नौकर करूं तो आपको कोई एतराज तो नहीं? गुलाम मैं नहीं कर सकता इसका अर्थ। बहुत पीड़ा होती है। मैं किसी का गुलाम!

मैं है, तो पीड़ा होगी। जहां मैं नहीं है, वहां कैसी पीड़ा?
ये संत अपने को दास कह सके, इसलिए नहीं कि ये दास हैं, बल्कि इसलिए कि
अब ये हैं ही नहीं। इनका दास कहना तो सिर्फ अपने न होने की सूचना है, अपने न होने की खबर है। ये मिट गए हैं। अब इनका कुछ होना नहीं है। अब तो ये केवल उसके ही वाहन हो गए हैं। जैसे कोई बांसुरी बजाए, तो बांसुरी का क्या है! बांसुरी तो केवल वाहन मात्र है, वाहक है। गीत तो किसी और का है। अगर बांसुरी से तुम पूछो तो वह क्या कहेगी? वह यही कहेगी कि मैं तो बजाने वाले की दास हूं। मेरा अपना क्या! न गीत मेरे, न स्वर मेरे--सब उसके हैं। मैं तो पोली बांस की पोंगरी मात्र हूं। मेरा तो इतना ही सौभाग्य बहुत है कि उसने मुझे चुना; कि उसने मुझे अपने ओंठों से लगाया; कि उसने मुझे प्राणों से भरा; कि उसने मुझे संजीवनी दी, मुझे संगीत दिया। मुझमें तो कुछ भी न था, सिर्फ पोली थी। उसने मुझे अपूर्व आनंद से भर दिया। यह बांसुरी क्या कहे अगर न कहे कि मैं दास हूं, कि मैं गुलाम हूं!
मगर हमारे पास गुलाम और दास के लिए जो अर्थ हैं, वे राजनैतिक हैं-- धार्मिक नहीं हैं। धार्मिक अर्थ खो गए। हमारे पास जो अर्थ हैं, वे राजनीति ने दिए हैं--दासता, गुलामी। खासकर पश्चिम में तो और भी। और अब तो पश्चिम की शिक्षा सब तरफ फैल गई। अब तो पश्चिम ही है; पूरब कहां! अब तो पूरब केवल एक भौगोलिक बात रह गई। इधर कोशिश कर रहा हूं पूरब को फिर से पुनर्जीवित करने की, तो पूरब के लोग ही नहीं होने दे रहे! यहां पूरब तो सिर्फ भूगोल रह गई। पूरब एक अध्यात्म है; एक जीवन की शैली है--भूगोल नहीं, इतिहास नहीं। पूरब तो एक जीवन-प्रणाली है, एक जीवन-दर्शन है--मिट कर जीने का दर्शन, ना-कुछ होने का दर्शन, शून्य होकर पूर्ण होने का दर्शन, मर कर जीने का दर्शन। भक्तों ने अपने को दास बड़े आनंद में कहा है।
लेकिन यह शब्द आज निंदित हो गया है। शब्दों के भी अच्छे दिन होते, बुरे दिन होते। शब्दों की भी बड़ी यात्राएं होती हैं। कभी जो अच्छे शब्द होते हैं, बुरे हो जाते हैं। समय बदल जाते हैं। घूरों के भी दिन फिरते हैं! कभी जो बुरे शब्द थे, अच्छे हो जाते हैं।
एक सज्जन को मैं जानता था। उनका सरनेम था--वर्मा। एक दिन अचानक मुझसे मिलने आए। उन्होंने कहा, मैंने बदल दिया। वर्मा जमता नहीं। लोग कायस्थों को शूद्र समझते हैं। ऐसे कायस्थ शब्द का अर्थ होना चाहिए शूद्र ही--काया में जो स्थित। इससे ज्यादा और शूद्रता क्या होगी! अगर कायस्थ का ठीक-ठीक अर्थ करो, तो सभी कायस्थ हैं। क्योंकि सभी काया में स्थित हैं। स्वस्थ तो बहुत कम लोग हैं। कायस्थ सभी हैं। स्वस्थ तो वह है, जो स्वयं में स्थित हो। तो मैंने उनसे कहा कि बात तो ठीक ही है। कायस्थ का मतलब ही शूद्र होता है। तो उन्होंने कहा, मैंने तो बदल दिया। मैंने वर्मा से शर्मा कर दिया! मैंने कहा, यह और बुरा किया। उन्होंने कहा, क्यों? शर्मा यानी ब्राह्मण! मैंने कहा, अब इसका यह अर्थ होता है। घूरे के दिन फिर गए। लेकिन शर्मा का पहले अर्थ होता था--महाब्राह्मण। वे बोले, महाब्राह्मण? महाब्राह्मण से आपका क्या मतलब? मैंने कहा, वह एक गाली है। महाब्राह्मण उसको कहते थे जो ब्राह्मणों में सबसे पतित! यह देश तो बहुत अदभुत है! महाब्राह्मण उसको कहते थे जो कोई ब्राह्मण काम करने को राजी न हो, वह करने को राजी हो जाए। उसको महाब्राह्मण! जैसे कोई मर जाता है, तो उसकी यात्रा को कहते हैं महायात्रा! अच्छे-अच्छे शब्द गढ़ने में हम कुशल हैं। वह बेचारा मर गया। यात्रा भी नहीं है अब। उसको कहते हैं--महायात्रा पर निकल गया!
शर्मा बनता है शर्मन से। शर्मन का अर्थ होता है काटना। जो लोग यज्ञ में पशुओं को काटते थे; सभी ब्राह्मण यह काम नहीं कर सकते थे; महाब्राह्मण करते थे यह काम। पशुओं को काटे कौन? जो ब्राह्मण इसके लिए भी राजी हो जाते थे, उनको कहा जाता था--शर्मन। काटने वाले। हत्यारे। बूचर। शर्मा का ठीक-ठीक अर्थ होगा--बूचर। सो मैंने उनसे कहा, तुमने भी गजब किया! वर्मा ही भले थे। और नीचे गिर गए! महाब्राह्मण हो गए अब तुम! अब तुम बूचर! उन्होंने कहा, और तुमने मुसीबत कर दी! मैं बड़ा प्रसन्न हो रहा था। मैंने कार्ड तक छपवा लिए हैं। और अदालत से नाम भी बदलवा लिया है! मैंने कहा, तुम कुछ अब और खोजो! शर्मा तुमने कुछ अच्छा नाम नहीं खोजा। उसके दिन बदल गए। कभी बुरे दिन थे, अब अच्छे दिन आ गए। धीरे-धीरे घिसते-पिसते, घिसते-पिसते, न अब यज्ञ होते

हैं, न यज्ञों में कोई पशु कटते हैं, तो शर्मन की भी पुरानी याददाश्त भूल गई। पांच हजार साल लंबा समय। कहां तक याद रखो!
क्या तुम जानते हो, "नंगे-लुच्चे" सबसे पहले महावीर के लिए प्रयोग किया गया था। क्योंकि वे नग्न रहते थे, सो नंगे। और बालों को लोंच लेते थे, सो लुच्चे। बड़ा प्यारा शब्द रहा होगा; जब पहली दफा उपयोग किया, तो महावीर जैसे व्यक्ति के लिए उपयोग हुआ था--नंगे-लुच्चे! और अब? अब किसको तुम नंगे- लुच्चे कहते हो? अगर किसी जैन मुनि को कह दो, तो भूल जाएगा मुनित्व वगैरह। वहीं गर्दन पकड़ लेगा! वहीं नंगा-लुच्चापन दिखा देगा! यह तो सोच भी नहीं सकेगा "नंगे-लुच्चे" पहले महावीर के लिए उपयोग हुआ था।
बुद्धू पहले बुद्ध के लिए उपयोग हुआ था। ठीक ही लोगों ने कहा था, क्योंकि जब बुद्ध छोड़ कर घर चले गए, तो उन्होंने एक ऐसी हवा की, एक ऐसी हवा पैदा की कि न मालूम कितने लोगों ने घर छोड़ दिया। बुद्ध तो अभिजात कुल से आते थे, राजकुल से, तो उनके मित्र भी अभिजात थे, धनी थे, राजे थे। बुद्ध को घर छोड़ते देख कर, बुद्ध की महिमा और गरिमा देख कर बहुत से राजपुत्रों ने घर छोड़ दिए। लोग झाड़ों के नीचे आंख बंद करके, पालथी मार कर बैठ गए।
उन्होंने कहा, ये देखो! ये बुद्धू देखो! वह एक क्या हो गया, जो देखो वही बुद्धू हो रहा है! घर था भला। परिवार था। पत्नी-बच्चे थे। धन-दौलत थी। मजा करते। बुद्धू होकर झाड़ के नीचे बैठे हो! अब भगाते रहो मच्छड़ जिंदगी भर। उड़ाते रहो मक्खी।
पहली दफा बुद्ध के ही संदर्भ में बुद्धू शब्द पैदा हुआ था। फिर धीरे- धीरे गाली बनता चला गया। अब तो किसी को बुद्धू कहो, तो वह सोच भी नहीं सकता कि इसका बुद्ध से कोई दूर का भी संबंध हो सकता है! सोच ही नहीं सकता कि इसमें बुद्ध से सिर्फ एक मात्रा ज्यादा है! जरा बुद्ध से आगे ही समझो--एक मात्रा ज्यादा! थोड़े और पहुंच गए!
शब्द भी यात्रा करते हैं; लंबी उनकी यात्रा है। कहां से कहां पहुंच जाते हैं, कहना बहुत मुश्किल है! अच्छे शब्द कभी-कभी दुर्दिन देखते हैं; कभी बुरे शब्द सुदिन देख लेते हैं। सब के दिन फिरते हैं। ऐसे ही दास शब्द का दिन फिर गया। कभी वह बड़ा प्यारा शब्द था। भक्तों के लिए बड़ा प्यारा शब्द था। भक्ति की जितनी विधाएं थीं, उसमें एक विधा का नाम था--दास्य। भक्ति के जितने द्वार थे परमात्मा तक पहुंचने के, उनमें एक द्वार था दास्य का। अपने को उसका दास मान लेना। अपने को बिल्कुल मिटा देना--शून्यवत। बस उसका इशारा काफी। उसकी मर्जी सब कुछ।
पूछते हो तुम, अरुण सत्यार्थी, कि "यह आधुनिक मनुष्य के विकास का द्योतक है या उसके बढ़ते हुए अहंकार का?"
आधुनिक मनुष्य यानी कौन? मैं भी आधुनिक हूं; तुम भी आधुनिक हो। और आधुनिक मनुष्य को खोजने चलोगे, तो कहीं पाओगे नहीं। इसलिए ऐसा कोई वक्तव्य नहीं दिया जा सकता है कि आधुनिक मनुष्य विकसित हो गया है या पतित। बुद्ध के समय भी सारे लोग विकसित नहीं थे। अगर सारे लोग विकसित होते,
तो तुम बुद्ध का नाम कभी का भूल गए होते। उनका नाम क्यों याद है? अनूठे रहे होंगे। अद्वितीय रहे होंगे। अतुलनीय रहे होंगे। बेजोड़ रहे होंगे। अगर दस-पचास बुद्ध भी होते, तो बात खतम हो जाती।
और बुद्ध लोगों को क्या समझाते रहे जिंदगी भर बयालीस साल निरंतर? चोरी मत करो। हत्या मत करो। बेईमानी मत करो। धोखा मत दो। लोभ मत करो। पैसे पर मत मरे जाओ। यह सब पड़ा रह जाएगा। परस्त्री-गमन न करो। वेश्यागामी न बनो।
यह किनको समझा रहे थे बुद्ध? अच्छे-भले सज्जन लोगों को, धार्मिक लोगों को! ये बातें सतयुग में समझाने योग्य मालूम होती हैं? तुम्हारे जैसे ही लोग रहे होंगे जिनको समझा रहे थे। शायद तुमसे भी बदतर लोग रहे होंगे। क्योंकि मैं भी बोलता हूं, तुम्हें रोज नहीं समझाता कि चोरी मत करो। सच तो पूछो, तो मैंने तुमसे कभी नहीं कहा कि चोरी मत करो! बुद्ध रोज कहते हैंः चोरी मत करो। चोरों की जमात रही होगी! या बुद्ध पागल--कि अचोर बैठे हैं, और बुद्ध समझा रहे हैं चोरी मत करो।
मैं तुम्हें नहीं कहता--हिंसा मत करो। हत्या मत करो। और बुद्ध रोज कहते हैंः हिंसा मत करो। हत्या मत करो। महावीर रोज कहते हैंः हिंसा मत

करो। हत्या मत करो। जरूर जिन लोगों से कह रहे हैं, हत्या उनका धंधा रहा होगा। हिंसा उनके लिए रोजमर्रा का काम रही होगी!
आदमी तुमसे अच्छा था, ऐसा मैं मानने को राजी नहीं हूं। आदमी के संबंध में कुछ सीधे-सीधे वक्तव्य नहीं दिए जा सकते। कुछ आदमी तब भी अच्छे थे, कुछ आदमी अब भी अच्छे हैं। कुछ आदमी तब भी ऊंचाइयों पर पहुंचे थे; अतिक्रमण किया था; परम बुद्धता को पाया था। कुछ व्यक्ति आज भी परम बुद्धता को पाते हैं।
फिर भी अगर तुम पूछते हो कि कोई सामान्य बात तो कही जा सकती है थोड़ी- बहुत मात्रा में, तो मैं कहूंगाः आज का मनुष्य पहले के मनुष्य से ज्यादा बेहतर हालत में है।
ऐसा कोई पुराना शास्त्र नहीं है, जिसमें युद्धों की निंदा की गई हो।
युद्धों को धर्मयुद्ध कहा गया है! आज दुनिया में कोई ऐसा आदमी नहीं मिल सकता, जिसमें थोड़ा सोच-विचार हो, जो युद्ध को धर्मयुद्ध कह सके। आज युद्ध गर्हित है, घृणित है।
राम और रावण का युद्ध धर्मयुद्ध था। अब यह तय करना मुश्किल है। क्योंकि तय कौन करे? जो जीत जाता है, इतिहासज्ञ उसकी प्रशंसा में गीत लिखते हैं। अगर रावण जीत गया होता, तो क्या तुम सोचते हो, तुम्हारे पास रामायण होती तुलसीदास और वाल्मीकि की? भूल जाओ। अगर रावण जीता होता, तो रामायण तुम्हारे पास नहीं हो सकती थी। और अगर रावण जीता होता, तो तुम्हारे पंडित-पुरोहित-कवि, इन सबने उसकी स्तुति में उसके गीत गाए होते। और तुम्हारे मंदिरों में राम की जगह रावण की प्रतिमा होती। और दशहरे के दिन तुम रावण को नहीं, राम को जलाते।
तुम्हें मेरी बात बहुत चौंकाने वाली लगेगी। लेकिन मेरी भी मजबूरी है। सत्य ऐसा ही है। जो जीत जाता है, उसकी स्तुति करने वाले लोग खड़े हो जाते हैं। जो जीत जाए!
हमारे पास एक बहुमूल्य कहावत हैः सत्यमेव जयते। भारत ने तो उसको अपना राष्ट्रीय प्रतीक बना लिया है--सत्यमेव जयते। सत्य की सदा विजय होती है। ऐसा होना चाहिए। मेरा भी मन ऐसा ही चाहता है कि ऐसा हो कि सत्य की सदा विजय हो। यह हमारी अभीप्सा है, आकांक्षा है। मगर ऐसा होता नहीं। यह तथ्य नहीं है, यह परिकल्पना है। यह उटोपिया है, आदर्श है, तथ्य नहीं। तथ्य तो ठीक उलटा है। तथ्य तो यह है--जिसकी जीत होती है, उसको लोग सत्य कहते हैं। चिकमगलूर में चुनाव के पहले इंदिरा गांधी और उनके विपरीत जो उम्मीदवार खड़ा था वह, सभी शंकराचार्य के दर्शन करने गए। इंदिरा गांधी को भी उन्होंने आशीर्वाद दिया और उनके विरोधी उम्मीदवार को भी आशीर्वाद दिया। किसी पत्रकार ने शंकराचार्य को पूछा कि आपने दोनों को आशीर्वाद दे दिया, यह कैसे हो सकता है? अब जीतेगा कौन? तो उन्होंने कहा, सत्यमेव जयते। जो सत्य है वह जीतेगा।
इतना आसान नहीं मामला। यहां तो जो जीत जाता है, वही सत्य हो जाता है।
जो हार गया, वह असत्य हो जाता है। यहां हारना पाप है; यहां जीतना पुण्य है।
अगर रावण जीता होता, तो तुम्हारे पास कहानियां ही बिल्कुल भिन्न होतीं। उनमें राम की निंदा होती और रावण की प्रशंसा होती। और तुम उन्हीं कहानियों को दोहराते, उन्हीं को सुनते बचपन से। अभी तुम राम की प्रशंसा सुनते हो, रावण की निंदा। उसी को तुम दोहराए चले जाते हो।
अडोल्फ हिटलर अगर जीत जाता, तो क्या तुम सोचते हो, इतिहास ऐसा ही लिखा जाता जैसा लिखा गया? तब अडोल्फ हिटलर इतिहास लिखवाता। तब उसमें दुनिया के सबसे बड़े शत्रु होते चर्चिल, रूजवेल्ट, स्टैलिन। तब अडोल्फ हिटलर दुनिया का बचावनहारा होता--सारी दुनिया का रक्षक; आर्य-धर्म का स्थापक। और उसको प्रशंसा करने वाले लोग सारी दुनिया में मिल जाते। उसकी प्रशंसा करने वाले लोग थे, जब वह जीत रहा था। सुभाष बोस जैसा व्यक्ति भी उससे बहुत प्रभावित था, जब वह जीत रहा था। कौन प्रभावित नहीं था! विजय से लोग प्रभावित होते हैं। और जब वह हार गया, तो सारी कहानी बदल गई। हार गया तो मुकदमे चले--जो लोग बच गए थे, उसके सिपाही, उसके सेनापति। अगर जीत जाता, तो चर्चिल पर मुकदमा चलता, रूजवेल्ट पर मुकदमा चलता, स्टैलिन पर मुकदमा चलता। और मुकदमे तो आदमी के हाथ के खेल हैं; तुम जो चाहो वह सिद्ध करो।

बुद्ध, महावीर, कृष्ण, ये थोड़े से लोग हैं। लेकिन और करोड़ों लोगों का क्या हुआ जिनसे समाज बना था? वे तो कहीं खो गए। वे तो तुम जैसे ही थे। मेरे हिसाब में तुमसे भी गए-बीते थे।
आधुनिक मनुष्य ज्यादा चैतन्य है। आज कोई धर्मयुद्ध नहीं कह सकता किसी युद्ध को। इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कभी। और पिछड़े देशों में अभी भी नहीं की जा सकती।
वियतनाम में युद्ध हुआ, और अमरीका में अमरीकी युवकों ने अमरीकी सरकार
का विरोध किया! जेल गए। आंदोलन किए। जुलूस निकाले। पुलिस की मार खाई। सजाएं भुगतीं। और आखिर मजबूर कर दिया अपनी सरकार को युद्ध वापस खींच लेने के लिए।
तुम सोच सकते हो ऐसी कोई घटना अतीत में? अतीत की तो छोड़ दो, भारत जैसे पिछड़े देश में आज भी अगर ऐसा हो तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। समझ लो कि आज भारत और पाकिस्तान का युद्ध हो, तो भारत में जो व्यक्ति भी कहेगा कि यह युद्ध खतरनाक है, बुरा है, वह गद्दार समझा जाएगा। लेकिन अमरीका में जिन युवकों ने कहा वियतनाम का युद्ध अमानुषिक है, पाशविक है, उनको किसी ने गद्दार नहीं कहा। मुकदमे चले उन पर। उनको सजाएं भी दी गईं कानून से। लेकिन सजाएं देने वालों के मन में भी उनके प्रति सम्मान था कि वे बात तो ठीक ही कह रहे हैं, सच ही कह रहे हैं। कानून है, इसलिए सजा देनी पड़ रही है, मगर बात उनकी सच है। कानून पिछड़ गया है; उनकी बात आगे चली गई है।
आज दुनिया में शांति के लिए जितना प्रेम है, उतना पहले युद्ध के लिए था। दुनिया बेहतर हुई है। पुरानी दुनिया खंडों में विभाजित थी। तुम कल्पना कर सकते हो पुरानी दुनिया में किसी एक सदगुरु के पास सारे धर्मों के लोगों की? असंभव! आज मेरे पास यहूदी हैं, हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, पारसी हैं, सिक्ख हैं। दुनिया का ऐसा कोई धर्म नहीं, जिसका प्रतिनिधि मौजूद न हो। यह तुम कल्पना कर सकते हो पुरानी दुनिया में? असंभव! लोग अपने-अपने कुओं में घिरे थे। कोई अपने कुएं के बाहर नहीं आ सकता था। और अभी भी जो पुराने ढंग से जी रहे हैं, जो इस सदी के हिस्से नहीं हैं, वहां यही हालत है।
एक जैन महिला यहां कुछ दिन पहले आई। बड़ी मुश्किल में पड़ गई। क्योंकि उसने मुझसे पूछा कि ये भोजन बनाने वाले लोग किस-किस जाति के हैं?
मैंने कहा, इनकी कोई जाति नहीं। ये मेरी जाति के हैं। उसने पूछा, आपकी जाति? कोई जाति नहीं। ये सब अजात हैं। कहते हैं उपनिषद कि आत्मा अजात है, उसका कभी जन्म ही नहीं हुआ, तो जाति क्या! ये सब अजात हैं। उसने कहा, जब तक मुझे पक्का न हो जाए कि कौन भोजन बना रहा है... । मैं तो एक नाम ही सुन कर चौंक गई। उसने कहा, मैं गई थी वृंदावन में। और एक महिला का नाम राधा मोहम्मद! तो यह राधा है कि मोहम्मद? यानी है कौन यह? हिंदू है कि मुसलमान? तो मैं तो वहां से हट आई।
वह बेचारी तीन दिन यहां रही, बड़ी मुश्किल में रही। खुद ही अपना भोजन पकाना पड़ा उसको। किसी तरह कच्चा-पक्का पका कर खा-पीकर वह तीन दिन में ही यहां से भाग गई। आई थी तीन महीने रुकने। क्योंकि उसे छोटी-छोटी चीज की चिंता, कि कहीं पानी कोई... कौन भर कर लाया पानी? किसका छुआ है पानी? जिसने छुआ है, वह नहाया-धोया है या नहीं है?
यह कोई पांच सौ साल पहले की बुद्धि। भारत अभी भी आधुनिक नहीं है। अभी
भी यह कई सदियों पुराना है।
आधुनिक मनुष्य--अगर कोई सामान्य वक्तव्य देना ही हो, तो मैं कहूंगा-- पुराने मनुष्य से बहुत विकसित हुआ है। लेकिन दूसरी बात भी याद दिला दूंः यह विकास एकांगी नहीं है। इस विकास में लाभ ही लाभ नहीं हैं, कुछ हानियां भी हुई हैं। अक्सर लोग ऐसा सोचते हैं कि जब विकास होता है, तो लाभ ही लाभ होते हैं। दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं होती, जिसमें लाभ ही लाभ होते हों। लाभ के साथ कुछ हानियां होती हैं। हानियों के साथ कुछ लाभ होते हैं। तुलना जब भी करनी होती है, तो तौलना पड़ता है।
एक हानि जरूर हुई है। जितना मनुष्य चैतन्य हुआ है, जितना मनुष्य ज्यादा बुद्धिमान हुआ है, जितना मनुष्य ज्यादा होश से भरा है, उतना अहंकार भी बढ़ गया है। वह हानि हुई है। वह निश्चित हानि हुई है। अहंकार मजबूत हो

गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने को कुछ समझता है। अकड़ बढ़ी है। यह स्वाभाविक परिणाम है विकास का। इस परिणाम से बचा नहीं जा सकता। लेकिन डरने की कोई जरूरत नहीं है। इस अहंकार को गलाया जा सकता है।
और फिर मेरे देखे तो अहंकार का न होना शुरू से, कोई बहुत अच्छा लक्षण नहीं है। वह बचकानापन है। अहंकार आना चाहिए, और फिर जाना चाहिए, तब पूरा मजा है। अहंकार होना चाहिए, और फिर गलना चाहिए, तब रस है। जिनके पास अहंकार ही नहीं है, वे समर्पण क्या करेंगे? वे राम के कुत्ते नहीं हैं; सिर्फ कुत्ते हैं। जिनके पास अहंकार ही नहीं है, वे समर्पण क्या खाक करेंगे! समर्पण करने के पहले संकल्प करने की क्षमता चाहिए। जिनके पास सिर ही नहीं हैं झुकाने को, वे झुकाएंगे क्या? झुकाने के पहले सिर चाहिए। और जितना ऊंचा उठा हुआ सिर हो, उतनी ही गहरी झुकान होगी। इसलिए मैं अहंकार को मानता हूं कि एक खतरे की तरह बढ़ गया। लेकिन उस खतरे को हम सीढ़ी बना ले सकते हैं। और हर खतरे को सीढ़ी बनाने की कला आनी चाहिए।
जैसे गरीब आदमी छोड़ेगा, तो क्या छोड़ेगा! इसलिए मैं कहता हूं, धनी होओ। बेफिक्री से धनी होओ। जिस दिन धन हो, उस दिन छोड़ने का मजा ले सकोगे। बुद्ध ने लिया मजा छोड़ने का। था, तो लिया मजा। महावीर ने लिया मजा छोड़ने का। था, तो लिया मजा। भिखमंगे छोड़ेंगे तो क्या छोड़ेंगे! उनके पास छोड़ने को क्या है?
ऐसा ही अहंकार है। शिक्षा, समाज--ऐसा होना चाहिए, जो तुम्हें अहंकार
को परिष्कार दे। मगर ऐसा भी होना चाहिए कि परिष्कार के साथ-साथ तुम्हें उसे छोड़ने की क्षमता भी दे। अहंकार पर धार धरना भी आना चाहिए कि तुम्हारे हाथ में तलवार की तरह अहंकार हो। और फिर एक दिन इतनी क्षमता भी होनी चाहिए कि तुम इस तलवार को छोड़ भी सको। तो विनम्रता की रसधार तुम्हें अनुभव होगी। एक निरहंकार भाव है, जिसमें अहंकार अभी पैदा ही नहीं हुआ। वह भोलापन है, ग्रामीणपन है। उसमें खतरा मौजूद है। उसमें अहंकार कभी भी पैदा हो सकता है। उसमें अहंकार पैदा होगा ही--आज नहीं कल; देर नहीं अबेर; इस जन्म में नहीं अगले जन्म में।
लेकिन एक और निरहंकार की अवस्था है--अहंकार के पार। अहंकार पैदा भी हो गया। तुमने उसकी पीड़ा भी देख ली। उसके सुख भी जान लिए। सुख-दुख दोनों को तौल भी लिया। तौल कर पाया कि दुख ही ज्यादा हैं, सुख ना-कुछ हैं। सुख सिर्फ आशा है, दुख अनुभव है। दिलासा तो स्वर्ग का है, मिलता है नर्क। ऐसे अनुभव के बाद, ऐसे परिपक्व अनुभव के बाद तुमने अहंकार को गिरा दिया--बोधपूर्वक, सजगता से, ध्यान से, प्रेम से, भक्ति में, भाव में--तब तुम्हारे भीतर एक निरहंकारिता होगी, जो अपूर्व होगी। तब तुम राम के कुत्ते हो पाओगे--कबीर की तरह। कुत्ता होना तो बहुत आसान है। लेकिन सभी कुत्ते कबीर के कुत्ते थोड़े ही हैं।
कबीर जब कहते हैं कि मैं तो राम का कुत्ता... !
कबीर के पास छोड़ने के लिए था अहंकार। कबीर धार वाले आदमी थे। वह धार उनकी कभी नहीं गई। वह धार सदा रही। जब मरने के दिन करीब आए, तो कबीर खाट से उठ कर बैठ गए और कहा कि मुझे मगहर ले चलो।
मगहर! काशी के पास एक छोटा सा गांव। मगहर के संबंध में यह कहानी प्रचलित है। जैसे काशी के संबंध में, कि काशी में जो करवट लेकर मरता है वह स्वर्ग जाता है। इसलिए लोग काशी-करवट लेने जाते हैं। काशी में तुम्हें तीन ही तरह के लोग मिलेंगेः रांड, भांड और सांड। और काशी जाता ही कौन है! कुछ लोग आए हैं, जो करवट लेने आए हैं। तो सब रांडें इकट्ठी हो गईं। उनको करवट लेना है। कुछ रंडुए भी। और सांड! क्योंकि शिव जी की नगरी। तो सांड को तुम छेड़ नहीं सकते। काशी में जो मजा सांड को है, दुनिया में किसी को नहीं। बीच सड़क पर बैठे हैं! तुम कार का हार्न बजाए जाओ; नहीं हटते। शंकर जी के सांड हैं, कोई साधारण सांड तो नहीं! सांड को तुम मार नहीं सकते काशी में। मैं एक सभा में बोलने जा रहा था काशी विश्वविद्यालय में। और दो सांड बीच में बैठे, और वह गाड़ी चले न वहां से। और मैंने कहा ड्राइवर को कि तू उतर कर इनको भगा। उसने कहा, यह नहीं हो सकता। अगर ये हार्न बजाने से चले जाएं, तो ठीक। नहीं तो झगड़ा खड़ा हो जाएगा। मुहल्ले के लोग आ जाएंगे अभी। सांड काशी में कोई साधारण प्राणी नहीं है! शिव जी का भक्त!

और भांड इकट्ठे हैं। भांड यानी जो किसी की भी प्रशंसा करने में, स्तुति करने में कुशल हैं। जिनको तुम पंडित कहते हो, पुरोहित कहते हो, वे सब भांड।
मगहर के संबंध में उलटी कहानी है कि मगहर में जो मरे, वह मरने के बाद नरक में गधा होता है। एक तो गधा, फिर नरक में!
और कबीर की धार देखते हो! कबीर की तलवार देखते हो! मरते वक्त बूढ़ा कबीर... । जिंदगी भर काशी रहे। लोग जिंदगी भर मगहर रहते हैं; मरते वक्त काशी पहुंच जाते हैं। सांस निकल रही है और लोग... । तुम अगर काशी गए हो, या काशी के आस-पास देखा हो, तुम रोज पाओगे, रिक्शों पर या डोलियों में बिठा कर या इक्कों पर, जिन पर बैठ कर जिंदा आदमी भी थोड़ी देर में मर जाए, उन पर मुर्दों को या करीब-करीब जो मुर्दे हैं, आखिरी सांस चल रही, उनको लोग लिए जा रहे हैं काशी कि आखिरी करवट वहां हो जाए! किसी तरह पहुंच जाएं स्वर्ग तो अच्छा! कबीर उठ कर बैठ गए। और कहा कि मगहर ले चलो। जल्दी करो! मगहर में मरूंगा। शिष्यों ने कहा, आप होश में हैं या सन्निपात में हैं? मगहर से मरने लोग काशी आते हैं। जिंदगी भर काशी रहे, मरने मगहर जाओगे! मगहर में जो मरता है, नरक में गधा होता है। कबीर ने कहा, वह मुझे बरदाश्त है। मगहर में मरूंगा। नरक में गधा होना है तो गधा हो जाऊंगा। काशी में मरे और स्वर्ग गए, काशी का इतना उपकार मैं नहीं ले सकता हूं!
बड़ी धार का आदमी है! कहता है, मगहर में मर कर गधा हो जाएंगे नर्क में,
वह चलेगा। किसी का अनुग्रह तो न लिया। किसी का आभार तो न लिया। अगर स्वर्ग जाऊंगा तो अपने कारण; काशी के कारण नहीं। नर्क के लिए राजी हूं; मगर उधार स्वर्ग के लिए राजी नहीं हूं।
नहीं माने। शिष्यों ने लाख समझाया, मगर वे आदमी मानने वाले तो थे नहीं। वे तो अपनी लकड़ी लेकर खड़े हो गए। पुरानी लकड़ी, जिसके बाबत वे अपने पदों में कई जगह चर्चा करते हैंः कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ। लट्ठ तो हाथ में ही रखते थे। घर जो बारे आपना, चले हमारे साथ। अपनी लकड़ी लेकर खड़े हो गए। शिष्य नहीं माने, तो वे चल ही पड़े। फिर बिठाना पड़ा उनको डोली में। और किसी तरह उनको ले जाना पड़ा। मगहर में ही मरे।
जानदार आदमी थे। शानदार आदमी थे। तलवार पर धार थी। तो फिर विनम्रता
का मजा है। विनम्रता कोई बोथली तलवार का नाम नहीं है--कि जंग खा गई तलवार, आप बड़े विनम्र हैं। कि इतने जूते खाए कि खोपड़ी झुक गई कि अब उठाने की हिम्मत भी न रही, कि कहने लगे कि बड़े विनम्र हैं।
आज के मनुष्य ने पिछले मनुष्य से बहुत गति की है। लेकिन अनेक दिशाओं में गति की है, उसमें कुछ खतरनाक दिशाएं भी हैं। उसकी चेतना भी बढ़ी है। उसका शांति-प्रेम भी बढ़ा है। उसका बंधु-भाव भी बढ़ा है। पृथ्वी एक है, एक परिवार है--ऐसा सदभाव भी पैदा हुआ है। लेकिन साथ ही अहंकार भी बढ़ा है। लेकिन यह अहंकार घबड़ाने की बात नहीं।
इधर मेरा अपना अनुभव यह है कि भारतीय मित्र आते हैं, वे समर्पण करने
को एकदम तैयार ही हैं। उनको समर्पण करने में देर नहीं लगती। मगर उनका समर्पण लचर; उनका समर्पण पोच। क्योंकि संकल्प का बल नहीं है। उनका समर्पण औपचारिक। वे तो किसी के भी पैर छूकर झुकते रहे हैं। वे तो, कोई भी मिल जाए, वहीं पांव छूने को राजी हैं। उनको पांव छूने में कोई अड़चन ही नहीं है। यह तो उनकी जन्मजात प्रक्रिया है, अभ्यास है।
मेरे पास लोग छोटे-छोटे बच्चों को ले आते हैं। वे बच्चे अकड़ रहे हैं
और उनकी मां उनको दबा रही है मेरे पैरों में, कि पैर छुओ! मैं कहता हूं कि वह बच्चे को जब आएगा होश, तो छूना हो तो छुए, न छूना हो तो न छुए। यह जबरदस्ती क्या! लेकिन मां कह रही है कि अभ्यास नहीं करवाएंगे तो वह छुएगा ही नहीं कभी। अभ्यास करवा रही है वह। वह नहीं मानती। वह तो झुका ही देती है सिर। अब यह जबरदस्ती झुकाया गया सिर धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा। झुकना इसकी आदत हो जाएगी। यह कोई विनम्रता न हुई।
जब पश्चिम से कोई आकर झुकता है, जिसको झुकने की आदत ही नहीं है; ठीक उलटी आदत है। जिसको कहा गया है--झुकना मत। पश्चिम का मनोविज्ञान, पश्चिम का शिक्षा-शास्त्र सिखाता हैः अहंकार को परिपुष्ट करो; अहंकार को बल दो; अहंकार को स्वतंत्रता दो; मत झुकना, टूट जाना। पश्चिम से जब कोई आकर झुकता

है, तो उसके झुकने में कीमत होती है। और यह तुम फर्क यहां देख सकते हो। पश्चिम से जो आकर झुका है, वह सच में ही झुक गया है।
जो भारतीय मित्र सिर्फ औपचारिकता से झुक गए हैं, जो कहीं भी झुकते रहे थे--कोई मुक्तानंद, कोई चुकतानंद--जो कहीं भी झुकते रहे थे! जहां कोई घुटमुंडा आदमी दिखाई पड़ा, गेरुआ वस्त्र दिखाई पड़ा, वे झुके। उनसे झुके बिना रहा ही नहीं जाता। कोई मंदिर, कोई मूर्ति... जो गणेश जी तक के सामने झुक गए! जिन्होंने यह भी न सोचा कि यह हाथी की सूंड़! यह कौन ढंग है? जो कहीं भी झुकते रहे हैं, झुकना जिनके लिए एक आदत हो गई है यंत्रवत--वे अगर आकर मेरे सामने भी झुक जाते हैं, तो मैं इसे कुछ मूल्य नहीं देता।
मुझे कठिनाई होती है भारतीय संन्यासी को झुकना सिखाने में--तुम जान
कर हैरान होओगे। मुझे कठिनाई नहीं होती पाश्चात्य संन्यासी को झुकना सिखाने में। क्योंकि वह आसान नहीं है उसका झुकना, लेकिन जब वह झुकता है तो जरूर झुकता है। देर लगती है। समय लगता है। लेकिन जिस दिन झुकता है, उसके झुकने में एक गरिमा होती है।
ऐसी ही आधुनिक मनुष्य की स्थिति है। मैं निराश नहीं हूं। आधुनिक मनुष्य से मुझे बड़ी आशा है। इतनी आशा बुद्ध को अपने समकालीन लोगों से नहीं थी। इतनी आशा महावीर को अपने समकालीन लोगों से नहीं थी। न मोहम्मद को थी, न जीसस को थी। उन सबने भविष्य का दृश्य बहुत अंधकारपूर्ण खींचा है। जीसस तो रोज ही कहते रहते थेः सावधान! आखिरी दिन करीब है। कयामत की रात आने को है। तुम अपनी जिंदगी में इस पृथ्वी को नष्ट होते देखोगे।
जीसस यह लोगों को रोज कहते थे। बड़े उदास रहे होंगे। बड़े हताश रहे होंगे लोगों को देख कर। कयामत इतने करीब जब मालूम होती थी, तो उसका मतलब साफ था कि लोगों के चेहरे उनको कह रहे थे कि अब पाप और ज्यादा नहीं सह सकती यह पृथ्वी। बहुत झेल लिया।
और तुम्हारे सारे बुद्धपुरुष कहते रहे हैंः कलियुग आ रहा है! कलियुग
आ रहा है! कलियुग आ रहा है! जहां सब धर्म नष्ट हो जाएगा।
मैं तुमसे कुछ और कहना चाहता हूं। मैं कहता हूंः सतयुग आ रहा है। कलियुग जाने के करीब है। कलियुग था अतीत में; भविष्य है सतयुग। मैं बहुत आशा से भरा हूं, क्योंकि मनुष्य में मुझे बड़ी चमक दिखाई पड़ती है। उसकी आंखों में बड़ा गौरव दिखाई पड़ता है। माना, उसके साथ-साथ अहंकार खड़ा हुआ है। लेकिन अहंकार तो एक झूठ है, उसे तो कभी भी गिरा सकते हैं। अहंकार कोई सत्य नहीं है, मिथ्या है; उसे तो कभी भी मिटा सकते हैं। इसलिए अरुण सत्यार्थी, उसकी मुझे चिंता नहीं है।
तुमने पूछाः "स्वयं को दास कहने या निंदा करने में भी क्या सूक्ष्म अहंकार नहीं है?"
हो भी सकता है। न भी हो। निर्भर करता है। जब कबीर अपने को दास कहते हैं, कहते हैंः दास कबीरा, तो वहां कोई अहंकार नहीं है। हालांकि बड़ी हिम्मत से कहते हैं वे। उनका दास कबीरा ऐसा नहीं लगता, जैसे कोई पोच, कमर टूटी, झुका हुआ आदमी कह रहा हो। दास कबीरा--वे घोषणा से कहते हैं। डंके की चोट पर कहते हैं। लेकिन अहंकार जरा भी नहीं है। हो ही नहीं सकता। नहीं तो कबीर से जो गंगा बही, वह नहीं बह सकती। कबीर से जो सुगंध उड़ी, वह नहीं उड़ सकती। इसलिए एक तरफ दास भी कहते हैं, मगर घोषणापूर्वक कहते हैं। हिमालय के शिखर पर चढ़ कर चिल्लाते हैं--दास कबीरा!
लेकिन सभी कबीर नहीं हैं। गांव-गांव दास फैले हैं! एक सज्जन तो यहां आते थे, उनका नाम ही दास जी!
मैंने पूछा, जी कैसे जोड़ा? जब दास ही हो, तब इसमें जी और क्या?
नहीं, उन्होंने कहा, मैंने नहीं जोड़ा। दूसरों ने जोड़ दिया।
मैंने कहा, चलो ठीक है। छुड़ा देंगे। संन्यासी हो जाओ। मैं यह जी काट दूंगा। और तुम्हारा नाम रखूंगा--दासानुदास। दासों के भी दास!
वे जो भागे, सो फिर नहीं आए। क्योंकि उनके भी दो-चार भक्त हैं, जो उनको दास जी कहते हैं! फिर उनके एक भक्त ने मुझे खबर दी कि वे नहीं आएंगे। आपकी बात उन्हें बड़ी चोट कर गई। वे तो सोचते थे कि आप उन्हें सम्मान देंगे, स्वीकार करेंगे कि वे भी ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। लेकिन आपने कह दिया

कि यह जी कैसे लगाया! इससे उन्हें बहुत चोट लगी। और फिर आपने कहा कि तुम्हारा राम रखेंगे दासानुदास। इससे तो उन्हें बहुत आघात पहुंचा।
तो ऐसे दास भी हैं, जिनके लिए दास होना भी एक अहंकार ही है, जिनके लिए विनम्रता भी अहंकार का एक नया परिधान है।
मगर यह भिन्न-भिन्न लोगों की बात है। यह तुम्हें एक-एक व्यक्ति को देख
कर निर्णय करना होगा। इसके संबंध में कोई सार्वजनीन वक्तव्य नहीं दिया जा सकता।
और तुमने कहाः "आप अपने शिष्यों को भी मित्र कहते रहे हैं।"
जरूर मैं अपने शिष्यों को मित्र कहता हूं। लेकिन अगर शिष्य मुझे अपना मित्र समझ ले, तो चूक हो जाएगी। मैंने कल तुम्हें याद दिलाया था। बुद्ध शिष्यों से कहते हैं कि तुम मेरे ही जैसे हो। इनमें जो समझदार हैं, उनको छोड़ दो। जो नासमझ हैं, जिनकी संख्या ज्यादा है, वे कहेंगे, अरे! हम तो पहले ही मानते थे कि बुद्ध भी हम जैसे ही हैं। मगर चूक हो गई। बात बिल्कुल बदल गई।
मैं तो जरूर कहता हूं कि तुम मेरे मित्र हो। लेकिन जो समझदार हैं, वे
इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, गुनेंगे, लेकिन यह मान नहीं लेंगे। वे कहेंगे, इसमें भविष्य की तरफ इंगित है, लेकिन अभी यह हमारा तथ्य नहीं।
मैं तुम्हें वैसा देखता हूं, जैसे तुम हो--अपनी परिपूर्णता में। मैं तुम्हें वैसा देखता हूं, जैसे तुम हो--अपने स्वभाव में। मैं तुम्हें देखता हूं वैसा, जैसे तुम होने चाहिए। मैं तुम्हें बीज की तरह नहीं देखता, उस फूल की तरह देखता हूं जो कभी वसंत में खिलेगा। मेरे लिए तुम खिल ही गए हो। मेरे लिए तुम्हारा भविष्य वर्तमान है। इसलिए कहता हूं--मेरे मित्र!
लेकिन अगर तुमने मुझे अपना मित्र समझा, तो तुम चूकोगे। तो तुम भटक जाओगे; तो मेरा वक्तव्य तुम्हारे काम नहीं आया। तो मैंने तुम्हें अमृत दिया, तुमने जहर पीया। लेकिन कसूर मेरा नहीं है, क्योंकि मैं रोज चेताए चलता हूं।
घबड़ाओ मत। यह जो गले में तुम्हारे माला डाल दी है, यह प्रीति का बंधन है, यह मुक्तिदायी है।
बांधो मेरे इन प्राणों को,
रेशम की कड़ियों से बांधो।
जीवन अब पथ का आकर्षण,
यौवन ज्वाला का आलिंगन,
सुधि की पुरवाई में बरबस
पर रुके तुम्हारे द्वार चरण, पथ का हारा मन मांग रहा
गतिमय मुस्कानों के बंधन,
मत इस मंगलमय शोभा को,
आंसू की लड़ियों से बांधो।
रिमझिम से भीग उठा जीवन,
घन के चित्रों से भरे नयन,
रस की प्यासी धरती जलती--भी जाग उठी ले नव-जीवन, अंगारों पर चलने वाला--परदेशी क्षण भर आज रुका, बांधो इस जलते जीवन को,
मधुमय फुलझड़ियों से बांधो।
छूटा मुझसे मधु का सागर,
छूटे पीछे कुंजों के स्वर,
क्षण भर को पर मरु के मग में
लहराए घन, गूंजा अंबर,
मेरे पथ का संगीत बने
जिसकी सुधि प्राणों में घिर-घिर, बांधो मेरे सूनेपन को,
गुंजन की घड़ियों से बांधो।
मरु दिशाहीन, पथहीन विजन, जिसमें रुक-रुक बहता जीवन,

मन की सुनसान दिशाओं के,
बंदी बन जाते शिथिल चरण,
दुर्गम पथ पर चरणों की गति, बन जाए पद पावन बंधन,
बांधो मेरे बिखरे मन को,
कर-कमल पंखुरियों से बांधो। बांधो मेरे इन प्राणों को, रेशम की कड़ियों से बांधो।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
पांचवां प्रवचन

संन्यास का आमन्त्रण

पहला प्रश्नः लूं तो कैसे लूं संन्यास? मन में से ईर्ष्या, अहंकार, क्रोध, कुछ भी तो नहीं निकाल पाती। और आप जो बार-बार रात-दिन स्वप्न में सामने रहते हैं! क्या करूं?

मधुरी! मैं रुका था तेरे प्रश्न का उत्तर देने को; जानता था कि संन्यास होगा ही। अब तेरा संन्यास हो गया है, इसलिए उत्तर देता हूं। प्रश्न तो मधुरी ने पूछा था संन्यास के पूर्व; उत्तर दे रहा हूं संन्यास के बाद। क्योंकि मधुरी कोई अकेली मधुरी तो नहीं। और भी बहुत मधुरियां हैं, जो ऐसी ही दुविधा में, ऐसी ही झिझक, ऐसी ही हिचक में अटकी हैं। न कदम आगे बढ़ाए बढ़ता है, न पीछे लौटने का उपाय है।
पीछे लौटा नहीं जा सकता, क्योंकि सिवाय दुख के वहां और कुछ भी नहीं; गहरी अमावस की रात है। आगे बढ़ने में डर लगता है--अज्ञात का भय, अनजान-अपरिचित मार्ग। पीछे भीड़ है। भीड़ का साथ है। भीड़ की सुरक्षा है। कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई। भीड़ में एक तरह का आश्वासन है कि इतने लोग गलत तो नहीं हो सकते।
संन्यास है अकेले होने की घोषणा। संन्यास है इस बात का उदघोष कि मैं अकेला आया हूं, अकेला हूं, अकेला जाऊंगा। सब संग-साथ झूठ है। माया है। ममता है। मोह है। एक भ्रांति है। मन का एक जाल है।
संन्यास का अर्थ है कि जो संसार मैंने बसा लिया है, वह बस भुलावे के लिए, सांत्वना के लिए। ये जो जिंदगी के चार दिन हैं, इन्हें किसी तरह गुजार लेने के लिए। व्यस्तता के लिए। फिर तो मौत आती है और अकेला कर जाती है। जो मौत करती है, वही संन्यास करता है। मौत जबरदस्ती अकेला करती है, संन्यास तुम्हारी स्वेच्छा से अकेले होने की घोषणा है। इसलिए मौत चूक जाती है, क्योंकि जबरदस्ती किसी को बदला नहीं जा सकता। बदलाहट स्वांतः सुखाय होती है, स्वेच्छा से होती है, स्वस्फूर्त होती है। बदलाहट स्वतंत्रता का फूल है। मौत जबरदस्ती करती है। और जितनी जबरदस्ती करती है, उतने ही तुम जोर से अपने माया-मोह को, अपनी देह को, अपने मन को पकड़ लेते हो--कस कर पकड़ लेते हो। इधर आती है मौत, उतनी ही तुम्हारी आसक्ति बढ़ जाती है। तुम किनारे को
और जोर से पकड़ लेते हो कि कहीं तूफान तुम्हें छीन ही न ले जाए। क्योंकि दूसरा किनारा तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। वह तो केवल उन्हें दिखाई पड़ता है, जो तूफान को अवसर मानते हैं; जो तूफान में स्वेच्छा से उतर जाते हैं; जो तूफान की प्रतीक्षा करते हैं; जो अपनी नाव का पाल खोले बैठे हैं कि कब आए तूफान और कब हम यात्रा पर निकल जाएं।
दूसरा किनारा तो उन साहसी आंखों को दिखाई पड़ता है। दुस्साहस चाहिए,
तो ही दूसरा किनारा दिखाई पड़ता है। संन्यास दुस्साहस है। जो मौत नहीं कर पाती, वह संन्यास करता है।
मधुरी, तूने पूछा थाः "लूं तो कैसे लूं संन्यास?"
प्रत्येक व्यक्ति जो संन्यास लेने के लिए आतुरता से भरता है, इस सवाल
से पीड़ित होता हैः "लूं तो कैसे लूं संन्यास?"
कौन सी अड़चनें हैं? कौन सी बाधाएं हैं? क्या है तुम्हारे पास खोने को? क्या पाया है, जो खो जाएगा? हाथ खाली हैं या कि राख से भरे हैं--जो कि खाली होने से भी बदतर है। तुम्हारे भीतर कौन सा संगीत है, जिसके छूट जाने की पीड़ा होगी? कांटे ही कांटे हैं। शोरगुल जरूर है--संगीत कहां! कांटे बहुत हैं; फूल तो एक भी न खिला। चाहे तो थे फूल; लगे कांटे। चाहा तो था उत्सव; मिला विषाद। तुम्हारे पास खोने को क्या है? यह तट खो भी जाएगा तो क्या खो जाएगा? क्यों इस तट पर नाव को बांधे बैठे हो?
मगर नहीं। आदमी का मन ऐसा है कि परिचित दुखों से भी एक नाता बना लेता है। जानी-मानी चिंताएं भी अच्छी लगती हैं। जाने-माने दुश्मनों से भी एक

दोस्ती होती है। अगर दुश्मन मर जाए, तो तुम्हारी जिंदगी में कुछ जगह खाली हो जाती है।
मैंने सुना है कि जिस दिन महात्मा गांधी को गोली लगी और जिन्ना को खबर
दी गई कि गांधी मर गए, जिन्ना अपनी बगिया में बैठा था कराची में। जिसने खबर दी थी, सोचा था कि जिन्ना प्रसन्न होगा। जीवन भर का शत्रु मर गया। जिसको मुसलमान न मार पाए, उसको हिंदुओं ने मार दिया। ऐसी ही उलटी दुनिया है! यहां पराए तो पराए हैं ही, अपने और भी ज्यादा पराए हैं। यहां दूर तो दूर हैं ही, जो पास हैं उनकी दूरी का तुम्हें अंदाज नहीं!
लेकिन खबर देनेवाले को अपनी गलती एहसास हुई। जिन्ना एकदम उदास हो गया। उठा बगिया से, भवन के भीतर चला गया। जिसने खबर दी थी, वह पीछे-पीछे गया। उसने कहा, मैं तो सोचता था, आप प्रसन्न होंगे। जीवन भर का शत्रु मिटा! लेकिन तुम्हें पता है, जिन्ना ने क्या कहा? गांधी के मरने के साथ मेरे भीतर कुछ मर गया। वह शत्रुता पुरानी थी; वह नाता गहरा था। मैं अब वही नहीं हूं जो गांधी के रहते हुए था। और जिन्ना वही नहीं रहा। गांधी की मौत ने कुछ जिन्ना के भीतर मार दिया।
यह बड़ा मनोवैज्ञानिक तथ्य है। तुम जिनसे लड़ते हो, उनसे भी तुम्हारे लगाव बन जाते हैं। तुम्हारे दुख भी तुम्हारे संगी-साथी हैं। उनके बिना तुम्हें बेचैनी होगी। जो बहुत दिन बीमार रह जाता है, वह बीमारी को भी पकड़ता है।
मनोवैज्ञानिक आज इस सत्य की वैज्ञानिक प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं कि जो लोग ज्यादा दिन बीमार रह जाते हैं; हो सकता है बीमारी शारीरिक रूप से शुरू हुई हो, लेकिन शरीर तो कभी का ठीक हो गया हो, लेकिन उनके मन ने बीमारी को पकड़ लिया है। अब वे बीमारी को छोड़ नहीं सकते। बीमारी उनका न्यस्त स्वार्थ बन गई। अब बीमारी के कुछ लाभ हैं, जो वे ले रहे हैं।
बीमार हो, तो सहानुभूति मिलती है। बीमार हो, तो असफल हो जाओ तो कोई यह नहीं कह सकता कि तुम असफल हुए। तुम करते भी क्या, बीमार थे! बीमारी में तुम अगर धन न कमा पाओ, प्रतिष्ठित न हो पाओ, यश न पा सको, तो तुम कह सकते हो-- सुरक्षा का एक उपाय है--कि करूं क्या, मैं बीमार हूं! तुम्हारे पास एक छाता है, जो तुम ओढ़ ले सकते हो। जो सब तरह से तुम्हारी सुरक्षा करेगा।
परीक्षा के वक्त अक्सर विद्यार्थी बीमार हो जाते हैं। जान कर नहीं; किसी गहरे अचेतन से बीमारी उठती है। मैं ऐसे विद्यार्थियों को जानता हूं, जो हर साल सिर्फ परीक्षा के समय ही बीमार होते हैं! इधर परीक्षा आई कि उधर बीमारी आई। जैसे-जैसे परीक्षा करीब आई, वैसे-वैसे बीमारी बढ़ती है। और बीमारी में सब लक्षण होते हैं शरीर के। लेकिन शरीर की नहीं होती। मन डरा है परीक्षा से। बीमारी में एक रक्षा है। अगर असफल हुए, तो उत्तरदायित्व बीमारी का है। अगर सफल हुए, तब तो कहना ही क्या! अहंकार को चार चांद लग जाएंगे--बीमार थे और सफल हुए!
मधुरी, क्या है छोड़ने को? हाथ खाली हैं!
संन्यास, लोग सोचते रहे हैं सदियों से, कि त्याग का नाम है। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम्हारे पास है क्या त्याग को? किन नासमझों ने तुम्हें समझाया है कि संन्यास त्याग है! संसार होगा त्याग; संन्यास त्याग नहीं है। संसारी ने बहुत त्यागा है, परमात्मा को त्यागा है, और क्या त्यागोगे? अमृत को त्यागा है और जहर को पीया है। सार्थक को त्यागा है और व्यर्थ के अंबार लगा लिए हैं। असली धन, ध्यान को त्यागा है। और ठीकरे, चांदी के ठीकरे--अब तो चांदी के ठीकरे भी नहीं हैं, कागज के सड़े-गले नोट--उनको इकट्ठा कर रहा है। और फिर भी तुम कहे चले जाते हो कि संन्यासी त्यागी है और संसारी भोगी है! बदलो भाषा। कहना शुरू करो कि संसारी त्यागी है, संन्यासी भोगी है। क्योंकि संन्यासी परमात्मा को भोगने चला। उस परम रस को पीने चला। छोड़ रहा है कूड़ा-करकट; हीरे-जवाहरात बीनने चला। और जो कूड़ा-करकट छाती से लगाए बैठे हैं, उनको तुम कहते हो भोगी। थोड़ी दया तो करो! ऐसे ही वे बहुत दुख पा रहे हैं और गालियां तो न दो!
संन्यासी ऐसे ही बहुत आनंद पा रहा है और तुम फूलमालाएं लेकर चले कि महात्यागी! मैं भाषा को बदलना चाहता हूं। क्योंकि भाषा सिर्फ भाषा नहीं

होती, तुम्हारे भावों की अभिव्यक्ति होती है। मुझे कहने दो कि संन्यासी भोगी है--परम भोगी है। संसारी त्यागी है--महात्यागी है।
मधुरी, कुछ छोड़ने को नहीं, कुछ त्यागने को नहीं। सब कुछ पाने को है। कार्ल मार्क्स ने अपनी अदभुत किताब, जिससे कम्युनिज्म का जन्म हुआ, कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में अंतिम जो कड़ी लिखी है, वह कम्युनिज्म के संबंध में तो सही नहीं है, लेकिन धर्म के संबंध में जरूर सही है। वह कड़ी होनी चाहिए थी गीता में; वह कड़ी होनी चाहिए थी कुरान में। नहीं है। आश्चर्य! वह कड़ी है कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में। है, यह भी आश्चर्य! वहां नहीं होनी थी। कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का अंतिम वक्तव्य है कि हे दुनिया के सर्वहाराओ! इकट्ठे हो जाओ! तुम्हारे पास खोने को क्या है सिवाय जंजीरों के? और पाने को? पाने को सब कुछ है!
मार्क्स मजदूर को सर्वहारा कहता था। मैं संसारी को सर्वहारा कहता हूं। मजदूर के पास भी कुछ होता है; एकदम सर्वहारा नहीं होता। नहीं होंगे स्वर्णपात्र, मिट्टी के सही; मगर कुछ तो होता है। मजदूर सर्वहारा नहीं है। असली सर्वहारा तो संसारी है। उसे लगता है बहुत कुछ मेरे पास; और है कुछ भी नहीं। सपने हैं हाथों में। आंख खुलेगी, बहुत चौंकेगा, बहुत तड़फेगा--कि किस धन को मैं धन मानता रहा! असली सर्वहारा संसारी है।
और क्या है तुम्हारे पास खोने को सिवाय जंजीरों के? और जंजीरें भी भद्दी और बेहूदी! जंजीरें भी सुंदर नहीं; सोने की नहीं। जंजीरें भी दुख की, पीड़ा की, संताप की, विषाद की! और पाने को? पाने को सब कुछ पड़ा है--सारा अस्तित्व; परमात्मा का सारा राज्य; परमात्मा का यह सारा महोत्सव; ये चांद-तारे, ये सूरज, ये नदी, ये पहाड़, ये रेगिस्तान--इनका सन्नाटा, इनका शून्य, इनका मौन, इनकी शांति, इनका आनंद; ये फूल, ये वर्षा की बूंदों का संगीत, ये आकाश में घिरे मेघ, यह सब तुम्हारा है। तुम्हारा इस अर्थों में नहीं कि तुम इसे तिजोड़ी में बंद कर सकते हो। चांद-तारे तिजोड़ियों में बंद नहीं किए जाते। तुम्हारा इस अर्थ में नहीं कि फूलों पर तुम ताले डाल दोगे। फूलों पर ताले नहीं डाले जाते। तुम्हारा इस अर्थ में कि तुम इस रस को पी सकते हो। तुम इसमें डुबकी मार सकते हो। तुम्हारा इस अर्थ में कि तुम सहभागी हो सकते हो; कि तुम भी इस लय में आबद्ध हो सकते हो। इसलिए तुम्हारा कि तुम भी पैरों में घुंघरू बांधो और इस महारास में सम्मिलित हो जाओ। तुम भी उठाओ बांसुरी। तुम भी थाप दो अपनी मृदंग पर। तुम भी बनो मीरा। तुम भी बनो चैतन्य। तुम्हारा इस अर्थ में कि तुम भी बनो बुद्ध, तो हिमालय तुम्हारे प्राणों में समा जाए। तुम्हारा इस अर्थ में कि तुम भी बनो महावीर, तो चांद-तारे तुम्हारे भीतर भ्रमण करें।
मालकियत नहीं है तुम्हारी इस पर। लेकिन तुम इसे भोग सकते हो। सच तो यह है, मालकियत हो तो भोगना मुश्किल हो जाता है। मालकियत कंजूसी लाती है। मालकियत में कंजूसी अनिवार्य हो जाती है। जहां मालकियत है, परिग्रह है, वहां डर पैदा होता है--कहीं खर्च न हो जाए। क्योंकि जितना खर्च हो जाएगा, उतनी मालकियत कम हो जाएगी। मालकियत धन पर निर्भर है। और धन उतना ही होगा जितने तुम कृपण हो।
मैंने सुना है, एक कंजूस दुकान बंद करके घर आया। तब बिजली की बत्तियां
तो थीं नहीं। उन दिनों मिट्टी के दीये जला करते थे। उसने देखा कि दीपक की लौ बड़ी भड़क रही है। वह पत्नी से बोला, देखती नहीं हो कि दीपक की लौ कितनी तेज भड़क रही है! न जाने कितना तेल व्यर्थ में जल गया होगा! तभी उसे याद आया कि दुकान में उसने एक ही ताला लगाया था; दूसरा ताला तो लगाया ही नहीं। कहीं सब कुछ लुट न जाए! हड़बड़ी में उसने सोचा कि पहले दुकान पर दूसरा ताला लगा आऊं। चल पड़ा। भागा।
रास्ते में जाकर उसके मन में विचार आया कि ऐसी कौन सी आफत आई जाती थी! दुकान पर एक ताला तो लगा ही हुआ है। दूसरा बाद में भी लगाया जा सकता है। पहले दीपक की लौ तो कम कर आऊं, वरना इस बीच कितना सारा तेल व्यर्थ ही जल जाएगा!
यह सोच कर वह फिर घर लौट आया। देखा कि दीपक की लौ अब कम है। पत्नी बोली, मैंने इस दीपक की लौ सुई की नोक से कम कर दी थी। सुई में जो तेल लग गया था, वह मैंने बालों में लगा लिया। आप चिंता न करें। आपको तेल का ध्यान तो आ

गया, मगर अपने जूते का ध्यान नहीं आया! आप यहां से गए भी, फिर बीच रास्ते से लौट भी आए। अब यहां से फिर दुकान को ताला लगाने जाएंगे, वहां से फिर घर लौटेंगे। क्या इस तरह जूते व्यर्थ ही नहीं घिस जाएंगे?
वह कंजूस बोला, नहीं भागवान! यह देख, जूता मैं पैर में कभी पहनता नहीं। बगल के झोले में रखा हुआ है!
जहां परिग्रह है, वहां कृपणता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने नगर के सबसे बड़े धनपति से जाकर पूछा कि एक राज पूछना चाहता हूं। और तो यह राज कोई बता न सकेगा। तुम ही बता सकते हो। इतने धनी तुम कैसे हुए? क्योंकि मैंने तो सुना है कि तुमने भीख मांगने से शुरू किया था।
उस धनी ने कहा, एक क्षण ठहर। पास में जलती हुई मोमबत्ती को बुझा दिया
और कहा, अब बोल। क्योंकि हम नाहक बातचीत करें, इतनी देर में न मालूम कितनी मोमबत्ती जल जाए!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अब कुछ कहने की जरूरत नहीं। मैं राज समझ गया। मोमबत्ती क्या फूंकी कि तुमने सब कह दिया। धन्यवाद!
धन तो कृपणता से इकट्ठा होगा। धनी भोग नहीं सकता। परिग्रही भोग नहीं सकता। भोगने के लिए एक अपरिग्रह-भाव चाहिए। सिर्फ संन्यासी ही भोग सकता है।
इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम संन्यासी हो जाओगे तो इस अस्तित्व के मालिक हो जाओगे। मालकियत का भाव ही चला जाएगा। मालकियत मूढ़ता की बात है। संन्यास धीरे-धीरे तुम्हें यह दिखलाएगा कि तुम तो हो ही नहीं, परमात्मा ही है। मैं तो हूं ही नहीं, तो मालकियत किसकी? परिग्रह किसका? और तुम मिटे कि सब तुम्हारा है। मगर ध्यान रखना, तुम मिटे--तो सब तुम्हारा है। इधर तुम गए कि सारा अस्तित्व आ गया।
मधुरी, संन्यास लेने में क्या भय है? लेकिन तूने जो कारण दिए हैं, वे विचारणीय हैं।
"मन में से ईर्ष्या, अहंकार, क्रोध, कुछ भी तो नहीं निकाल पाती।"
ईर्ष्या, अहंकार, क्रोध, ये बीमारियां हैं। संन्यास इनकी ही तो औषधि है। क्या औषधि लेने के पहले बीमारियां निकल जानी आवश्यक शर्त है? अगर औषधि लेने के पहले बीमारी से मुक्त हो जाना आवश्यक शर्त हो, तो औषधि का प्रयोजन क्या है? अगर कोई चिकित्सक कहे कि जब ठीक हो जाओ तब आना। अभी बीमार हो, पहले ठीक तो हो लो, फिर आना। तो क्या तुम उसे चिकित्सक कहोगे?
बुद्ध ने अपने को वैद्य कहा है। नानक ने भी अपने को वैद्य कहा है। और ठीक कहा है। क्योंकि बुद्ध या नानक जैसे व्यक्ति के पास औषधि है, उपचार है, निदान है। वे यह शर्त नहीं लगा सकते कि पहले तुम ठीक होकर आओ।
तो मधुरी, मैं तुझसे नहीं कहूंगा कि पहले ईर्ष्या छोड़, फिर संन्यास।
तब तो मुश्किल हो जाएगी। न छूटेगी ईर्ष्या, न होगा संन्यास। कि पहले अहंकार छोड़, फिर संन्यास। तब तो असंभावना हो जाएगी। अगर अहंकार संन्यास के बिना ही छूट सकता है, तो संन्यास की क्या अर्थवत्ता होगी? कि पहले छोड़ क्रोध, फिर संन्यास। तो बचा क्या फिर! फिर संन्यास क्या करेगा?
यह तो ऐसे ही हुआ कि किसी से हम कहें, पहले अंधेरे को मिटाओ, फिर दीया जलेगा! यह तो बात ही मूढ़ता की हो गई। ऐसे कहीं अंधेरा हटा है? मारो धक्के लाख! तुम्हीं मिट जाओगे धक्के मारते-मारते; अंधेरा नहीं मिटेगा। अंधेरा तो नकार है, निषेध है, अभाव है। अभाव को धक्के नहीं मारे जा सकते। और जो मारेगा, वह पागल हो जाएगा। और अगर पृथ्वी को तथाकथित धार्मिक लोगों ने विक्षिप्त कर दिया है, तो अकारण नहीं। यही राज है।
सारी पृथ्वी को एक पागलखाना बना दिया है तुम्हारे तथाकथित धार्मिक पंडित-पुरोहित, संत-महात्माओं ने। क्योंकि उन्होंने तुम्हें एक ऐसा पाठ सिखाया है, जो पूरा हो ही नहीं सकता। उन्होंने तुम्हें एक ऐसी पहेली दे दी है कि तुम मर जाओ, लाख बार जन्मो और लाख बार मरो, तुमसे पहेली हल नहीं होगी।
क्योंकि पहेली के हल होने का वह ढंग ही नहीं है। उन्होंने तुमसे कहा, पहले अंधेरा मिटाओ, फिर संन्यास।
मैं तुमसे कहता हूं, पहले दीया जलाओ, फिर अंधेरा तो मिट ही गया।

दीया जलाने का विज्ञान है संन्यास, अंधेरा मिटाने का नहीं। अंधेरे से क्या लेना-देना है! दीये का अंधेरे से मिलना ही कब हुआ! रोशनी और अंधेरे का अब तक साक्षात्कार नहीं हुआ है।
मैंने सुना है, एक बार अंधेरे ने परमात्मा से प्रार्थना की कि तुम्हारा सूरज मेरे पीछे क्यों पड़ा है? रोज सुबह उठ आता है! मैं रात विश्राम भी नहीं कर पाता कि बस चला मेरे पीछे! मैंने इसका कुछ कभी बिगाड़ा नहीं। याद भी नहीं आता कि कभी इससे मेरी किसी तरह की भी वार्ता हुई हो, मुलाकात हुई हो। दुश्मनी तो दूर, दोस्ती भी कभी नहीं हुई! दोस्ती-दुश्मनी की बात ही नहीं उठती, मेरा आमना-सामना नहीं हुआ, आंखें चार नहीं हुईं। यह अन्याय हो रहा है!
बात तो सही थी, तर्कयुक्त थी। और परमात्मा को सूरज को बुलाना पड़ा कि क्यों तू बेचारे अंधेरे के पीछे पड़ा है?
सूरज ने जो कहा, वह भी विचारणीय है; बहुत विचारणीय है, खूब हृदय में सम्हाल कर रख लेने जैसा है। सूरज ने कहा, कौन अंधेरा? कैसा अंधेरा? कहां है अंधेरा? मैंने तो देखा नहीं। जिसे मैं जानता ही नहीं, उसके पीछे क्यों पडूंगा! जिसे पहचानता ही नहीं, उसे सताऊंगा क्यों! आप कृपा करके इतना करें, अंधेरे को मेरे सामने बुला दें, ताकि मैं उसे देख तो लूं!
इस बात को हुए सदियां हो चुकीं। परमात्मा अब तक अंधेरे को सूरज के सामने नहीं ला सका है। कहते हैं परमात्मा सर्वशक्तिमान है। इस संबंध में नहीं। इस संबंध में परमात्मा हार गया।
अंधेरे को कैसे लाओगे सूरज के सामने? और अंधेरा अगर सूरज के सामने आ जाएगा, तो क्या सूरज खाक सूरज रहा! नपुंसक सूरज होगा। तस्वीर होगी सूरज की, सूरज नहीं होगा।
सूरज है तो अंधेरा नहीं हो सकता। हां, अंधेरा कितना ही हो, तो सूरज हो सकता है। अंधेरा सूरज को होने से नहीं रोक सकता। सूरज की तो बात छोड़ो, एक छोटे से मिट्टी के दीये को नहीं रोक सकता अंधेरा। अंधेरा तो बिल्कुल नपुंसक है। वह तो पूर्ण नपुंसकता है; नकार है, अभाव है; उसका होना ही नहीं है। उसका कोई अस्तित्व नहीं है।
और ऐसा ही है अहंकार। अहंकार यानी भीतर का अंधेरा। और ऐसी ही है ईर्ष्या। ईर्ष्या अहंकार का ही एक प्रक्षेपण है। और ऐसा ही है क्रोध। वह भी अहंकार का एक अंग है।
ईर्ष्या और क्रोध में बहुत भेद नहीं है। क्रोध है सक्रिय ईर्ष्या; ईर्ष्या है निष्क्रिय क्रोध। पुरुष क्रोध कर लेते हैं; स्त्रियां ईर्ष्या कर लेती हैं। पुरुष का मौलिक लक्षण है क्रोध; आगबबूला हो जाना; ईर्ष्या उसके लिए क्रोध के रूप में आती है। स्त्री का मौलिक लक्षण है ईर्ष्या। जल-भुन जाती है भीतर-भीतर; ऊपर चाहे कहे, चाहे न कहे। घुट-घुट जाती है भीतर-भीतर। ईर्ष्या स्त्रैण रूप है क्रोध का और क्रोध पौरुषिक रूप है ईर्ष्या का। और दोनों अहंकार के कारण पैदा होते हैं।
क्यों ईर्ष्या पैदा होती है? क्योंकि कोई तुमसे आगे निकला जा रहा है। किसी ने तुमसे अच्छी साड़ी खरीद ली, कि किसी ने तुमसे सुंदर गहने खरीद लिए, कि किसी ने नया मकान बना लिया, कि किसी की तिजोड़ी में ज्यादा रुपये इकट्ठे हो गए। ईर्ष्या जनमी, क्योंकि अहंकार को चोट लगी। तुम्हारे भीतर आग भभकने लगी, धुआं उठने लगा। तुम चिता पर चढ़ गए। तुम्हारे भीतर चिंता पैदा हो गई। क्रोध का अर्थ हैः तुम्हारे अहंकार के लिए किसी ने बाधा दे दी। तुम किसी यात्रा पर निकले थे विजय की और कोई बीच में आड़े आ गया, कि किसी के कारण बीच में पत्थर पड़ गया, कि किसी ने तुम्हें धक्का मार कर रास्ते से अलग कर दिया, कि कोई पगडंडी में बीच में बाधा बन कर खड़ा हो गया, अवरोध हो गया।
क्रोध भभकेगा।
क्रोध और ईर्ष्या बहुत भिन्न नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्रोध थोड़ा उजड्ड है; ईर्ष्या थोड़ी सुसंस्कृत है।
मैंने सुना है, राजस्थान की कहानी है, एक राजस्थानी राजपूत बड़ी अकड़ का आदमी था। अकड़ उसकी ऐसी थी कि दिन भर मूंछ पर ताव देता रहता था। और अकड़ उसकी ऐसी थी कि गांव में किसी और को मूंछ पर ताव देने नहीं देता था। गांव में सबको अपनी मूंछ नीची रखनी पड़ती थी। नहीं तो सरदार नाराज हो जाए। और राजपूत

दुष्ट था; लोगों की पिटाई करवा दी थी। वह हत्या भी करवा सकता था। लोग भय के कारण अपनी मूंछें कटा कर रखते थे; कभी भूल-चूक से, हवा के झोंके में मूंछ ऊपर हो जाए और राजपूत देख ले! और कम से कम जब राजपूत के घर के सामने से निकलते थे, तब तो बिल्कुल ही मूंछ को नीचे कर लेनी पड़ती थी। दोनों हाथ से पकड़ कर मूंछ नीची करके निकलते थे।
मगर गांव में एक नया बनिया आया। नया-नया था, अभी जवान था, उसको भी मूंछ रखने का शौक था। उसको लोगों ने कहा कि भैया, मूंछ नीची कर ले, इस गांव में रहना है तो।
उसने कहा, जाओ-जाओ। ऐसे देख लिए बहुत मूंछ नीची करवाने वाले! मेरी कोई नीची करवा दे तो देखूं!
राजपूत को खबर लगी। उसने तो अपनी तलवार म्यान से बाहर कर ली। उसने कहा, यह कौन हरामजादा अकड़ दिखला रहा है! लेकिन निकलने दो घर से, आने दो मेरे सामने, न गर्दन उतार दूं!
लोगों ने बनिए के लड़के को भी जोश पर चढ़ाया। लोग भी थे तो क्रोध में ही राजपूत पर। सोचा कि हो सकता है हो जाए टक्कर। लोगों ने कहा कि मान भाई, तू कर ले नीची मूंछ! उनका मतलब यह था कि करना मत नीची मूंछ। बहुत समझाया कि देख, वह आदमी बड़ा खतरनाक है। तलवारें चल जाएंगी! बनिए के लड़के ने कहा कि तो मैं भी कोई साधारण नहीं हूं। मैं भी बनिया हूं। अगर वह राजपूताना का राजपूत है, तो मैं भी मारवाड़ का मारवाड़ी हूं। लोगों ने कहा कि और तो ठीक, अपने घर में मूंछ ऊंची रखना ठीक, उसके सामने से मत निकलना! उसने कहा, अभी निकलूंगा।
मूंछ पर ताव देकर वह बनिए का लड़का निकला राजपूत के सामने से। राजपूत
तो तलवार लेकर बाहर आ गया। उसने कहा, रुक! तुझे लोगों ने बताया नहीं? मूंछ नीची कर ले! उस बनिए के लड़के ने कहा, तू कर ले अपनी मूंछ नीची। बहुत दिन हो गई तेरी ऊंची; अब यह ऊंची रहेगी।
राजपूत राजपूत था। उसने एक तलवार बनिए को भी दी, कि तू भी एक तलवार सम्हाल। क्योंकि निहत्थे आदमी पर हमला नहीं कर सकता। आ मैदान में, निपटारा हो ले। इस गांव में एक ही मूंछ ऊंची रहेगी--या तेरी, या मेरी। दूसरा जिंदा नहीं रह सकता।
बनिए ने कहा, जैसी मर्जी। लेकिन एक बात समझ लो। जरा पांच मिनट का मुझे वक्त दो। घर जाकर पत्नी-बच्चों को साफ कर आऊं। क्योंकि मेरे मरने के बाद-- हो सकता है मैं मर जाऊं--नाहक पत्नी क्यों दुख पाए! मूंछ मेरी; झगड़ा मेरा तुझसे; मेरे बच्चे क्यों भूखे मरें, अनाथ हों! जाकर उनको खत्म कर आऊं। और अगर तू मेरी मान, तो तू भी जा और पत्नी-बच्चों का सफाया कर आ। क्योंकि कौन जाने, तू मर जाए!
राजपूत को बात जंची। उसने कहा, बात तो बिल्कुल ठीक है। झगड़ा हमारा है। इसमें पत्नी-बच्चे क्यों कष्ट पाएं!
दोनों घर गए। पांच-सात मिनट बाद राजपूत तो साफ करके लौट आया पत्नी- बच्चों को। बनिया मूंछ नीची करके लौट आया। राजपूत ने कहा, अरे तूने मूंछ नीची क्यों की?
उसने कहा, मैंने सोचा, क्यों नाहक हत्या करना! पत्नी मारो, बच्चे मारो, फिर तुमको मारो। क्या सार? अरे यह मूंछ नीची सही!
मगर उसने राजपूत का घर बरबाद करवा दिया। उसने राजपूत को बरबाद करवा दिया। यह स्त्रैण ढंग हुआ बदले का, क्रोध का, ईर्ष्या का, जलन का। मगर है तो बात वही, मूंछ ऊंची कि नीची, इससे फर्क नहीं पड़ता। मगर बनिए ने भी चाल चली! क्रोध अहंकार का सक्रिय रूप है, राजपूती रूप है समझो; और ईर्ष्या अहंकार का वणिक रूप है, निष्क्रिय रूप है। मगर दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
मधुरी, अहंकार तो जाएगा संन्यास से। संन्यास का अर्थ हैः समर्पण। संन्यास का अर्थ हैः झुक जाने की क्षमता। संन्यास का अर्थ हैः अहोभाव से झुक जाना। संन्यास का अर्थ हैः यह घोषणा सदगुरु के समक्ष कि अब मैं नहीं हूं, तुम ही हो। और यही घोषणा एक दिन परमात्मा के समक्ष पहुंच जाती है।
सदगुरु से तुमने जो निवेदन किया है, वह वस्तुतः परमात्मा से ही निवेदन

किया है। क्योंकि सदगुरु तो डाकिया भर है। तुम्हारे संदेश वहां तक पहुंचा देता है, क्योंकि तुम अभी अपने संदेश वहां नहीं पहुंचा पाते।
सदगुरु तुम्हारी भाषा भी जानता है और परमात्मा की भी भाषा। तुम बोलते
हो शब्दों में, परमात्मा बोलता है मौन में। सदगुरु तुमसे बोलता है, शब्दों का उपयोग करता है। और जब परमात्मा से बोलता है, तो चुप्पी साध लेता है। वहां मौन भाषा है। वहां मौन संवाद है।
सदगुरु का एक पैर उस लोक में है, एक पैर इस लोक में है। सदगुरु की देह पृथ्वी पर, आत्मा आकाश में। सदगुरु के साथ जुड़ जाने का नाम सत्संग। सदगुरु के साथ जुड़ जाने का नाम संन्यास। इसका संबंध त्याग इत्यादि से बिल्कुल नहीं है। यह एक अनूठा गठबंधन है। यह एक अनूठी सगाई है। यह उस विराट के साथ भांवर डाल लेनी है।
मधुरी, मैंने तुझे पहले उत्तर नहीं दिया, क्योंकि तेरे प्रश्न से मुझे साफ था कि जरा ठहरूं, संन्यास हो ही जाने दूं। इसलिए भी उत्तर नहीं दिया कि यह भी हो सकता है, मेरे समझाने के कारण तू संन्यास ले ले। तब थोड़ी सी चूक हो जाएगी। क्योंकि कई बार यह हो सकता है कि मैंने समझाया, मेरी बात जंची, मेरा तर्क जंचा, तेरी बुद्धि प्रभावित हुई, तू संन्यस्त हो गई। और कल दूर जाकर फिर संदेह उठ आएं।
इसलिए मेरी पूरी आकांक्षा यही होती है कि संन्यास तुम्हारा अपना अंतर्भाव हो। मेरे समझाने से नहीं, मेरे होने से घटे। मेरे कहने से नहीं, मेरी मौजूदगी से घटे। मैं तुम्हारी बुद्धि को सब तरह से राजी करूं, फिर घटे, तो वह संन्यास खोपड़ी का होगा। और मेरी सन्निधि में तुम्हारा हृदय तरंगायित हो जाए, और फिर घटे, तो वह संन्यास हृदय का होगा। उसकी गहराई और। उसका मजा और। उसकी मौज और। उसका रंग और। उसका ढंग और।
बुद्धि में तो रूखी-सूखी बातें घटती हैं; वहां रसधारें नहीं बहतीं। बुद्धि तो गणित करने में कुशल है; वहां प्रेम का पैर भी नहीं पड़ता। प्रेम तो हृदय में घटता है। और संन्यास प्रेम का कदम है। यह प्रेम की यात्रा है।
इसलिए मैं चुप रहा। तेरे प्रश्न को सम्हाले रखा रहा, कि आज नहीं कल, कल नहीं परसों... ! अब तेरा संन्यास हो गया है। अब तुझसे मन की बातें कही जा सकती हैं। अब तूने अपना हृदय खोला है। अब तेरे हृदय पर मैं हस्ताक्षर कर सकता हूं।
संन्यास का अर्थ हैः भर गया मन, देख लिया सब, यहां पाने योग्य कुछ भी नहीं है। कि अब और लौट कर नहीं आना है--संन्यास का अर्थ है। आ चुके बहुत बार देह में; पड़ चुके बहुत बार गर्भ के गड्ढे में; देख चुके बहुत पीड़ाएं, देख चुके बहुत संताप। अब और नहीं आना। अब दुबारा नहीं आना है।
बादलों के पास से आना नहीं,
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं।
है अंधेरी रात, मैं भटकी हुई,
और सिर से पांव तक अटकी हुई,
भाल पर की रेख-सी अंधी हुई,
पायलों-सा और तड़पाना नहीं।
फिर मुझे इस बार भी भ्रम हो गया, यूं छला जाना सहज क्रम हो गया, जिंदगी का व्यर्थ सब श्रम हो गया, आस के उस गांव से आना नहीं।
रूप केवल एक क्षण का हास है, देख, उजला कफन सिर के पास है, जिंदगी बस मौत का ही रास है,
रूप पर तुम और इतराना नहीं।
अब मुझे तुम और भी भटकाओ मत, दे मुझे दाने अधिक तड़पाओ मत, और मेरी मृत्तिका लजवाओ मत, फिर मुझे इस पार है आना नहीं। संन्यास ऐसी प्रतीति हैः
और मेरी मृत्तिका लजवाओ मत,

फिर मुझे इस पार है आना नहीं।
अब मुझे तुम और भी भटकाओ मत,
दे मुझे दाने अधिक तड़पाओ मत,
जिंदगी बस मौत का ही रास है,
रूप पर तुम और इतराना नहीं।
इतरा लिए शरीर पर, इतरा लिए धन पर, पद पर। इतरा लिए बहुत। जन्मों- जन्मों इतरा लिए। कब तक आते जाना है? मधुरी, बहुत हुआ!
संन्यास इस बात का निर्णय है कि काफी काफी है। अब और है आना नहीं। इस जीवन में एक ही भूल है, और वह भूल है कि संन्यास समझ में न आए। और सब भूलें तो गौण हैं। उनका कोई बहुत मूल्य नहीं है। जिसको एक बात समझ में आ गई-- संन्यास का अर्थ, गरिमा, महिमा--उसे सब समझ में आ गया।
याद भूल जाने को एक उम्र कम है, पर--एक भूल काफी है उम्र भर रुलाने को।
एक सांस जीवन में एक बार आती है,
बार-बार लेकिन क्यों आंख डबडबाती है,
मनचाहा आंचल तो मुश्किल से मिलता है
इसीलिए आंसू को धूल बहुत भाती है,
रूप के बढ़ाने को लाख फूल कम हैं,
पर--चार फूल काफी हैं अर्थियां सजाने को। याद भूल जाने को एक उम्र कम है,
पर--एक भूल काफी है उम्र भर रुलाने को। कुछ तो मन मृग-जल के पीछे भरमाता है,
कुछ मन का मेघों से मरुथल-सा नाता है, आशा ही आशा में ओंठ सूख जाते हैं
कौन बुझे प्राणों की प्यास बुझा पाता है, प्राण-दान पाने को बूंद-बूंद मुश्किल, पर--एक बूंद काफी है जिंदगी डुबाने को। याद भूल जाने को एक उम्र कम है,
पर--एक भूल काफी है उम्र भर रुलाने को। प्रात कब हंसाता है, सांझ कब रुलाती है, किस-किस से सांसों की कथा लिखी जाती है, समय सभी घावों को पूर नहीं पाता है
दबी हुई पीड़ा भी उभर-उभर आती है।
दर्द के मिटाने को सौ-सौ सुख कम हैं,
पर--एक दर्द काफी है लाख सुख भुलाने को।
याद भूल जाने को एक उम्र कम है,
पर--एक भूल काफी है उम्र भर रुलाने को।
और मैं उस भूल को कहता हूंः संन्यास को न समझने की भूल। यहां सभी संसार को समझने में लगे हैं। समझ कुछ पाते नहीं; नासमझी बढ़ती ही चली जाती है। जैसे उम्र बढ़ती है, वैसे नासमझी बढ़ती है। बच्चे ही कहीं बूढ़ों से ज्यादा समझदार होते हैं। क्योंकि चित्त ताजा होता है। मन का दर्पण स्वच्छ होता है। चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। धूल नहीं जमी होती। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, वैसे-वैसे धूल जमी--अनुभव की धूल, ज्ञान की धूल, और समझना और-और मुश्किल हो जाता है।
बात तेरी समझ में आ गई। संन्यास में तेरा प्रवेश हुआ। तू अहोभागी है!
अब तू देखना, ध्यान का यह दीया जैसे-जैसे जलेगा, वैसे-वैसे ईर्ष्या और क्रोध और अहंकार, सब चले जाएंगे। उन्हें छोड़ना नहीं पड़ेगा; वे तुझे छोड़ देंगे। और तभी मजा है। तभी रस है।
जिन चीजों को हम छोड़ते हैं, वे कभी हमसे छूट नहीं पातीं। कुछ न कुछ अटका रह जाता है। जो आदमी धन छोड़ कर जंगल चला जाता है, वह जंगल में बैठ कर भी धन का ही विचार करता है। करेगा ही। छोड़ कर भागा है। छोड़ कर हम भागते ही उसको हैं, जिसमें हमारा रस इतना होता है कि हमें डर होता है कि अगर हम भागे न, तो उलझ जाएंगे। जो व्यक्ति पत्नी को छोड़ कर भाग गया है, वह स्त्रियों के संबंध में सोचता ही रहेगा; बचना असंभव है। नहीं तो भागता ही क्यों? भागते कायर हैं; भागते भयभीत हैं; और जहां भय है, वहां मुक्ति नहीं।

जो व्यक्ति स्त्री से डर कर भागा है, क्योंकि शास्त्रों ने कहा है, स्त्री नर्क का द्वार है... । जिन्होंने लिखा, उनको कुछ पता नहीं होगा।
उन्होंने अपना क्रोध जाहिर किया है स्त्री के प्रति; और कुछ भी नहीं। उन्होंने घोषणा की है इस वक्तव्य में कि उनका मन स्त्री में बहुत लिप्त था। स्त्री उन्हें नरक की तरफ खींचती हुई मालूम पड़ी होगी। इसलिए तो बेचारों ने लिखा कि स्त्री नरक का द्वार है।
अगर स्त्री नरक का द्वार है, तो फिर स्त्रियां तो नरक जा ही नहीं सकतीं! स्त्रियों को एक बड़ा लाभ है इसमें; उन्हें राजी हो जाना चाहिए इस बात से। स्त्रियां तो नरक तभी जा सकती हैं, जब पुरुष भी नरक का द्वार हो। नहीं तो स्त्रियों को कौन नरक ले जाएगा!
लेकिन चूंकि स्त्रियों ने शास्त्र लिखे नहीं। लिखना तो दूर, पुरुषों
ने पढ़ने तक नहीं दिए स्त्रियों को शास्त्र। आज भी यहूदी स्त्रियां सिनागॉग में, यहूदियों के मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकतीं। उनके लिए दूर ऊपर छज्जा बना होता है, उस पर बैठ सकती हैं।
मैंने कहानी सुनी है कि जब इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री थी और गोल्डामेयर इजरायल की, तो इंदिरा इजरायल गई। गोल्डामेयर से इंदिरा ने कहा कि और सब चीजें दिखाईं, लेकिन यहूदी मंदिर नहीं दिखाया। गोल्डामेयर थोड़ी सकुचाई, कि कैसे यह बात कहे कि यहूदी मंदिर में स्त्री को प्रवेश नहीं है। मुसलमानों की मस्जिद में भी स्त्री को प्रवेश नहीं है। एक छज्जा अलग बनाया होता है--दूर, ऊपर! मगर अब इंदिरा ने जोर दिया, तो गोल्डामेयर लेकर उसे गई। दोनों छज्जे पर बैठीं।
इंदिरा जब वापस लौटी, तो दिल्ली में किसी ने पूछा कि कुछ खास चीजें देखीं? तो इंदिरा ने कहा, और सब तो देखा ही देखा, एक खास बात देखी कि इजरायल में प्रधानमंत्री छज्जों पर बैठ कर प्रार्थना करते हैं, मंदिर में नहीं। दोनों ही प्रधानमंत्री! तो इंदिरा ने समझा कि प्रधानमंत्रियों के लिए विशेष आयोजन है--छज्जा। वह प्रधानमंत्रियों के लिए नहीं है आयोजन। वह स्त्रियों को मंदिर-प्रवेश से रोकने का उपाय है। बस उतने दूर तक आ सकते हो; उससे नीचे आना मुश्किल। कभी-कभी इसमें बड़ी झंझटें हो जाती हैं।
एक दफा एक स्त्री छज्जे पर से गिर पड़ी। ज्यादा झांक कर देख रही होगी
कि नीचे क्या हो रहा है? जवान सुंदर युवती छज्जे पर से गिरी, उसका घाघरा शेंडेलियर में फंस गया। वह नग्न लटकी है! रबाई बूढ़ा आदमी था, होशियार आदमी। बूढ़े होशियार हो जाते हैं। तत्क्षण, युगपत उसने तरकीब निकाल ली। उसने कहा, सावधान! कोई ऊपर न देखे। जो ऊपर देखेगा, दोनों आंखों से अंधा हो जाएगा। लेकिन फिर भी एक बूढ़ा ऊपर देखा। रबाई ने कहा, देख! उसने कहा, मैं एक ही आंख से देख रहा हूं। अब इस उम्र में एक आंख चली भी गई तो क्या हर्जा! वह एक आंख बंद किए था और एक आंख से देख रहा था!
अगर तुम होशियारियां निकालोगे तो दूसरे भी होशियारियां निकाल लेते हैं। तुम बूढ़े हो, तो वह भी बूढ़ा था। तुमसे कुछ कम न था। तुम अनुभवी, तो वह भी अनुभवी था। उसने कहा, अब इस उम्र में एक आंख दांव पर लगा देने में कुछ हर्जा नहीं है!
स्त्रियां नरक का द्वार--जिन्होंने लिखा होगा, भगोड़े होंगे। स्त्रियों को बिना समझे भाग गए होंगे। कामवासना मिटी न होगी। दब गई होगी अचेतन में। दबा ली होगी। उसकी छाती पर बैठ गए होंगे। वह भभक रही होगी। अंगारा राख में दब गया होगा; बुझा नहीं होगा।
नहीं; धन से भागोगे, तो धन पीछा करेगा। पद से भागोगे, पद पीछा करेगा।
स्त्रियों से भागोगे, स्त्रियां पीछा करेंगी। पुरुषों से भागोगे, पुरुष पीछा करेंगे। जिससे भागोगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा। संन्यास भागना नहीं है, जागना है--जहां हो, वहीं जागना है। संन्यास साक्षी-भाव है।
मधुरी, साक्षी बन! ईर्ष्या का भी दर्शन कर, क्रोध का भी, अहंकार का भी, मोह का, मद का, मत्सर का, जो भी उठता हो, जो भी धुएं मन को घेरते हों, उन सबके भीतर शांत भाव से बैठ कर साक्षी! देखो, सिर्फ देखो। निर्णय न लो। बुरा-भला न कहो। गालियां न दो। न्यायाधीश न बनो। चुनाव न करो। निर्विकल्प, चुनावरहित, साक्षी-भाव--बस संन्यास का यह सार-सूत्र है। फिर सब मिट जाएगा।

सब जो व्यर्थ है, मिट जाएगा; और जो सार्थक है, उभर आएगा। तब यही संसार परमात्मा में रूपांतरित हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः मुझे बहुत दुख होता है कि मेरा पात्र इतना बड़ा नहीं है
कि आपको समा सके। जब भी मैं आपको प्रवेश देती हूं, आपकी ऊर्जा इतनी अतिशय होती है कि वह हंसी, रुदन या नृत्य बन कर बह जाती है। कभी-कभी मैं सोचती हूं कि कहीं मैं आपके उदार आशीषों को लेने में कृपण तो नहीं हो रही! या ऊर्जा के व्यक्त होने का यही सही ढंग है?

प्रेम काव्या! बूंद में जब सागर उतरेगा, तो बूंद नाचेगी। तभी तो नाचने
का शुभ क्षण आया। तभी तो नाचने की घड़ी आई। फूल जब खिलेगा, सुवासित होगा, सूरज की किरणें फूल पर नाचेंगी, तो फूल के भांवर पड़ने की घड़ी आ गई, शुभ मुहूर्त आ गया। यही तो घड़ी है, जिसकी प्रतीक्षा थी जन्मों-जन्मों से। फूल नाचेगा, मस्त होगा, मदमस्त होगा, अलमस्त होगा।
सत्संग में ऊर्जा तो बरसेगी; वही तो सत्संग का अर्थ है। और यह ऊर्जा मेरी नहीं, परमात्मा की है। तुम्हारे भीतर भी जो नाच उठा है, वह भी परमात्मा का है। क्योंकि परमात्मा का ही परमात्मा से मिलना हो सकता है, परमात्मा और परमात्मा में ही तालमेल हो सकता है।
शिष्य और गुरु के बीच जब जुगलबंदी बंध जाती है पूरी-पूरी, तो न शिष्य
रह जाता, न गुरु रह जाता; बस जुगलबंदी रह जाती है। तब सितार और तबले में एक लयबद्धता रह जाती है। तब सितार सितार नहीं होता, तबला तबला नहीं होता। जब जुगलबंदी अपनी चरम शिखर पर पहुंचती है, तो तबला सितार होता है, सितार तबला होता है। तब कौन कौन है, तय करना मुश्किल हो जाता है!
काव्या, ऐसे अनूठे क्षणों में नाचो! गाओ! गुनगुनाओ! हंसो! रोओ! भाषा असमर्थ है। ये भाव-भंगिमाएं स्वाभाविक हैं। यह अभिव्यक्ति का ठीक-ठीक ढंग है। और डरना मत। मत सोचना कि कहीं ऐसे मैं मिली हुई ऊर्जा को, मिले हुए आशीषों को व्यर्थ ही नष्ट तो नहीं कर रही हूं!
नष्ट तो कुछ होता ही नहीं। इस अस्तित्व में कुछ भी नष्ट नहीं होता। आदान-प्रदान है; आना-जाना है। न कुछ सृजन होता है, न कुछ विनाश होता है। अभी आकाश में बादल घिरे और बूंदाबांदी हो रही है। पहाड़ों पर वर्षा होगी। नदियां भर जाएंगी। बाढ़ आएगी। सागर में जाकर बाढ़ नदियां अपनी उलीच देंगी। सागर पर धूप चमकेगी। सूरज से आग बरसेगी। भाप बनेगी। फिर बादल बनेंगे। फिर बूंदाबांदी। फिर नदियां भरेंगी। फिर बाढ़। फिर सूरज। फिर बाढ़। एक वर्तुलाकार अस्तित्व है। यहां कुछ भी नष्ट नहीं होता। नृत्य तो चलता रहता है। रास तो चलता रहता है। नष्ट कुछ भी नहीं होता।
लेकिन हमारा मन कंजूस है। तो जब आनंद की कोई घटना घटती है, तो पुरानी कंजूसी, पुरानी आदतें जोर मारती हैं। पुराने संस्कार कहते हैं कि जैसे हम धन को पकड़ कर रखते थे ताला-चाबी के भीतर, ऐसे ही आनंद की एक पुलक आई है, बांध लो इसे। अब छोड़ मत देना। कहीं ऐसा न हो कि छिटक जाए हाथ से!
अगर आनंद की पुलक को पकड़ा, तो मर जाएगी। जो पकड़ेंगे--चूक जाएंगे। जो बांट देंगे--बचा लेंगे। इस गणित को ठीक से समझ लो। इस भीतर के गणित को खुद जाने दो स्वर्णाक्षरों में अपने हृदय पर। जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएगा, मिट जाएगा; और जो मिटने को राजी है, उसका मिटना असंभव है।
काव्या, जब आनंद तुझे नचाने लगे, तो रोक मत लेना यह सोच कर कि इस आनंद
को सम्हालना चाहिए। कहीं यह छितर न जाए, बिखर न जाए, बंट न जाए। मेरा पात्र तो छोटा है, कहीं पात्र के ऊपर से बह न जाए। बहने दो! जितना बहेगा, उतना ज्यादा मिलेगा। जितना बहेगा, उतना पात्र बड़ा होगा। और जितना बहेगा, उतने नये-नये झरनों से फूट कर तुम्हें भीतर से भरेगा। जैसे कुआं। पानी उलीचो; नये झरनों से पानी चला आता है।
लेकिन कोई कंजूस अपने कुएं को बंद कर दे; ताला लगा दे--कि ऐसे रोज-रोज लोग पानी निकालते रहे, तो एक दिन पानी खतम हो जाएगा; कल गर्मी आ सकती है, कोई मुसीबत के क्षण आ सकते हैं, तो मैं प्यासा मरूंगा। ताला मार दे--कि जब जरूरत होगी, तब मैं ही पीऊंगा; हर किसी को न पीने दूंगा। तो कुआं मर जाएगा। उसके झरने मर जाएंगे। झरनों पर पत्थर, कंकड़, रेत, धूल जम जाएगी। और जब पानी

उलीचा न जाएगा, तो नये पानी की कोई जरूरत ही न रहेगी। पुराना पानी सड़ेगा, गलेगा, विषाक्त हो जाएगा। और कभी अगर जरूरत के क्षण में इस कृपण ने उस पानी को पीया, तो मरेगा--जीएगा नहीं। वह पानी फिर प्राणदायी नहीं होगा। तुम्हारे भीतर जब भी आनंद बरसे--बांटो! दोई हाथ उलीचिए! फिर उसमें कंजूसी न करना। मगर कृपणता हमारे मन की आदत है, यह मैं तुम्हें याद दिला दूं। मन कंजूस है। क्योंकि मन का गणित यह है--बचाओ। मन कहता हैः अगर तुमने रुपये बचाए, तो बचेंगे। अगर बांटे, तो गए।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सड़क से गुजर रहा है। एक भिखमंगे ने हाथ फैलाया। कल ही मुल्ला की लाटरी खुली थी, तो बड़ी मौज में था। और कोई दिन होता, तो हजार सबक सिखाए होते इस मस्त-तड़ंग भिखमंगे को; उपदेश पिलाया होता। लेकिन आज दिल जरा मौज में था। बाग-बाग था; फूल ही फूल खिले थे; पैमाना फूलों-फूलों से भरा था; पैर जमीन नहीं छू रहे थे। निकाल कर सौ रुपये का नोट उस भिखमंगे के हाथ पर रख दिया। भिखमंगे को भी भरोसा नहीं आया। सोचा कि नोट नकली तो नहीं है! उलट-पुलट कर देखा।
नसरुद्दीन ने पूछा, तुम्हें देख कर लगता है अच्छे परिवार के हो, कुलीन हो। तुम्हारे चेहरे की रेखाएं, तुम्हारी भाव-भंगिमा। यद्यपि तुम्हारे कपड़े पुराने पड़ गए हैं, जरा-जीर्ण हो गए हैं, लेकिन लगता है कीमती रहे होंगे कभी। तुम्हारी यह हालत कैसे हुई?
उस भिखमंगे ने कहा, मेरी यह हालत कैसे हुई, इसे जानने में आपको ज्यादा देर न लगेगी। इसी तरह सौ-सौ रुपये के नोट भिखमंगों को देते रहें। ऐसे ही मैं देता रहा। जो मेरी हालत हो गई, साल-छह महीने में आपकी भी हो जाएगी। आप रास्ते पर ही हो!
वह भिखमंगा ठीक कह रहा है। अर्थशास्त्र का नियम तो यही है कि अगर ऐसे रुपये बांटोगे, तो जल्दी चुक जाओगे। खुद भी भीख मांगोगे। लेकिन एक भीतर का अर्थशास्त्र है, वहां नियम ठीक उलटा है। कभी झील के किनारे खड़े हुए? झील में झांक कर देखा? तो तुम्हारी जो तस्वीर झील में बनती है, वह उलटी बनती है। उसमें सिर नीचे की तरफ होता है; पैर ऊपर की तरफ होते हैं। अगर मछलियां तुम्हें झील में देखती होंगी, तो सोचती होंगी, खूब अजीब जानवर है यह भी! सिर नीचे की तरफ, पैर ऊपर की तरफ!
इस संसार में उस परलोक की छाया बनती है। हम झील की मछलियां हैं। हमें जैसा दिखाई पड़ता है, वह शाश्वत नियम के बिल्कुल विपरीत है। इस जगत में तो सिर नीचे, पैर ऊपर। यहां तो हर एक व्यक्ति शीर्षासन कर रहा है। और चूंकि हर एक व्यक्ति शीर्षासन कर रहा है, इसलिए हर एक व्यक्ति को दुनिया उलटी दिखाई पड़ रही है। दिखाई पड़ेगी ही।
मैंने सुना है कि जब पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे, तो एक गधा सुबह-सुबह ही उनके बगीचे में घुस गया। आदमी होता कोई, तो द्वारपाल रोक देता। मगर द्वारपाल भी रात भर का थका था और झपकी खा रहा था। और उसने भी देखा, गधा है। जाता है तो जाने दो। कोई जासूसी तो कर नहीं सकता। कोई गोली मार नहीं सकता। गधा ही ठहरा; करेगा भी क्या! थोड़ी-बहुत घास चर कर वापस लौट जाएगा। सो उसने भी फिक्र न की। गधा भीतर हो गया।
मगर गधा कोई साधारण गधा नहीं था। गधा बड़ा पढ़ा-लिखा था! असल में गधे का
जो मालिक था, जो उस पर ईंटें ढोता था, उसे अखबार पढ़ने का बहुत शौक था। तो जब भी ईंटें ढोने का काम नहीं होता, मालिक अखबार पढ़ता। गधा भी उसके पीछे खड़ा होकर अखबार देखता रहता, देखता रहता, देखता रहता। फिर संग-साथ, सत्संग का असर तो होता ही है। पहले बड़े-बड़े अक्षर पढ़ने लगा। फिर छोटे-छोटे अक्षर पढ़ने लगा। फिर गधा बिल्कुल पारंगत हो गया अखबार पढ़ने में। फिर धीरे-धीरे जब पढ़ना सीख गया, तो बोलना भी सीख गया।
पंडित जवाहरलाल नेहरू सुबह-सुबह शीर्षासन कर रहे थे, जो उनकी आदत थी। गधा उनके जाकर सामने ही खड़ा हो गया। पंडित नेहरू तो भूल ही गए कि वे शीर्षासन कर रहे हैं। उन्होंने देखा, यह गधा उलटा क्यों खड़ा है!
उन्होंने कहा, ऐ गधे! ऐ गधे के बच्चे! मैंने बहुत बदतमीज देखे, तुझ जैसा बदतमीज नहीं देखा। तू उलटा क्यों खड़ा है?
गधे ने कहा, क्षमा करें पंडित जी! उलटा मैं नहीं खड़ा हूं, उलटे आप खड़े हैं।

जब गधे ने कहा, क्षमा करें पंडित जी, तो होश खो गए पंडित जी के। पसीना- पसीना हो गए। एकदम उछल कर खड़े हो गए; सीधे हो गए। गधा--और बोला!
उस गधे ने कहा, क्या आप मेरे बोलने से चौंक गए? क्या आप घबड़ा गए? मुझमें और कोई खास विशेषता नहीं है, सिर्फ मैं बोलता हुआ गधा हूं!
तब तक पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने को सम्हाल लिया था। राजनेता थे, सम्हालने में कुशल थे। ऐसी घड़ियां तो रोज ही आती थीं। सम्हाल ही लेते थे। कहा कि नहीं-नहीं, तेरे बोलने से मैं कुछ घबड़ाया नहीं। मैंने बहुत से बोलते गधे पहले भी देखे हैं।
तो क्या आप इससे डर गए, उस गधे ने पूछा, कि गधा आपसे मिलने आया है?
तब तक पंडित नेहरू पूरे सम्हल गए थे। उन्होंने कहा कि बिल्कुल नहीं। क्योंकि मुझसे सिवाय गधों के और मिलने आता ही कौन है!
शीर्षासन अगर तुम कर रहे हो, तो यह भ्रांति हो सकती है कि सारी दुनिया उलटी है। और इस दुनिया में सांसारिक व्यक्ति जो है, वह शीर्षासन कर रहा है। तुमने तो योगियों को शीर्षासन करते देखा है, मेरा अनुभव कुछ और है। मेरा अनुभव हैः सब संसारी शीर्षासन कर रहे हैं। योगी तो वह, जो पैर के बल खड़ा हो गया; जो अब उलटा नहीं है। यहां सभी संसारियों की खोपड़ी उलटी है। योगी तो वह, जिसकी खोपड़ी उलटी नहीं है।
काव्या, उस महागणित को समझ जो भीतर का गणित है। वहां लुटाने से मिलता है। बांटने से बढ़ता है। बचाने से कम होता है। जो बिल्कुल बचा लेता है, सब समाप्त हो जाता है। लेकिन मन कंजूस है, वह बाहर का ही नियम जानता है। चंदूलाल का दस लाख रुपया बैंक में जमा था। कभी वह अपने ऊपर एक पैसा भी खर्च नहीं करता था। तभी तो दस लाख रुपया जमा कर पाया। जीता था भिखमंगे की तरह। एक फटीचर साइकिल पर चलता था। उस साइकिल में घंटी की भी कोई जरूरत न थी, क्योंकि एक मील दूर से ही लोग जान जाते थे कि चंदूलाल आ रहा है! आवाज साइकिल की इतनी होती थी! उसके टायर-ट्यूब में इतने थेगड़े लगे थे कि चंदूलाल भी गिनती भूल गया था कि कितने थेगड़े हैं। उसकी साइकिल एक अजूबा थी। प्रदर्शनी में रखने योग्य थी। चलती थी, यह चमत्कार था। सिर्फ उसी से चलती थी। किसी और से चल भी नहीं सकती थी। इसलिए चंदूलाल कहीं भी रख कर काम कर आता था। ताला लगाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। कोई दूसरा तो उसे चलाए तो फौरन गिरे! सिर्फ चंदूलाल ही चलाता था। जैसे सरकस में लोग साइकिल चलाते हैं, ऐसी साइकिल थी।
चंदूलाल कभी आइसक्रीम नहीं खाता था। और जब से कोका-कोला बंद हुआ, तब
से तो बहुत ही प्रसन्न था। यह एक खर्चा उसके पीछे लगा था, यह भी खतम हो गया। एक बार उसने आत्महत्या करने तक की सोची थी, लेकिन जहर के बढ़े हुए दाम देख कर रुक गया था!
फिर चंदूलाल बूढ़ा हुआ और बीमार पड़ा। मित्रों ने कहा, चंदूलाल, देखो तुम्हारी हालत बड़ी खराब है। तुम्हारा इलाज होना जरूरी है। तुम्हें हास्पिटल में भर्ती करा देते हैं।
चंदूलाल ने कहा कि पहले यह बताओ, खर्चा कितना होगा? अरे बुढ़ापा तो सभी
को आता है। और मौत भी कोई नई चीज नहीं, घटती ही रही है। जो भी जन्मा, सो मरा। ज्ञान की बात उसने कही। मन इतना चालबाज है! बचाना है पैसे, ब्रह्मज्ञान की चर्चा छेड़ दी--कि मालूम नहीं उपनिषद क्या कहते हैं! सर्वं खल्विदं ब्रह्म--सबमें ब्रह्म ही व्याप्त है। अरे किसका मरना! किसका जीना! यह तो सब रामलीला है। न कोई आता, न कोई जाता। आत्म तो अमर है।
मित्रों ने कहा, चंदूलाल, यह बकवास छोड़ो। हालत तुम्हारी खराब होती जा रही है। अस्पताल चलना ही होगा। नहीं माने, तो चंदूलाल ने कहा कि पहले हिसाब। तो मित्रों ने कहा, कमरे का बीस रुपया रोज, डाक्टर की फीस दस रुपया रोज, इंजेक्शन लगाने वाले के भी दस रुपये। और अनेक खर्च, दवाइयां इत्यादि। करीब पंद्रह दिन इलाज चलेगा।
चंदूलाल ने पूछा, कुल खर्च कितना होगा। पूरा हिसाब बताओ!
मित्रों ने कहा, यही कोई पांच सौ रुपये के करीब खर्च होगा। थोड़ा कम-ज्यादा भी हो सकता है।

चंदूलाल की एकदम छाती बैठ गई। जितना बूढ़ा वह नहीं था उससे भी ज्यादा बूढ़ा हो गया। मौत इतने करीब नहीं थी, और करीब मालूम पड़ी। पांच सौ रुपये! तो उसने पूछा, फिर मरने पर कितना खर्च होता है?
तो मित्रों ने कहा, मरने पर लकड़ियां लेनी पड़ेंगी, कफन खरीदना पड़ेगा, पुरोहित आदि को भी कुछ देना होगा।
चंदूलाल ने पूछा, कुल कितना, ठीक-ठीक हिसाब बताओ! मेरे पास ज्यादा समय नहीं है सोच-विचार का।
तो मित्रों ने कहा कि यही कोई दस रुपये की लकड़ियां, पंद्रह रुपये का कफन, पांच-दस रुपये पुरोहित को देना पड़ेंगे। पच्चीस-तीस रुपये में काम निपट जाएगा। सस्ता पुरोहित पकड़ो, थोड़ी गीली लकड़ियां ले लो, कफन भी जो पहले उपयोग किए जा चुके हैं, तो थोड़ा कम में, समझो कि पंद्रह रुपये में निपट जाएगा!
तो चंदूलाल ने कहा, तो फिर मरना ही ठीक है। ऐसे भी ऋषि-मुनि कह गए हैं
कि आत्मा अमर है। अमर आत्मा के लिए पचास रुपया खर्च करना! दस-पंद्रह में निपटा लेना। और सच तो यह है कि मैं मर जाऊं, तो धर्मादे में चले जाना। वहां से लकड़ियां भी मुफ्त मिल जाएंगी, कफन भी मुफ्त मिल जाएगा। और अगर कुछ भी न हो सके, तो जब मैं मर ही गया तो क्या चिंता करनी, म्युनिसिपल का ठेला अपने आप ही ले जाएगा। तुम फिक्र ही मत करना!
एक मन है हमारा, जो इस भाषा में ही सोचता है; जो हमेशा कंजूसी की भाषा में सोचता है। बचा लो। जितना बच सकता हो, उतना बचा लो। यही जीवन को गंवाने की व्यवस्था है।
काव्या, जो आनंद तुझे यहां उपलब्ध हो रहा है, जो गीत तेरे भीतर फुलझड़ियों की भांति फूट रहे हैं, लुटाओ! नाचो! गाओ! बचाना मत, बांटो! जितना बांट सको, उतना ही यह आनंद बढ़ेगा।
पूछती है तूः "मुझे बहुत दुख होता है कि मेरा पात्र इतना बड़ा नहीं... ।" पात्र किसका बड़ा है? कितना ही बड़ा पात्र हो, परमात्मा के समक्ष छोटा
ही होगा। यह पूरा आकाश भी छोटा पड़ जाता है। यह पूरा आकाश भी उसे कहां समा पाता है! इसलिए इस चिंता में न पड़। इस दुख में भी न पड़। उसकी एक बूंद भी हमारा पात्र सम्हाल ले तो पर्याप्त है, उसकी एक बूंद भी तो सागर है। अमृत की एक बूंद भी तो काफी है; कोई सागर थोड़े ही पीना पड़ेगा अमर होने के लिए! एक बूंद गले के भीतर उतर जाए, कंठ से नीचे उतर जाए, एक बूंद हृदय में पहुंच जाए, बस पर्याप्त है।
तू पूछती हैः "जब भी मैं आपको प्रवेश देती हूं, आपकी ऊर्जा इतनी अतिशय होती है कि वह हंसी, रुदन या नृत्य बन कर बह जाती है।"
बह जाने दो। जी खोल कर बहने दो। उन्मत्त होकर हंसो। अलमस्त होकर नाचो। यह मधुशाला है--इसे कभी भूलो मत। यह अभी जिंदा मंदिर है, और जिंदा मंदिर हमेशा मधुशाला होते हैं। पीओ और पिलाओ। ढालो। यह जो सुराही मैंने तुम्हारे सामने रख दी है, यह तुम्हें दिखाने को नहीं। पीओ! और हिसाब मत लगाओ।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर कुछ मेहमान आए हैं। मिठाइयां बनी हैं। पराठे बने हैं। मित्र ने कई बार मना किया कि बस नसरुद्दीन! बस नसरुद्दीन! अब बहुत हो गया। मगर वह कहे इस ढंग से--बस नसरुद्दीन--कि लगे कि कह रहा है कि और नसरुद्दीन!
कहने के भी ढंग होते हैं। अगर सीखना हो, तो पंडित-पुरोहितों से सीखना चाहिए। मैंने पंडित-पुरोहितों को देखा है। जब वह भोजन की थाली पर तुम और एक पराठा डालो, तो साधारण जिसको नहीं चाहिए, वह दोनों हाथों से रोकता है कि नहीं-नहीं। पंडित दोनों हाथ दूर करके कहता है--नहीं-नहीं! बीच में जगह छोड़ देता है, जहां से पराठा डालो।
आखिर मित्र ने कहा कि बस-बस, नसरुद्दीन! सात पराठे ले चुका, अब और नहीं।
नसरुद्दीन ने कहा, सात नहीं, ले तो चुके हो सत्रह, मगर गिनती कौन कर रहा है!
गिनती चल रही है और कहता है--गिनती कौन कर रहा है! ले तो चुके हो सत्रह, लेकिन गिनती कौन कर रहा है!

गिनती छोड़ो। यह जगत गणित का नहीं, काव्य का है। इसलिए तो काव्या, तुझे काव्या नाम दिया। तुझे नाम दिया है--प्रेम काव्या--प्रेम की कविता। यहां कहां गणित! कहां हिसाब! पीओ-पिलाओ! नाचो-गाओ!
मैं तुम्हें चाहता हूं, एक नृत्यमय धर्म में तुम्हारा प्रवेश हो। उदास धर्मों से दुनिया काफी परेशान हो चुकी। मुंह लटकाए हुए साधु- संन्यासियों से दुनिया काफी बोझिल है। ये मुर्दों से छुटकारा चाहिए। ये कब्रिस्तानी चेहरे, ये कब्रों में ही रहें, मंदिर और मस्जिद इनसे मुक्त होने चाहिए। मंदिरों में बांसुरी बजे फिर कृष्ण की। मस्जिदों में फिर गीत उठें कुरान के। गुरुद्वारे में फिर मर्दाना साज छेड़े और नानक गीत गाएं। एक उत्सव चाहिए, एक महोत्सव चाहिए।
महाराग सिखाता हूं तुम्हें, वैराग्य नहीं। क्योंकि मेरी दृष्टि में महाराग ही वैराग्य है। तुम्हें काव्य सिखाता हूं, गणित नहीं। क्योंकि मेरी दृष्टि में काव्य ही धर्म है, गणित धर्म नहीं।

तीसरा प्रश्नः मैं संसार को जगाना चाहता हूं। क्या करूं?

रामतीर्थ! पहले खुद तो जागो! संसार ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों लोगों के पीछे पड़ना चाहते हो?
ये तरकीबें हैं हमारे मन की। खुद जागना नहीं चाहते; तो चलो, दूसरों को जगाएं! इससे एक भ्रांति बनी रहती है कि जागरण के महाकार्य में लगे हैं-- दूसरों को जगा रहे हैं!
लोग दूसरों की सेवा कर रहे हैं; अभी अपनी सेवा कर नहीं पाए! लोग दूसरों
को प्रेम कर रहे हैं; अभी अपने से भी प्रेम जगा नहीं है! लोग बांटने चले, और भीतर अभी संपदा का जन्म नहीं हुआ! गीत गुनगुनाने की आकांक्षा है, मगर भीतर इतना रस उमगा है कि गीत बन सकें? बांसुरी तो बजाओ, जरूर बजाओ, मगर स्वर कहां से लाओगे? बासे, उधार स्वर किसी को जगाने के लिए सहयोगी नहीं हो सकते।
रामतीर्थ, अभी तुम नये-नये संन्यासी हो। अभी चार दिन भी तो नहीं हुए संन्यासी हुए। अभी चार दिन पहले तुम सोए हुए थे। पूछते थे कि मैं कैसे जागूं?
और अब तुम संसार को जगाने का सोचने लगे! मन की चालबाजियों से सावधान रहना। मन बड़ा चालबाज है, बड़ा पाखंडी है। मन बड़ा राजनीतिज्ञ है। मन चाणक्य है। मन मैक्यावेली है। मन इतना कुशल है धोखे देने में कि तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि कब तुम्हारी जेब काट गया। तुम्हें कानों-कान खबर न होगी, तुम्हीं को धोखा दे जाएगा।
अभी तुम्हें जागना है। हां, तुम जाग जाओगे, तो पूछने की जरूरत न पड़ेगी
कि लोगों को कैसे जगाऊं। जिस विधि से तुम जागो, उसी विधि को लोगों को भी जतला देना। अभी पूछते हो, क्योंकि खुद तो जागे नहीं हो। अभी खुद तो गहरे सो रहे हो। गौर से सुनता हूं, तो तुम्हारी नींद की घुर्राहट मुझे सुनाई पड़ती है!
एक बार मैं ट्रेन में सफर कर रहा था। कोई पंद्रह-बीस साल लगातार सफर करता रहा पूरे मुल्क की। लेकिन वैसा मौका एक ही बार आया। अदभुत मौका था। चार ही व्यक्ति थे हम एयरकंडीशंड कंपार्टमेंट में। मगर क्या संयोग कि मेरे सामने की नीचे की बेंच पर जो आदमी था वह घुर्राए। मगर वह कुछ भी नहीं! उसके ऊपर की बेंच का जो जवाब दे--कि पहले वाला बिल्कुल ऐसा लगे कि शांत सो रहा है। और मेरे ऊपर की बेंच वाला जो था, उसने तो दोनों को मात कर दिया। वे ऐसे सुर-ताल में... जवाब-सवाल! जैसे कव्वाल करते हैं न कव्वाली। अकेला मैं परेशान।
जब मुझे कुछ न सूझा, तो मैंने जागे-जागे इतने जोर से घुर्राना शुरू किया कि वे तीनों जाग गए। मुझसे बोले, भाई साहब, आप क्या कर रहे हैं? मैंने कहा, अब और क्या करूं! तुम तीनों मुझे सोने नहीं देते। नींद वालों को न जीतने दूंगा। यह मेरा धंधा है। हालांकि मुझे नींद तो तुम आने नहीं दोगे; मगर मैं तुम्हें सोने नहीं दूंगा। और तरकीब मुझे पकड़ में आ गई। मैं भी घुर्राऊंगा। या तो तुम घुर्राना बंद करो या फिर रात भर की तैयारी

कर लो। और स्वभावतः तुम तो नींद में घुर्राते हो। इसलिए तुम्हारी एक सीमा है। मैं तो जागा हुआ घुर्राऊंगा; तो मेरी कोई सीमा नहीं है। मैं तुमको ही नहीं जगाऊंगा, इसमें आस-पास के जो कंपार्टमेंट हैं, उनके लोगों को भी जगा दूंगा।
अगर तुम लोगों की तरफ गौर से देखो, तो रास्ते पर चलते हुए भी वे घुर्रा रहे हैं। काम करते हुए भी घुर्रा रहे हैं। नींद तो लगी है, सतत लगी है। आंखें खुली हों, इससे क्या होता है! आंखें खुले-खुले भी लोग सोए हुए हैं। मनोवैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि दुनिया में कारों, ट्रकों, बसों के
जो सर्वाधिक एक्सीडेंट होते हैं, वे होते हैं दो बजे से चार बजे रात के बीच। और जो अनुभव खोजबीन से पता चला, वह बड़ा आश्चर्यजनक है। वह अनुभव यह है कि जो दुर्घटनाएं होती हैं, उन दुर्घटनाओं में ऐसा नहीं होता कि दो और चार के बीच नींद का समय होता है तो ड्राइवर सो जाता है। नहीं, उसकी आंख खुली रहती है और नींद लग जाती है। आंख खुली रहती है। आंख तो बिल्कुल खुली रहती है, लेकिन पथरा जाती है। उसमें दिखाई कुछ नहीं पड़ता।
आंख चूंकि खुली रहती है, इसलिए ड्राइवर को यह भी शक पैदा नहीं होता कि मैं सो गया हूं। सो वह गाड़ी चलाए जाता है। और उसे दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता। सर्वाधिक दुर्घटनाएं इस कारण होती हैं। अगर ड्राइवर को यह भी पता चल जाए कि मेरी आंख बंद हो गई, तो वह रोक दे गाड़ी। मगर आंख खुली है, अभ्यासवश आंख खुली है। पुराना अभ्यास--आंख खुली है। लेकिन भीतर नींद इतनी गहरी हो गई है कि खुली आंख पर भी छा गई है।
आध्यात्मिक अर्थों में संत यह सदा से जानते रहे हैं कि तुम सब जागे हुए भी सो रहे हो। कृष्ण ने प्रसिद्ध वचन कहा है। उससे विपरीत वचन भी ख्याल में रख लेना, वह भी उतना ही सत्य है।
कृष्ण ने कहा हैः या निशा सर्व भूतायाम तस्याम जागर्ति संयमी। जो सबके लिए अंधेरी रात है, जब सब सो जाते हैं, तब भी संयमी, समाधिस्थ, योगी, योगस्थ जागा होता है। यह आधा वचन है। योगी सोया-सोया भी जागा होता है; उसकी आंख बंद होती है, मगर भीतर जागरण होता है। अयोगी जागा-जागा भी सोया होता है। यह दूसरा हिस्सा है उसका, जो कृष्ण ने नहीं कहा। लेकिन मैं चाहता हूं, यह तुम याद रखना। यह तुम्हारे ज्यादा काम का है। पहला तो तुम्हारे किस काम का! जब योगी बनोगे, तब उसका अर्थ समझ में आएगा। दूसरा हिस्सा तुम्हारे ज्यादा काम का है कि तुम आंख खोले-खोले भी सोए हुए हो।
रामतीर्थ, मत पूछो अभी कि संसार को जगाना चाहता हूं। यह भी अहंकार है।
यह अहंकार की नई यात्रा--कि मैं संसार को जगा कर रहूंगा। पहले तुम प्रधानमंत्री बनना चाहते होओगे। फिर देखा कि प्रधानमंत्री बुरी तरह पिट जाते हैं। अभी देखी मोरारजी भाई की कैसी गति हो गई! दुर्गति हो जाती है। देखा कि अरे यह काम ठीक नहीं। और चरणसिंह कितनी देर तक नहीं पिटेंगे, कहना मुश्किल है। महीने भर भी बच जाए पिटाई तो काफी!
तो तुमने सोचा होगा, रामतीर्थ, कि संन्यास ही ले लें! अब तो मोरारजी भाई भी संन्यास लेने का विचार कर रहे हैं। पूना के एक अखबार ने तो सुझाव दिया है कि यहीं रजनीश आश्रम के सामने आश्रम खोल दें तो अच्छा रहे!
बात मुझे भी जंची। यहीं कोरेगांव पार्क में खोलें तो बड़ी कृपा हो।
तुमने सोचा होगा कि कोई सार नहीं दिल्ली में। रामतीर्थ दिल्ली ही रहते हैं। देख-देख दिल्ली का नाटक, नौटंकी, घबड़ा गए होंगे। सोचा कि चलो पूना! संन्यासी हो गए। लेकिन पुरानी भ्रांतियां अभी सिर पर सवार हैं। अब सारी दुनिया को जगाना है! संसार को जगाना है!
जिसको सोना है, उसे सोने दो। अभी तुम जागो। अभी सारी चेतना और सारी ऊर्जा को अपने ही जागरण में लगा दो। हां, तुम्हारी प्रतिभा सजग हो जाए, तो तुम कुछ रास्ता निकाल सकोगे। निश्चित निकाल सकोगे। सभी जागने वालों ने दूसरों को जगाने का रास्ता निकाल लिया है। लेकिन जागने के बाद। तब फिर यह अहंकार की उदघोषणा नहीं होती। यह फिर प्रेम का आंदोलन होता है, प्रेम की अभिव्यक्ति होती है।
दक्षिण में तेनालीराम की बहुत कहानियां प्रचलित हैं। जैसे उत्तर में बीरबल, ऐसे दक्षिण में तेनालीराम। बूढ़े तेनालीराम के घर में चोर घुसे। बेचारा बूढ़ा भला क्या करता! लड़ भी नहीं सकता, और न चिल्ला सकता; वरना वे चोर

उसकी जान ही ले लेते। लेकिन तेनालीराम बड़ा बुद्धिमान आदमी था। दक्षिण में उसकी बुद्धिमत्ता की बड़ी प्यारी कहानियां हैं। उसने एक अदभुत होशियारी की। जोर से अपनी पत्नी को आवाज लगा कर जगाया और चुंबन लेकर बोला, प्रिये, यदि हमारा एक लड़का होता, तो उसका नाम हम क्या रखते?
बुढ़िया चौंक कर बोली, सठिया गए हो क्या! आधी रात को नींद खराब करके यह कहां का सवाल पूछ रहे हो! इस उम्र में अब कहां लड़का! जिंदगी तो चली गई लड़का न हुआ, अब इस बुढ़ापे में लड़के का विचार कर रहे हो। होश में हो कि सपना देख रहे हो!
तेनालीराम ने कहा कि नहीं-नहीं, मजाक नहीं करता। मैं उसका नाम ढब्बूजी रखता।
चोरों ने बूढ़े-बुढ़िया का प्रेमालाप सुना, तो उन्हें बड़ा मजा आया। ढब्बूजी! लड़के का नाम! वे छिप कर और गौर से सुनने लगे।
तेनालीराम ने फिर बुढ़िया को आलिंगन में बांध कर कहा, डार्लिंग, यदि अपना एक लड़का और होता, तो उसका क्या नाम रखती?
पत्नी बोली, आश्चर्य है, तुम इस उम्र में कहां की बातें कर रहे हो! शराब तो नहीं पी गए आज? होश में आओ। एक तो हुआ नहीं, दूसरे का नाम सोच रहे हो!
बूढ़ा बोला, मैं तो उसका नाम चंदूलाल रखता।
चोरों को तो इस रोमांस में बड़ा रस आने लगा।
तेनालीराम ने अपने तीसरे बेटे का नाम नसरुद्दीन और चौथे का नाम मटकानाथ रखा।
बुढ़िया ने तो कहा कि तुम सन्निपात में हो। तुम बकवास न करो। अब तुम सो जाओ। अब पांचवें की बात ही न छेड़ो। लेकिन वह माना ही नहीं। वह फिर पत्नी से बोला, मान लो कभी अपने घर में चोर घुसते, तो मालूम मैं क्या करता? देखो, इस तरह खिड़की में से बाहर मुंह निकाल कर चिल्लाता। तेनालीराम ने सचमुच खिड़की से मुंह निकाल कर जोरों से चिल्लायाः ढब्बूजी, चंदूलाल, नसरुद्दीन, मटकानाथ, दौड़ो-दौड़ो! घर में चोर घुसे हैं!
तेनालीराम के सारे पड़ोसी डंडा लेकर आ गए। उन्होंने चोरों की अच्छी मरम्मत की। ये सब उसके पड़ोसियों के नाम थे!
कुछ न कुछ रास्ता आ ही जाएगा। तुम तो जागो। सदियों-सदियों में बुद्धपुरुषों ने बहुत उपाय खोजे हैं लोगों को जगाने के। अलग-अलग उपाय खोजे हैं। भिन्न-भिन्न विधियां खोजी हैं। तुम भी खोज लोगे। मगर पहले तुम्हारा बुद्धत्व तो फलित हो। उसके पहले इन व्यर्थ बातों में मत पड़ो। उसके पहले ये बातें सन्निपात की बातें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं।
जागो! तुम्हारे जागरण में से ही सूत्र निकल आएंगे कि तुम दूसरों के लिए भी सहयोगी हो जाओगे। तुम्हारा जागरण ही दूसरों को जगाने के लिए आधार बन जाएगा। तुम्हारे जागरण की हवा औरों को भी जगाने लगेगी। जैसे सुबह की ताजी हवा नींद को तोड़ने लगे। कि सुबह की सूरज की किरण तुम्हारे कक्ष में आ जाए और तुम्हारे चेहरे को छू ले, और उसकी गरमाहट--और तुम्हारी नींद टूट जाए। रास्ते मिल जाएंगे। मगर अभी चिंता दुनिया की की, तो तुम और सो जाओगे। मैं तुम्हें समाज-सेवक नहीं बनाना चाहता। और न मैं तुम्हें समाज-सुधारक बनाना चाहता हूं। और न मैं चाहता हूं कि तुम कोई दुनिया भर में क्रांति करने के महान अभियान में लग जाओ। मैं तुम्हें छोटा सा काम दे रहा हूं--लेकिन सबसे बड़ा काम है वह--तुम आत्म-क्रांति में लगो।
आत्म-क्रांति ही एकमात्र मौलिक क्रांति है और उसी क्रांति के आधार पर जगत में कोई दूसरी क्रांति हो सकती है। जब तक आत्म-क्रांति नहीं होती, सभी क्रांतियां असफल हैं।

आखिरी प्रश्नः
मेरे नैना सावन-भादों,
फिर भी मेरा मन प्यासा!
फिर भी मेरा मन प्यासा!
दिन-ब-दिन प्यास बढ़ती जाती है। यह प्यास कहां से उठती है?
प्यास में आनंद और दर्द दोनों कैसे हैं? यह समझाने की अनुकंपा करें!

प्रेम मीनाक्षी! प्रेम में पीड़ा भी होती है, आनंद भी होता है। यह प्रेम का विरोधाभास है। प्रेम में पीड़ा होती है, जैसे गुलाब की झाड़ी में कांटे होते हैं। और प्रेम में आनंद होता है, जैसे गुलाब की झाड़ी पर फूल होते हैं।
लेकिन प्रेम की पीड़ा बड़ी मधुर है। प्रेम की पीड़ा भी बड़ी प्यारी है; केवल धन्यभागियों को उपलब्ध होती है। प्रेम का दर्द दर्द ही नहीं, दवा भी है। अभागे तो वे ही हैं, जिन्होंने प्रेम की पीड़ा नहीं जानी, जिनके भीतर कभी प्यास नहीं उठी--भीतर की प्यास।
तूने कहाः "मेरे नैना सावन-भादों,
फिर भी मेरा मन प्यासा!"
यह प्यास बाहर की नहीं है। यह प्यास भीतर की है। और ये जो आंसू तेरी आंखों से बरस रहे हैं, यह पीड़ा जिसने तेरी आंखों को सावन-भादों बना दिया, अहोभाव है, कृतज्ञता है।
इजिप्त की पुरानी कहावत है कि तुम परमात्मा को चुनो, इसके पहले परमात्मा तुम्हें चुन लेता है। तुम गुरु को चुनो, इसके पहले गुरु तुम्हें चुन लेता है।
उसकी धीमी-धीमी पगध्वनि तुझे सुनाई पड़नी शुरू हो गई है। और जब उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ती है--जैसे कि चौके से आती हुई सुस्वादु भोजन की गंध नासापुटों को छुए तो और भूख लग आती है, भूख न भी लगी हो तो भूख लग आती है-- ऐसे ही जब उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगती है, ऐसे ही जब गुरु का सान्निध्य मिलने लगता है, तो गहन भूख लगती है, गहन प्यास जगती है। ऐसी प्यास जो इस जगत की किसी भी चीज से बुझेगी नहीं। बाहर उसको बुझाने का कोई उपाय ही नहीं है। तेरे भीतर ही वह जल-स्रोत फूटेगा, जो उसे बुझाएगा। तेरे भीतर ही वह झरना टूटेगा, जो तृप्त करेगा।
लेकिन यह शुभ घड़ी है, इसका स्वागत कर। इसे समझने की चिंता में मत पड़। इसको कोई कभी नहीं समझ सका। प्रेम को कौन कब समझ सका है! प्रेम की प्यास को कौन कब समझ सका है!
चंदा की शादी है, चांदी की रातें हैंतुमसे कुछ कहने को, अधरों पर बातें हैं
फागुन की रातें हैं।
झिलमिल से तारे तो आतिश-अनारों-से
उजली पोशाकों में, बादल कहारों-से
नभवाली डोली में, दूल्हे-से चांद को
लेकर जो जाते हैं, धरती को भाते हैं फागुन की रातें हैं।
नदियां पातुरनी-सी पायल बजाती हैं समधिन-सी गेहूं की बालें लजाती हैं दर्शक-समूहों-से पेड़ों के कुनबे हैं कोलाहल करने को हिलडुल कर गाते हैं फागुन की रातें हैं।
गंधी की लड़की-सी बेला चमेली है खुशबू-सा यौवन ले फिरती अकेली है बाराती लड़कों से गेंदे के फूलों पर कनखी ही कनखी में कर जाती घातें हैं फागुन की रातें हैं।
खेतों के लावे मशालों से जलते हैं
शिशिरा के झोंके तरुणियों से चलते हैं
पीपल के पातों को ताशे-सा बजता सुन
अनगिन अनब्याहे-से मन दुख-दुख जाते हैं
फागुन की रातें हैं।
शुभ घड़ी आई, फागुन की रात आई। राम से विवाहने का क्षण आया। इसलिए प्यास जगी; इसलिए आंखें सावन-भादों हो गईं।

लेकिन ये आंसू मोतियों से ज्यादा कीमती हैं। इन आंसुओं का अभिनंदन करो। इन आंसुओं को समझने मत जाना! क्योंकि विश्लेषण सभी चीजों को क्षुद्र कर देता है। और विचार केवल सतह को छूता है; गहराइयां विचार को उपलब्ध नहीं होतीं।
इन आंसुओं को लेकर किसी केमिस्ट के पास मत चली जाना, मीनाक्षी! समझने,
कि ये आंसू क्या हैं? क्योंकि केमिस्ट की दुकान पर तो चाहे आंसू प्रेम के हों, चाहे क्रोध के, चाहे दुख के, चाहे आनंद के--सब एक जैसे हैं। अंधेर नगरी! वहां तो कुछ मोल-भाव में भेद ही नहीं है। टका सेर भाजी, टका सेर खाजा, अंधेर नगरी, अनबूझ राजा। विचार के जगत में तो बटखरे एक से हैं। वहां कोई तौल अलग-अलग नहीं होती।
यह तो बड़ी सूक्ष्म तौल पर तय होगा कि आंसू भिन्न हैं। आनंद के आंसू भिन्न होते हैं दुख के आंसुओं से। वैज्ञानिक अर्थों में नहीं, धार्मिक अर्थों में, रहस्यात्मक अर्थों में। आनंद के आंसुओं में एक काव्य होता है, एक रस होता है। आंसू नहीं होते, मोती ही होते हैं। मोतियों से भी ज्यादा कीमती मोती!
तैयारी कर आगे की। सोच-विचार में न पड़ कि क्या हो रहा है। जो हो रहा है, होने दो! यहां तो बहुत कुछ अनहोना होना है। इसीलिए मैं हूं, इसीलिए तुम हो, इसीलिए यह सत्संग है, इसीलिए यह मधुशाला है, इसीलिए यह पियक्कड़ों की जमात है। जो नहीं होता, वह होना है। जिसके होने का कोई कारण नहीं है, वह होना है। जिसके होने के लिए कोई विधि-विधान नहीं खोजा जा सकता, वह होना है। अनघट घटना है। फागुन की रात आ गई है। बारात आने के क्षण आ गए हैं।
बिन देखे ऐसी लगन लगी, दर्शन होगा तो क्या होगा!
सुनता हूं रूप-गर्विता है,
धरती पर पांव नहीं पड़ते।
वह नशा चढ़ा अपनेपन का,
औरों पर नयन नहीं मुड़ते।

सिंगार समय उसके सम्मुखदर्पण होगा तो क्या होगा! सुनता हूं मैं उसकी पलकें
बिन आंजे ही कजराली हैं।
दृग नीले इतने, सागर की--
जैसे गहराई पी ली है।

जब उसकी बड़री आंखों मेंअंजन होगा तो क्या होगा! सुनता हूं उसके अधर सुधर,
फूलों को हंसी सिखाते हैं।
उसकी वाणी से वर पाने
सरगम के स्वर ललचाते हैं।

उन अधरों पर जब प्यार भरागायन होगा तो क्या होगा!
मन में कोई कामना जगे,
दर्शन न करूं तो अच्छा है।
उसकी पूजा करते-करते,
मैं अगर मरूं तो अच्छा है।

जब अहम रूप का पिघल मुझे, अर्पण होगा तो क्या होगा!

यह तो शुरुआत है अभी। ये तो प्रेम के पहले-पहले कदम हैं।
सोच-विचार छोड़ो, मीनाक्षी! चलो निर्विचार में। चलो भाव के लोक में। क्योंकि भाव का लोक ही उसका द्वार है।
बिन देखे ऐसी लगन लगी, दर्शन होगा तो क्या होगा!
अभी तो उस परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हुआ। अभी तो बहुत दूर से--मेरे द्वारा--तुमने परमात्मा की प्रतिध्वनि सुनी है। अभी बांसुरी नहीं सुनी;

बांसुरी की अनुगूंज पहाड़ियों में, झीलों में हो रही है, वह सुनी है। अभी चांद नहीं देखा; झीलों में बना प्रतिबिंब देखा है।
बिन देखे ऐसी लगन लगी, दर्शन होगा तो क्या होगा!
तैयारी करो। कुछ महत होने के करीब है।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
छठवां प्रवचन

अहोभाव, धन्यवाद--पश्चात्ताप नहीं

पहला प्रश्नः क्या प्रार्थना पश्चात्ताप ही नहीं है?

नरेश! प्रार्थना और पश्चात्ताप का कोई भी नाता नहीं; दूर का भी नाता नहीं। पश्चात्ताप अहंकार की ही प्रक्रिया है; अहंकार ही अपने को सजाने- संवारने में लगा है; जो भूलें-चूकें हुई हैं, उन्हें लीपने-पोतने का प्रयास कर रहा है। पश्चात्ताप अतीत-उन्मुख होता है, और प्रार्थना वर्तमान के क्षण में समग्ररूप से डूब जाने का नाम है। प्रार्थना का न तो कोई अतीत है, न कोई भविष्य। न तो पश्चात्ताप है प्रार्थना, और न कोई आयोजन। न तो मांग है प्रार्थना में--यह मिले, वह मिले; और न इस बात की स्वीकृति है कि मुझसे यह भूल हुई, वह भूल हुई। भूलों की याद, भूलों के लिए क्षमा- प्रार्थना--यह भी अहंकार है।
और भूलों की क्षमा-याचना करके कौन भूलों से मुक्त हुआ है? जितनी क्षमा-याचना करते हो, उतनी ही भूलों को दोहराते हो। सच तो यह है कि पश्चात्ताप भूलों को पुनः-पुनः करने की प्रक्रिया है। एक बार यह बात साफ हो गई कि प्रायश्चित्त से क्षमा मिल जाती है, तो फिर तो भूल करने में अड़चन क्या रही! गंगा-स्नान से अगर पाप धुल जाते हों, तो फिर जी भर कर पाप करो। फिर गंगा-स्नान कर आना! और अगर मंदिर में झुकने से, हाथ जोड़ने से, भगवान से प्रार्थना करने से--कि क्षमा करो मुझे; कि तुम पतित-पावन हो और मैं अधम प्राणी हूं--अगर क्षमा मिल जाती हो, तो फिर कल पाप करने की पुनः सुविधा हो गई। फिर डर क्या रहा! जहां क्षमा इतनी सस्ती है, वहां पाप करने में अड़चन कहां! अवरोध कहां!
इसलिए मैं तुमसे कहूंगा, नरेश, प्रार्थना पश्चात्ताप नहीं है और पश्चात्ताप प्रार्थना नहीं है। न ही प्रार्थना मांग है, न ही प्रार्थना में कोई आकांक्षा है।
लेकिन लोग दो ही तरह की प्रार्थनाएं जानते हैंः या तो की गई भूलों के लिए प्रायश्चित्त, क्षमा-याचना, और आशा कि परमात्मा क्षमा करेगा, क्योंकि वह महाकरुणावान है, रहीम है, रहमान है। और या फिर मांग से भरी प्रार्थना, वासना से भरी प्रार्थना--यह मिले, वह मिले। या तो बीता कल महत्वपूर्ण, या आने वाला कल महत्वपूर्ण। और दोनों का कोई अस्तित्व नहीं! बीता--बीत गया; आया--अभी आया नहीं। प्रार्थना का संबंध है, जो है, उससे। इस क्षण से! अभी और यहां!
प्रार्थना तो सदा ही शुद्ध वर्तमान में सचेतन होने का नाम है। प्रार्थना अहोभाव है, पश्चात्ताप नहीं। प्रार्थना शिकायत नहीं है, धन्यवाद है।
लेकिन मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजा-गुरुद्वारों में जो प्रार्थना चल रही है, वह ऐसी ही है। वह प्रार्थना नहीं है, प्रार्थना का धोखा है; झूठी वंचना है।
साधना के पथ पर क्यों डगमगाते पांव मेरे?
आज रह-रह कर कसकते क्यों हृदय के घाव मेरे?
आज प्राणों में प्रणय की मधुर-सी मनुहार क्यों है?
आज जीवन भार क्यों है?
कौन कहता है नई यह प्रेम की मेरी कहानी
आज की, कल की नहीं, यह बात युग-युग की पुरानी
आज भी मानव-हृदय में एक विफल पुकार क्यों है?
आज जीवन भार क्यों है?
देख जड़ जग की विषमता जब निराशा घेर आती
कान में कहता हृदय, सुन व्यर्थ आह कभी न जाती विजन-वन में फिर प्रकृति का हो रहाशृंगार क्यों है? आज जीवन भार क्यों है?

आज जीवन भार इसलिए है कि हम कलों को ढो रहे हैं। जो बीत गए कल, उनका पहाड़ हमारी छाती पर सवार है। और जो आए नहीं कल, उनका पहाड़ भी हमारी छाती पर सवार है। इन दो पाटन के बीच आदमी पिसता है, मर जाता है; घसिटता है, रोता है, टूटता है, खंडित होता है। इन दो पाटों के बीच कोई भी साबित नहीं बच पाता। लेकिन इन दो पाटों के बीच भी एक स्थान है, मुक्ति का एक द्वार है। वह है-- वर्तमान का छोटा सा क्षण!
यह हो रही वर्षा। यह बूंदाबांदी। यह छप्पर पर बूंदों की आवाज, यह सरगम। ये वृक्ष। ये वृक्षों से गूंजती हवाएं। यह सन्नाटा। इसके साथ तल्लीन हो जाने का नाम प्रार्थना है।
प्रार्थना करने के लिए हिंदू होना जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि हिंदू अगर हो, तो प्रार्थना कैसे करोगे? मुसलमान होना जरूरी नहीं है। मुसलमान अगर हो, तो प्रार्थना कैसे करोगे? फिर तो तुम बंधे हुए क्रियाकांड दोहराओगे। हिंदू दोहराएगा गायत्री। मुसलमान पढ़ेगा आयतें। जैन पढ़ेगा नमोकार मंत्र। और प्रार्थना का सीखी-सिखाई बातों से कोई संबंध नहीं। प्रार्थना तो सहज स्फूर्त है। तुम्हारे भीतर से एक आनंद की पुलक उठे
और व्याप्त हो जाए लोक-लोकांत में, दिग-दिगांत में। तुम्हारे भीतर से एक आनंद-भाव उठे और तुम नृत्य कर उठो। परम धन्यता का बोध--कि इस विराट रहस्य में, अस्तित्व में, मैं भी हूं! मैं--जिसके होने की कोई भी जरूरत न थी। मैं-- जिसके बिना जगत भलीभांति चलता। शायद ज्यादा भलीभांति चलता। मैं--जिसकी कोई पात्रता नहीं है। मैं भी हूं! इस अपूर्व अस्तित्व में मेरी भी जगह है! मैं धन्यभागी हूं। मैं कृतज्ञ हूं। ऐसी कृतज्ञता में जो झुक गया है, जैसे फलों से लद गई वृक्ष की शाखाएं झुक जाती हैं, ऐसे कृतज्ञता के फलों से जो लद गया है और जिसकी शाखाएं झुक गई हैं, फूलों के भार से जो झुक गया है--किसी बंधी-बंधाई, पिटी-पिटाई प्रार्थना के कारण नहीं, बल्कि अपनी निज की अनुभूति के कारण--तो उस झुकने में रसधार बहेगी। उस झुकने में परमात्मा से मिलन होगा। उस झुकने में प्यास बुझेगी।
प्रार्थना पश्चात्ताप नहीं है, स्वीकार भाव है--जो है, जैसा है, ठीक है। प्रार्थना परम संतोष है। औरों से ही नहीं, अपने से भी।
तुमसे बार-बार कहा गया हैः दूसरों को क्षमा करो, अपने को नहीं।
जिन्होंने तुमसे यह कहा है, उन्हें प्रार्थना का कुछ भी पता न होगा।
क्योंकि जो अपने को क्षमा नहीं कर सकता, वह किसी को भी क्षमा नहीं कर सकता।
जो अपने को ही क्षमा नहीं कर सकता, वह किसको क्षमा करेगा!
महात्मा गांधी ने बार-बार कहा है कि दूसरों के प्रति बहुत उदार; अपने प्रति कठोर रहो।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, जो अपने प्रति कठोर है, वह किसी के प्रति उदार नहीं हो सकता। उसकी उदारता भी बड़ी कठोर होगी। उसकी सहिष्णुता भी बड़ी असहिष्णु होगी। धोखा होगा, दिखावा होगा। और धोखा और दिखावा ऐसा हो सकता है, ऐसा तर्कपूर्ण, ऐसा प्रामाणिक प्रतीत हो कि लगे सच है। लेकिन जो अपने प्रति कठोर है, उसके लिए असंभव है दूसरे के प्रति सदय होना। क्योंकि हम अपने निकटतम हैं, वहीं तो हम पाठ सीखते हैं जीवन के। प्रेम की कला वहीं सीखते हैं। जीवन के पहले राज, बारहखड़ी वहीं सीखी जाती है। क ख ग वहीं पढ़े जाते हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, औरों के प्रति तो सदय होना ही, क्योंकि औरों के प्रति कठोर होने का तो तुम्हें कोई हक ही नहीं है। तुम हो कौन? तुम निर्णायक नहीं हो। तुम दूसरों के मालिक नहीं हो। तुम उनके कृत्यों के न्यायाधीश नहीं हो। वे बुरे हैं या भले, वे शुभ कर रहे या अशुभ, वे नैतिक हैं या अनैतिक--तुम कौन हो? तुम्हें किसने कहा कि तौलो? तुम्हें यह हक किसने दिया? यह अधिकार तुम्हारा नहीं।
जीसस ने कहा हैः दूसरे की बुराई को भी बुराई मत कहना। दूसरे के पाप को
भी पाप मत कहना। क्योंकि तुम दूसरे को जानते कहां हो! जैसे दूसरे के पैर में पहने गए जूते काटते हों अगर, तो वही जानता है कि जूते काटते हैं; तुम नहीं जान सकते।
दूसरों के जूते तक तुम नहीं जान सकते कि काटते हैं, तो दूसरों के प्राण, दूसरों का अस्तित्व, दूसरों का व्यक्तित्व--उसमें तो तुम प्रविष्ट

नहीं हो सकते। अपने में ही प्रवेश इतना कठिन है; दूसरे में प्रवेश तो असंभव है! तुम दूसरे को ऊपर-ऊपर से जानते हो। उसके भीतर की कथा, उसके भीतर की व्यथा, उस सबसे तो तुम अपरिचित हो। वह क्यों किसी कृत्य को किया है? कैसे उसके अचेतन से कोई कृत्य उठा है--बवंडर की तरह, तूफान की तरह? क्यों उठा है? किन-किन जन्मों का, कितनी लंबी यात्रा का उसमें हाथ है? तुम्हें कुछ पता है! जैसे कोई किसी कविता की एक पंक्ति को पढ़ कर पूरी कविता का अर्थ समझना चाहे, या जैसे कोई किसी उपन्यास के अधूरे फटे हुए पृष्ठ को पढ़ कर उपन्यास की पूरी कथा को समझना चाहे, वैसे ही तो हम लोगों को समझ रहे हैं। उनका पूरा जीवन हमारे सामने नहीं है। छोटे-छोटे अंश, जरा-जरा सी झलकें, बिजली की कौंध में दिखाई पड़ गईं। उन्हीं के आधार पर तुम निर्णय ले रहे हो? कृत्यों के आधार पर तुम कर्ता का निर्णय ले रहे हो? व्यवहार के आधार पर तुम आत्मा का निर्णय ले रहे हो?
नहीं; प्रार्थनापूर्ण व्यक्ति दूसरों के प्रति परम सदय होता है। और अपने प्रति भी। क्योंकि अपने को भी हम कहां जानते हैं? अपने से भी अभी हमारी मुलाकात कहां हुई? और क्या शुभ है, क्या अशुभ है--इसका भी निर्णय दूसरों ने कर दिया है। किस बात का पश्चात्ताप करोगे नरेश!
अगर जैन रात में पानी पी लेता है, तो पश्चात्ताप करता है। और तो कोई नहीं करता दुनिया में! जैन को लगता है पाप हो गया। क्योंकि संस्कार दिया गया है कि रात्रि पानी पीना पाप है। रात्रि भोजन करना पाप है। संस्कार अगर है, तो रात्रि भोजन करना पाप हो गया--अगर सिखावन दी गई है बचपन से, अगर तुम्हारे मन पर एक संस्कार डाला गया, खोदा गया।
लेकिन दुनिया में और किसी को तो अड़चन नहीं है रात्रि पानी पीने में या भोजन करने में। वे तो पश्चात्ताप नहीं करते। वे तो मंदिर में जाकर प्रार्थना नहीं करते कि हे प्रभु! क्षमा करो। रात मैंने भोजन कर लिया; कि रात मैंने पानी पी लिया। अब कभी ऐसा न होगा!
दुनिया में हजारों तरह के समाज हैं, सब के अलग-अलग संस्कार हैं। प्रत्येक अपने संस्कार को ही अपनी नीति-अनीति का निर्णायक मानता है। कौन सी बात नैतिक है? कौन सी बात अनैतिक है? ईसाइयों में एक संप्रदाय है क्वेकर; वे दूध पीने को पाप मानते हैं। अगर क्वेकर दूध पी ले, तो वह क्षमा मांगता है प्रार्थना में परमात्मा से कि हे प्रभु, हे परवरदिगार, हे परम कृपालु, मुझे क्षमा करना! मैंने दूध पी लिया! कि मैंने दूध मिली चाय पी ली। और यहां तुम हो कि दूध तो शुद्धतम आहार है! ऋषि-मुनियों का आहार! पश्चात्ताप की तो बात अलग। मैं रायपुर में कुछ दिन था। तो वहां एक आश्रम ही है; उसका नाम है--दूधाधारी आश्रम। उस आश्रम की सबसे बड़ी खूबी है कि लोग सिर्फ दूध ही पीकर रहते हैं। और जो दूध ही पीकर रहता है, वह परम पवित्र है। एक लिहाज से तो बात ठीक लगती है कि दूध पीना पवित्र आहार है। क्योंकि छोटे- छोटे बच्चे दूध पीते ही तो जगत में प्रवेश करते हैं। छोटे बच्चे कैसे निर्दोष! निश्चित ही उनके भोजन का उसमें हाथ होगा। दूध में कुछ सात्विकता मालूम होती है। बच्चे एकदम सात्विक; कोरे कागज जैसे साफ-सुथरे।
लेकिन क्वेकर भी गलत नहीं कहते। उनकी बात में भी सचाई है। सचाइयां बड़ी जटिल हैं। वे कहते हैं, दूध है मांस-मज्जा का हिस्सा। दूध है एनिमल फूड। देह से पैदा होता है; देह का ही अंग है। तो जैसे मांसाहार बुरा है, ऐसे ही दुग्धाहार बुरा है। जैसे अंडा खाना बुरा है, ऐसा ही दूध पीना बुरा है। फिर बच्चों को माफ किया जा सकता है, क्योंकि वे अपनी मां का दूध पीते हैं। वह उन्हीं के लिए निर्मित हुआ प्रकृति से। लेकिन बड़ों को माफ नहीं किया जा सकता। क्योंकि तुम अपनी मां का दूध नहीं पीते--गाय का, भैंस का, बकरी का। यह किसी और की मां है। यह जो गाय का दूध पी रहा है, यह बछड़े का दूध छीन रहा है! एक तो एनिमल फूड; पहली तो बात कि देह से पैदा होने वाला है दूध, इसलिए खून और मांस-मज्जा के साथ ही जोड़ा जाएगा। दूसरी बात, यह बछड़े के लिए था, तुम्हारे लिए नहीं। बछड़े से छीना गया है। तुम शोषक हो। तुमने गाय के साथ ज्यादती की है। हालांकि तुम कहते हो गऊ-माता! इस देश में गऊ-माता जो लोग कहते हैं, उनको दूध नहीं छीनना चाहिए। गऊ-माता न मारी जाए, इसके लिए आंदोलन चलता है। विनोबा भावे जैसे लोग अनशन कर बैठते हैं! गऊ-माता बचनी चाहिए! पुरी के शंकराचार्य से लेकर छोटे-मोटे साधु-संन्यासी तक, सभी--गऊ-माता

बचनी चाहिए! लेकिन किसलिए? ताकि गऊ-माता का खूब शोषण कर सको। गऊ-माता बछड़े के लिए बचनी चाहिए, यह तो शंकराचार्य भी नहीं कहते और विनोबा भावे भी नहीं कहते। गऊ-माता बचनी चाहिए तुम्हारे लिए!
तुमसे गऊ-माता का क्या लेना-देना है? माता होगी गऊ बछड़े की; तुम्हारी नहीं है। बछड़े को तो मिलेगा नहीं दूध। दूध तुम्हें मिलेगा।
और तुम्हें पता है, जो लोग गाय-भैंस का धंधा करते हैं, वे बछड़ों को मार डालते हैं, या बछड़ों को बेच देते हैं। क्योंकि बछड़ा जितना दूध पी जाता है, वह भी महंगा धंधा है। वे बछड़ों को मार कर बछड़ों में भूसा भर कर उनके झूठे पुतले बना कर गऊ को धोखा देते हैं!
गऊशालाओं में झूठे बछड़े होते हैं--भुस भरे, मुर्दा। लाश है सिर्फ। हड्डियां निकाल ली गई हैं, भूसा भर दिया गया है, चमड़ी सी दी गई है। और गऊ-माता के पास उसको खड़ा कर देते हैं। गऊ को धोखा दे रहे हैं! उसको लगता है कि बछड़ा पास है, तो उसके स्तन से दूध बहने लगता है। और दूध पी जाएंगे ये गऊ-माता मानने वाले लोग!
तीसरी बात क्वेकर कहते हैं कि गऊ का जो दूध है, वह बछड़े के लिए पैदा किया गया है, तुम्हारे लिए नहीं। इसलिए तुम में महत कामवासना को पैदा करेगा।
इस बात में भी सत्य मालूम होता है। क्योंकि कहां सांड और कहां तुम! गाय का दूध पीओगे, फिर अगर तुम्हारे चित्त में कामवासना ही कामवासना घूमे, तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि गाय के दूध में सांड के योग्य कामवासना पैदा करने वाले तत्व हैं। वह तुम्हारे लिए दूध बनाया नहीं गया है; वह सांड के लिए ही बना है। तो फिर अगर दुनिया में तुम लोगों को कामविकार से इतना ग्रस्त पाते हो, तो आश्चर्य नहीं है।
मगर इस देश में समझा जाता रहा कि ऋषि-मुनियों का आहार है! और लगता है
कि इसी आहार के कारण ऋषि-मुनियों को सपने में अप्सराएं सताती थीं! यही आहार होगा कारण कि बैठे ऋषि-मुनि आंख बंद करके कि आई उर्वशी आकाश से! वह उर्वशी आकाश से नहीं आती, गऊ-माता के दूध से आती होगी। वह कामवासना का विकार कहीं उनके भोजन से ही पैदा हो रहा है।
किसको ठीक कहोगे? नरेश, किस बात का पश्चात्ताप करोगे? निर्णय कौन देगा? अब तक तय नहीं हो सका--क्या पुण्य है, क्या पाप है।
लाओत्सू कुछ दिन के लिए अदालत में न्यायाधीश हो गया था। कुछ ही दिन रहा। क्योंकि राजा ने फिर उसे छुट्टी दे दी। रख तो लिया था न्यायाधीश, क्योंकि खबर थी कि वह बड़ा महाज्ञानी है। तो उसे महा न्यायाधीश का पद दे दिया था। पहला ही मुकदमा गड़बड़ हो गया! एक रईस के घर चोरी हो गई। चोर पकड़ा गया, रंगे हाथों पकड़ा गया। चोर ने स्वीकार भी कर लिया। और लाओत्सू ने छह महीने की सजा दी चोर को, और छह महीने की सजा दी साहूकार को।
साहूकार ने कहा, आप होश में हैं! चोर को सजा मिले--ठीक। मुझे किसलिए सजा मिल रही है? मेरी चोरी हो--और मुझको सजा!
लाओत्सू ने कहा, तुमने इतना धन इकट्ठा कर लिया है कि चोरी न होगी तो और क्या होगा! यह नंबर दो का अपराधी है; तुम नंबर एक के अपराधी हो। पहला अपराध तुम्हारा। न तुम इतना धन इकट्ठा करते, न यह चोरी होती। मैं तो दोनों को सजा दूंगा। और सच तो यह है कि मैं तुम्हारे साथ बहुत विनम्रता का व्यवहार कर रहा हूं, क्योंकि तुम्हें भी सिर्फ छह महीने की सजा दे रहा हूं और इसको भी छह महीने की। तुम्हें छह साल की मिलनी चाहिए, इसे छह महीने की।
सम्राट ने सुना तो घबड़ा गया। सम्राट ने कहा, यह कैसा न्याय! और फिर सम्राट को यह भी समझ में आया कि अगर धनपति भी सजा के योग्य है, तो मेरी क्या हालत होगी! अगर कभी न्यायाधीश के सामने मैं पड़ गया, ऐसे न्यायाधीश के सामने, तो शायद फांसी की ही सजा देगा! तत्क्षण लाओत्सू को बरखास्त किया गया।
लाओत्सू ठीक कह रहा है या गलत--कैसे निर्णय हो?
पश्चात्ताप नहीं। पश्चात्ताप में पड़ोगे, तो बड़ी उलझन में पड़ जाओगे, बड़े ऊहापोह में पड़ जाओगे, जिसके बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा।

फिर प्रार्थना क्या है? प्रार्थना है--स्वीकार, संतोष, परितोष। जगत जैसा है, शुभ है। लोग जैसे हैं, अच्छे हैं। जीवन जैसा है, पूर्ण है। इससे पूर्णतर और कोई जगत नहीं हो सकता। इससे शुभ और लोग नहीं हो सकते।
जीसस ने सूली पर चढ़े हुए कहा कि क्षमा कर देना हे प्रभु, इन सारे लोगों को, जो मुझे फांसी दे रहे हैं। क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।
दंड देने का कोई आग्रह नहीं है। इन पापियों को नरक भेजने की कोई आकांक्षा नहीं है।
जिन शास्त्रों में पापियों को नरक भेजने की आकांक्षा है, तुम पक्का समझ लेना, वे शास्त्र उन लोगों ने लिखे हैं जो महा क्रोधी रहे होंगे। दुर्वासा जैसे लोगों ने लिखे होंगे वे शास्त्र। क्योंकि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति लोगों को नर्क भेजने का आयोजन करेगा? और नर्क में कड़ाहों में चुड़ाए जाने का आयोजन करेगा? यह वीभत्स आकांक्षा, यह कुत्सित भाव किसी बुद्धपुरुष में उठ सकता है? नर्क की कल्पना ही नहीं उठ सकती। यह असंभव है। जीसस ने कहा, क्षमा कर देना इन्हें। ये कोई पाप नहीं कर रहे हैं; सिर्फ इन्हें पता नहीं ये क्या कर रहे हैं। ये नींद में चलते हुए लोग हैं, इनका कसूर क्या! नींद में कोई लड़खड़ाए और गिर जाए, नींद में किसी से भूल हो जाए, सपने में कोई चोरी कर ले, कि सपने में कोई हत्या कर दे--तो क्या इसका दंड मिलेगा? प्रार्थनापूर्ण हृदय तो सभी स्वीकार करता है।
जिसके लिए सब कुछ सहाजो हाय सपना ही रहाजिसने मुझे अपना कहाउसका निठुर-व्यवहार भीस्वीकार है, स्वीकार है।
जिसके किए मधुमय अधर
जिससे हुई वाणी मुखर
जिसके मिलन का क्षण अमर
उसका विरह-उपहार भी
स्वीकार है, स्वीकार है।
जिसके सहारे मैं चला
जिससे हुई विकसित कला
जिससे हृदय को सुख मिला
उसका दिया दुख-भार भी
स्वीकार है, स्वीकार है।
और स्वीकार भी साधारण नहीं; स्वीकार भी बेबस, असहाय का स्वीकार नहीं; स्वीकार भी कमजोरी का, हारे हुए का स्वीकार नहीं। स्वीकार भी आनंद का, अभिनंदन का--स्वागत में, द्वार वंदनवार से सजा कर, दीपमाला जला कर, फूल बरसा कर, आरती उतार कर।
स्वीकार भी दो तरह के हैं। एक तो मुर्दा आदमी का, हारे हुए आदमी का स्वीकार। अंगूर खट्टे हैं--ऐसा स्वीकार। चूंकि पा नहीं सका। कौन नहीं चाहता धन पा ले! लेकिन सभी को कहां मिलता! नहीं मिलता, तो फिर अपने अहंकार को समझाने के लिए एक स्वीकार भाव, कि मैं तो संतोषी हूं। मैंने चाहा ही कब था! मिलता भी तो मैं लेता नहीं। ऐसे अपने अहंकार को किसी तरह बचा लेता आदमी। आदमी की मजबूरियां हैं। यहां सभी की महत्वाकांक्षाएं पूरी नहीं हो सकतीं। सभी राष्ट्रपति नहीं हो सकते, सभी प्रधानमंत्री नहीं हो सकते। हालांकि सभी होना चाहते हैं। तो फिर क्या करें? फिर तो जीवन विक्षिप्तता हो जाएगी। तो विक्षिप्तता से बचने के लिए स्वीकार--कि नहीं-नहीं, मुझे चाहिए ही नहीं। मैंने मांगा कब? मिलता भी तो मैं लेने वाला नहीं था। लोग आग्रह भी करते तो मैं इनकार कर देता। मैं तो कम से ही तृप्त हूं। दरिद्रता का भी कितना आनंद है--ऐसे भाव लोग उठा लेते हैं। दरिद्र को नारायण कहने लगते हैं! सोचने लगते हैं कि संपत्ति में कुछ बुनियादी भूल है। सोचना पड़ता है।
नहीं, ऐसा स्वीकार नहीं। एक और स्वीकार है--विधायक, नाचता हुआ, नर्तन में, गायन में, आह्लादित, उमंग से भरा, उत्सवपूर्ण।
मैं किसी का था, तुम्हारा हो गया हूं।
प्राण! तुम बीती हुई बातें न पूछो,
लोचनों की स्निग्ध बरसातें न पूछो,

मत करो मजबूर कहने को कहानी,
मत जगाओ, सुप्त हैं स्मृतियां पुरानी; मैं किसी के प्यार का पाहुन बना था, जिंदगी थी मौन, मैं कुछ अनमना था; मौन पाहुन एक दिन पाहन गया बन--
पा तुम्हें फिर मधुर धारा हो गया हूं। मैं किसी का था, तुम्हारा हो गया हूं। पा सहारा मैं सहारा हो गया हूं।
तुम कहीं आकर न प्यासे लौट जाओ, स्वयं रोओ और मुझ को भी रुलाओ;
मैं सदा चलता रहा सूनी डगर पर, लक्ष्य खोकर लक्ष्य के विपरीत होकर; अब नहीं मैं और रोना चाहता हूं,
अब न अपना आप खोना चाहता हूं;
बन लहर मझधार में रहता रहा हूं--
पा किनारा अब किनारा हो गया हूं।
मैं किसी का था, तुम्हारा हो गया हूं।
बन तुम्हारा बहुत प्यारा हो गया हूं।
एक और स्वीकार है, जो परमात्मा के साथ लयबद्ध होने से अनुभव में आता है; जो जीवन के सौंदर्य को साक्षात करने से प्राणों में उतर जाता है; जो फूलों की सुवास से तुम्हारी तरफ उड़ता है; जो सूरज की किरणों से तुम्हारे पास आकर नाचता है; जो आकाश की बदलियों में मेघ-मल्हार गाता है। एक और स्वीकार है, जो सिर्फ परम धन्यता का है।
जरा ऐसा सोचो, इस जीवन को तुमने कमाया तो नहीं। यह भेंट है परमात्मा की। मुफ्त मिली। तुमने इसे अर्जन नहीं किया। ये आंखें जो चांद-तारों के सौंदर्य को देखती हैं, तुम्हारा सृजन नहीं हैं। और ये कान जो जीवन के परम संगीत से भर जाते हैं--नदियों के कल-कल नाद से, और समुद्र में उठती हुई लहरों के नृत्य से, वृक्षों से निकलती हवाओं से--जो संगीत को सुनते हैं, ये कान तुमने तो निर्मित किए नहीं। यह कौन अज्ञात हाथ तुम्हारे कान निर्मित कर गया है? यह कौन अज्ञात कलाकार तुम्हारी आंखों को बना गया है? वैज्ञानिक तो कहते हैं, आंख का होना एक चमत्कार है। क्योंकि आंख बनी
है ठीक वैसी ही चमड़ी से, जैसे तुम्हारे हाथ बने हैं, पैर बने हैं; वही चमड़ी! चमड़ी में--और देखने की क्षमता! चमड़ी--और पारदर्शी हो गई! चमड़ी--और सौंदर्य को पहचानती है! रूप को देखती है! रंग से भरती है! आकाश के इंद्रधनुष, वृक्षों की हरियाली, फूलों के अनंत-अनंत रंग! कान भी सिर्फ हड्डी के सिवाय और कुछ भी नहीं है। मगर हड्डी जो सुनती है! फिर चाहे वीणा का नाद हो, चाहे बांसुरी की धुन हो, चाहे दूर से आती हुई कोयल की पुकार हो! हड्डी जो सुनती है--और क्या चमत्कार होगा! चमड़ी जो देखती है!
और वैज्ञानिक से पूछो, तो यह हृदय क्या है, सिर्फ फेफड़ा है--फुफ्फस। सिर्फ खून को शुद्ध करने का यंत्र है। लेकिन कहीं इस हृदय में प्रेम का आविर्भाव होता है। किस अज्ञात लोक से प्रेम का अतिथि आता है और तुम्हारे हृदयगृह में निवास करता है! किस अज्ञात लोक से कौन अज्ञात पाहुन तुम्हारा मेहमान बन जाता है! तुम आंदोलित हो उठते हो!
इतना चमत्कारपूर्ण यह अस्तित्व, और तुम धन्यवाद भी न दोगे! तुम पश्चात्ताप करोगे?
नहीं-नहीं! प्रार्थना को, नरेश, पश्चात्ताप से मत जोड़ना। पश्चात्ताप
से जुड़ गई प्रार्थना छोटी हो जाती है, ओछी हो जाती है, दुख भरी हो जाती है, कांटों से छिद जाती है। उसकी आकाश की उड़ान खो जाती है। उसके पंख टूट जाते हैं।
प्रार्थना है अहोभाव, धन्यभाव, कृतज्ञता ज्ञापन, धन्यवाद। अस्तित्व
को धन्यवाद का नाम प्रार्थना है।
बन लहर मझधार में रहता रहा हूं--पा किनारा अब किनारा हो गया हूं। मैं किसी का था, तुम्हारा हो गया हूं। बन तुम्हारा बहुत प्यारा हो गया हूं।

प्रार्थना है परमात्मा का हो जाना। और जो उसका हो गया, वह बहुत प्यारा
हो जाता है। क्योंकि जो उसका हो गया, वह वही हो गया। परमात्मा को जिसने जाना, वह परमात्मा ही हो जाता है। प्रार्थना परमात्मा होने की कीमिया है।

दूसरा प्रश्नः शून्य हो जाना अर्थात परमसुख को पाना मेरे लिए कोई लक्ष्य नहीं। मैं कौन हूं? मेरे पहले जन्म? मौत के बाद मुझे कहां जाना है? लोग कहां से आते हैं, कहां जाते हैं? क्या है यह सब कुछ? मैं चौदह वर्षों से भटक रहा हूं। जब मैं पंद्रह वर्ष का था, तो एक साधु ने अपने भाषण में एक कहानी सुनाई। उसी का प्रभाव। उसी के साथ चल दिया। फिर एक साधु से दूसरे साधु तक, जिसका भी नाम सुना, उसी के पास गया। व्रत रखे, ध्यान करता रहा। अपने आप को जानने की कोशिश। फिर एक और प्रश्न उठने लगाः कौन किसको जानेगा? कौन किसको देखना चाहता है? कौन करेगा किसकी खोज? कुछ समझ में नहीं आता। सांस चल रही है। दिल धड़कता है। और कुछ भी नहीं! फिर ऐसी धारणा बन गई कि कोई भी इस जीवन के रहस्य को नहीं जानता! सब बेकार। सब झूठ। सब बातें हैं; कुछ नहीं।
आपको भी सात-आठ वर्षों से सुनता आ रहा हूं। आपके मुख से निकला हर शब्द ऐसे जैसे मेरे ही अंदर से निकल रहा है। पहले सिर्फ सुनता था। जब कुछ होने लगा, तो मन में कई बार आताः क्या पता, ये भी बातें ही हों!
दिल तड़प रहा है। हर समय एक धुआं सा उठता है। कितनी तड़प, कुछ कह नहीं सकता! जब रात को नींद खुले, यही प्रश्न। बहुत समझाता हूं अपने आप कोः छोड़ो ये सब बेकार की बातें। लेकिन नहीं।
चार जुलाई उन्नीस सौ उनहत्तर को यहां आया। ध्यान शुरू किए। अठारह जुलाई को संन्यास लिया। जिन प्रश्नों को जानने के लिए इतनी तड़प, उसका कोई उत्तर नहीं मिल रहा। लेकिन ये प्रश्न ही खत्म होते मालूम पड़ते हैं। ऐसा क्यों? जो मैं जानना चाहता हूं, क्या कभी इसका उत्तर मिलेगा? मुझे सुख-शांति की कोई इच्छा नहीं। अपने आप को जन्मों-जन्मों में देखना चाहता हूं।

बालकृष्ण भारती! जीवन रहस्य है। प्रश्न और उत्तर की बात नहीं। सब प्रश्न व्यर्थ हैं--यह तुम्हारी समझ में नहीं आया। सब उत्तर व्यर्थ हैं-- यह समझ में आ गया। क्योंकि उत्तर दूसरों के थे, प्रश्न तुम्हारे। अहंकार बड़ा चालबाज है! उत्तर दूसरों के थे--सब बातें हैं! और प्रश्न? प्रश्न हीरे- जवाहरात हैं, बातें नहीं? लेकिन प्रश्न तुम्हारे हैं, इसलिए हीरे-जवाहरात होने ही चाहिए! उत्तर दूसरों के हैं, होंगे कंकड़-पत्थर! होंगे बकवास!
एक साधु से दूसरे साधु, दूसरे से तीसरे साधु के पास तुम भटकते रहे। उनकी सब की बातें तुम्हें व्यर्थ मालूम पड़ीं, लेकिन तुम्हें अपने भीतर उठते प्रश्न व्यर्थ मालूम नहीं पड़े? अगर सब उत्तर व्यर्थ हैं, तो एक बात तो सोचते कभी कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रश्न ही व्यर्थ हैं! व्यर्थ प्रश्नों के ही व्यर्थ उत्तर हो सकते हैं।
और अब यहां आकर जब तुम्हें प्रश्न मिटते हुए मालूम हो रहे हैं, तो घबड़ाहट पैदा हुई। मैं तो प्रश्न ही मिटाता हूं, उत्तर देता नहीं। उत्तर देना तो सिर्फ प्रश्नों को मिटाने की तरकीब है। ऐसे तो रोज उत्तर देता हूं। लेकिन अगर तुम गौर करोगे, तो मेरे उत्तर तुम्हारे प्रश्नों को तोड़ने की चेष्टाएं हैं। कुल्हाड़ी लेकर तुम्हारे प्रश्नों को तोड़ता हूं। जैसे कोई लकड़हारा लकड़ियां काटता हो, ऐसे तुम्हारे प्रश्नों को चीरता हूं, काटता हूं।
उत्तर जीवन का कोई है ही नहीं। जीवन का उत्तर हो जाए, तो जीवन दो कौड़ी
का होगा फिर। फिर जीवन बच्चों की एक पहेली होगा। और जीवन पहेली नहीं है; जीवन रहस्य है। पहेली और रहस्य का भेद समझ लो। पहेली का उत्तर होता है, खोजना पड़ता है। रहस्य का उत्तर होता ही नहीं। लाख खोजो, जितना खोजोगे, उतना पता चलेगा कि उत्तर नहीं है।
अब कुछ ठीक तालमेल बैठ रहा है, तो तुम्हें घबड़ाहट पैदा होना शुरू हुई।
अब तुम्हें डर लगा कि कहीं तुम्हारे प्रश्न ही न सरक जाएं! क्योंकि तुमने अपने प्रश्नों में ही अपना पूरा जीवन लगा दिया है। तुमने अपने प्रश्नों में ही अपना पूरा स्वार्थ जोड़ दिया है।

तुम यह तो मान ही नहीं सकते कि तुम्हारे प्रश्न व्यर्थ हो सकते हैं।
और यही तुम्हें मानना होगा, जानना होगा, पहचानना होगा। तुम्हारे सब प्रश्न व्यर्थ हैं। इसलिए सारे उत्तर व्यर्थ थे। जिन्होंने दिए, वे तुम जैसे ही नासमझ होंगे। नासमझ पूछते हैं, स्वभावतः जीवन का एक नियम है, अर्थशास्त्र का एक नियम है, कि जहां-जहां मांग होती है वहां-वहां पूर्ति होती है। कुछ भी मांगो, कोई न कोई पूर्ति करने वाला मिल जाएगा। ऊलजलूल चीज भी मांगो, तो भी कोई न कोई फैक्टरी उसको बनाने लगेगी। लोग मांगते हैं, तो बनाना ही पड़ेगा। तुम जो मांगोगे, उसकी ही पूर्ति शुरू हो जाती है। चूंकि तुम ऊलजलूल प्रश्न पूछते हो... ।
तुम पूछते होः "मैं कहां से आया?"
तुमने यह बात मान ही ली कि तुम कहीं से आए हो। तुम्हारे प्रश्न में ही
यह बात तुमने मान ली। तुमने एक बात तो मान ही ली है कि तुम कहीं से आए हो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम सदा से यहीं हो! कहीं से आए नहीं; कहीं गए नहीं।
रमण महर्षि की अंतिम घड़ी; श्वास आखिरी; एक शिष्य ने पूछा, भगवान! अब आप
जा रहे हैं। आप कहां जाएंगे?
रमण ने आंख खोली। गहन पीड़ा थी उनको, क्योंकि गले का कैंसर था। बोलना
भी मुश्किल हो गया था। पानी का घूंट पीना मुश्किल हो गया था। लेकिन इस व्यक्ति को उत्तर देने के लिए बोले और कहा, कहां जाऊंगा? जीवन भर एक ही बात समझाई, तुम्हारी समझ में न आई? कहां जाना, कहां आना! न कहीं से आया हूं, न कहीं जाऊंगा। यहीं था, और यहीं रहूंगा।
देह बनती है, देह मिटती है। तुम न तो आते, न तुम जाते। जैसे घड़ा बनता है
और घड़ा मिटता है। घड़े के भीतर का जो आकाश है, वह न तो कहीं आता और न कहीं जाता। एक घड़ा था, तुमने फोड़ दिया। क्या तुम सोचते हो तुमने घड़े के भीतर का आकाश फोड़ दिया? मिट्टी पड़ी थी, तुमने एक घड़ा बना लिया। क्या तुम सोचते हो तुमने घड़े के भीतर का आकाश बना लिया?
आकाश न तो बनाया जाता है, न तोड़ा जाता है। न उसका कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। घड़े बनते-मिटते रहते हैं। तुम्हारी देह तो घड़ा है। आज है, कल नहीं होगी। लेकिन तुम! तुम आकाश हो। तुम सदा से हो, शाश्वत हो, सनातन हो। तुम्हारा न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत है।
इसलिए जब तुम पूछते होः कहां से आया? तो तुमने एक बात मान ही ली, पूछने
के पहले ही मान ली, कि तुम कहीं से आए हो। अब कहां से आए हो--यह सवाल उठता है। फिर सवाल उठेगा--कहां जाऊंगा? फिर दोनों सवालों के बीच में सवाल उठेगा कि जो आता है, जो जाता है, वह कौन है?
तुम हो। लेकिन कौन की भाषा में उत्तर नहीं हो सकता। अगर कोई उत्तर दे, बताए कि तुम कौन हो, तो उसका उत्तर प्रथम से ही गलत है। तुम तुम हो। तुम कोई और नहीं हो। अ अ है, ब ब है। अगर उत्तर देना हो, तो कहना पड़ेगा कि अ ब है, तब उत्तर होगा। अगर किसी से कहो कि अ अ है, तो क्या कोई उत्तर हुआ!
एक गांव में चोरी हो गई। बड़ी खोजबीन हुई। चोर का कोई पता न चले। फिर लोगों ने पुलिस इंसपेक्टर को कहा कि हमारे गांव में एक लाल बुझक्कड़ है। बड़ा पहुंचा हुआ दार्शनिक है। अब तक हम तो ऐसा कोई प्रश्न नहीं पूछ पाए जिसका वह उत्तर न दे देता हो। वही सहायता कर सकता है।
लाल बुझक्कड़ नाम सुन कर इंसपेक्टर थोड़ा चौंका। उसने कहा कि जरा नमूने
के लिए बताओ, उसने कैसे उत्तर दिए हैं! लोगों ने कहा कि ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं। हम तो सब प्रश्न पूछे चुके। एक दफा ऐसा हुआ कि गांव से हाथी निकल गया। इस गांव में कभी हाथी नहीं आया था। इस इलाके में हाथी नहीं होते। रात में निकला, तो किसी ने देखा नहीं। सुबह उसके पैरों के चिह्न रास्ते पर बने थे। बड़ी चिंता पैदा हुई कि ऐसा जानवर! इतने बड़े-बड़े पैर वाला जानवर कितना बड़ा नहीं होगा! लाल बुझक्कड़ से पूछा। लाल बुझक्कड़ ने थोड़ी देर आंख बंद करके ठुड्डी पर हाथ लगा कर विचार किया और कहा कि बात साफ है। पैर में चक्की बांध कर, हिरणा उचका होय! चक्की बांध ली होगी हिरण ने पैर में, और वही कूदा है। इसलिए ये निशान हैं! ऐसा गजब का लाल बुझक्कड़ है। आप घबड़ाएं मत। आप पूछें, उत्तर मिलेगा।

इंसपेक्टर को कोई और रास्ता नहीं दिखाई पड़ा, तो कहा कि चलो, पूछ लें।
क्या हर्ज है! क्या बिगड़ जाएगा! लाल बुझक्कड़ ने कहा कि ठीक, जवाब तो दूंगा।
लेकिन एकांत में, बिल्कुल एकांत में। और बात निजी है, किसी और को बताना मत।
मैं सीधा-सादा आदमी हूं। मैं तो तुम्हें चोर का पता दे दूं और कल चोर मेरी जान लेने आ जाए!
इंसपेक्टर तो बहुत उत्सुक हुआ। उसने कहा, तुम बिल्कुल बेफिक्र रहो। रक्षा हम तुम्हारी करेंगे। और बात कहीं बाहर जाएगी नहीं। लाल बुझक्कड़ ने कहा, मेरे साथ जंगल की तरफ चलो--एकांत में, बिल्कुल एकांत में, जहां पशु- पक्षी भी सुनने वाले न हों।
दूर ले गया एक गुफा में। थका मारा इंसपेक्टर को चला-चला कर। कई दफा इंसपेक्टर ने कहा कि भाई, यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता, तू कान में फुसफुसा दे। एक सेकेंड की बात है। नाम भर बोल दे। उसने कहा, एक ही सेकेंड की है। मगर मेरे जीवन का सवाल है।
आखिर एक गुफा में ले गया--दूर--अंधेरे में टटोलते-टटोलते भीतर पहुंचे। इंसपेक्टर ने कहा, भाई, अब तो तू बता दे, कि कहीं पाताल लोक में ले जाएगा, क्या करेगा! उसने कहा, सुनो, कान पास लाओ। कान में फुसफुसाया और कहा कि जहां तक मेरा हिसाब है, चोरी किसी चोर ने की है। मगर किसी को बताना मत। चोरी किसी चोर ने की है--यह कोई उत्तर हुआ!
तुम जाकर पूछते हो लोगों से--मैं कौन हूं? और बैठे हैं तुम्हारे गांव-गांव में साधु-संन्यासी, वे कहते हैं, तुम आत्मा हो!
यह वही की वही बात है कि किसी चोर ने चोरी की है। आत्मा का अर्थ मैं होता है, और कुछ भी नहीं। वह संस्कृत शब्द है मैं के लिए ही। वे यही कह रहे हैं कि मैं यानी मैं। तुम आत्मा हो। या और जरा कुछ पहुंचे ज्ञानी हुए, तो वे कहेंगे, तुम परम आत्मा हो। मगर वह भी क्या हुआ! परम मैं! बात हल नहीं हुई, और उलझ गई। मैं ही नहीं सुलझ रहा था, अब परम मैं कैसे सुलझेगा!
तुम हो ही नहीं। इसलिए कोई उत्तर काम नहीं आएगा। तुम कोरे आकाश हो-- शून्याकाश। जब भीतर खोजोगे ध्यान में, तो अपने को पाओगे नहीं। कुछ पाओगे। "कुछ" कहता हूं। लेकिन मैं को नहीं पाओगे। अत्ता, आत्मा--ऐसी कोई चीज नहीं पाओगे। कुछ पाओगे। जिन्होंने पाया है, उन्होंने कहा है, ज्यादा से ज्यादा इतना ही हम कह सकते हैं--दर्शन की क्षमता पाओगे, द्रष्टा पाओगे, साक्षी पाओगे, एक देखने वाला पाओगे। दृश्य तो कोई भी न मिलेगा। हाथ पकड़ में तो कुछ भी न आएगा। सामने रख कर देख सको, ऐसी तो कोई चीज न मिलेगी। लेकिन इतना अहसास जरूर होगा कि कोई देखने वाला है। मगर यह भी रहस्यपूर्ण होगा अनुभव। यह गणित में बंधेगा नहीं और विज्ञान की तराजू पर तुलेगा नहीं। हिसाब-किताब में आएगा नहीं। तर्कसरणी में मापने-नापने का कोई न तो कभी उपाय था, न हो सकता है।
लेकिन तुम अपने हाथ से अपनी उलझनें खड़ी कर रहे हो, बालकृष्ण! तुम कहते होः "शून्य हो जाना मेरे लिए कोई लक्ष्य नहीं।"
अब तुमने पहले से ही अड़चन खड़ी कर ली। तुमने पहले से ही तय कर लिया कि तुम्हें क्या होना है, क्या नहीं होना। खोजने की तैयारी कम है, पक्षपात पहले से तय कर लिए। पूछते होः मुझे तो जानना है, मैं कौन हूं। और शून्य होना मेरा लक्ष्य नहीं।
और शून्य हुए बिना कोई स्वयं को जाना नहीं। अब मैं क्या करूं! तुमने
तो शर्त ऐसी बांध दी पहले कि तुम्हारी शर्त पूरी हो, तो तुम्हारी जिज्ञासा पूरी नहीं हो सकती। तुम शर्त छोड़ो, तो जिज्ञासा पूरी हो सकती है। शून्य होने का क्या अर्थ होता है? मौन होना, निर्विचार होना। यह मन की जो आपाधापी है, चली जाए। ये मन में जो निरंतर विचारों की तरंगें हैं, शांत हो जाएं। यह मन निर्विकल्प हो, निर्विचार हो। शून्य का अर्थ होता है समाधि। और समाधि में समाधान है।
लेकिन तुम कहते हो, हमें समाधान तो चाहिए, मगर समाधि पाना हमारा लक्ष्य नहीं! फिर कैसे समाधान मिलेगा? कहते हो, शून्य होना हमारा कोई लक्ष्य नहीं। यह तुमने तय ही कर लिया पहले से? और शून्य होना ही तो प्रक्रिया है स्वयं के बोध की। शून्य की ही तलवार से तो स्वयं का निखार

होता है। शून्य ही तो तुम्हें ले जाएगा वहां, जहां द्रष्टा छिपा बैठा है, उस अंतर-गुहा में।
नहीं बालकृष्ण, ऐसे निर्णय लेकर मत चलो। निर्णय लेकर जो पहले से चलता है, वह सच्चा खोजी नहीं है। पंद्रह साल नहीं, तुम पंद्रह जीवन भटकते रहो, कुछ भी न पाओगे।
और तुम बड़े होशियार हो! तुम कहते हो, सब बातचीत! और तुमने कभी लौट कर एक बार भी न सोचा कि कहीं मेरे पूर्व-पक्षपात ही तो बाधा नहीं बन रहे हैं? जैसे एक अंधे ने तय कर लिया कि और सब तो करूंगा, लेकिन आंख का इलाज नहीं करूंगा। और प्रकाश को जान कर रहूंगा! लेकिन आंख का इलाज नहीं। बस आंख के इलाज की बात मत करना। या जैसे किसी आदमी ने तय कर लिया कि आंख नहीं खोलूंगा, और सूरज के दर्शन करने हैं! तो जिन-जिन के पास जाएगा, जो-जो सूरज की स्तुति में गान गाएंगे, सूरज के गीत गाएंगे, उनकी सब बकवास लगेगी उसे। वह कहेगा, किस प्रकाश की बात कर रहे हो? आकाश में छा गई किस लाली की चर्चा कर रहे हो? कैसी प्राची? कैसा पूरब? कैसा सूरज? कैसी सुबह? आंख मैं खोलूंगा नहीं। आंख खोलना मेरा कोई लक्ष्य नहीं। तो ऐसे आदमी को क्या प्रकाश समझाया जा सकता है?
सच्चा खोजी तो वह है, जो बिना किसी पूर्व-पक्षपात के यात्रा पर निकलता है। जो कहता है, मेरी कोई धारणा नहीं है। सत्य जैसा होगा, मैं सत्य के साथ वैसा ही हो जाने को राजी हूं। सत्य मुझे जैसे ढालेगा, वैसे ही ढल जाने की मेरी तत्परता है। सत्य कहे पूरब, तो मैं पूरब जाऊंगा। और सत्य कहे पश्चिम, तो मैं पश्चिम जाऊंगा। न मैं हिंदू, न मैं मुसलमान, न मैं ईसाई, न मैं जैन। मैं कोई शास्त्र, कोई सिद्धांत पहले से तय करके नहीं चल रहा हूं। निर्विचार मन! और तभी केवल खोज हो सकती है। जिज्ञासा ही वही कर सकता है, मुमुक्षा ही वही कर सकता है।
लेकिन तुमने यह कैसे तय किया कि शून्य होना तुम्हारा कोई लक्ष्य नहीं? शून्य होकर देखा कभी? अनुभव किया शून्य का? शून्य ने तुम्हें कोई तकलीफ दी? शून्य ने तुम्हें सताया? तुम्हें परेशान किया? शून्य से तुम्हारी दुश्मनी क्या है?
शायद शून्य शब्द से ही घबड़ा रहे हो। शायद शून्य शब्द से तुम्हें मौत
की याद आती होगी। शून्य होना यानी मरना, मिटना, बरबाद होना। शून्य होने से तुम घबड़ा रहे हो कि खाली हो जाऊंगा। लेकिन शून्य होना मिटना नहीं है; शून्य होना परम होना है। शून्य होना आकाश होना है, विराट होना है।
और तुम कहते होः "परमसुख पाना भी मेरे लिए कोई लक्ष्य नहीं।"
तुम तो बड़ी गजब की बातें कर रहे हो बालकृष्ण! तुम्हें होश है तुम क्या
कह रहे हो? कोई प्राणी है इस अस्तित्व में, सुख पाना जिसके लिए लक्ष्य न हो? तुम सोचते हो तुम अपवाद हो? आदमियों की तो छोड़ दो, पशु-पक्षी भी सुख पाने के लिए ही खोजबीन में लगे हैं। कितनी ही अंधी खोज हो, मगर खोज तो सुख की ही है। पौधे भी सुख की तलाश कर रहे हैं--अपने-अपने ढंग से।
वैज्ञानिक बहुत चकित हुए हैं यह बात जान कर कि पौधे अपनी जड़ों के द्वारा जल की तलाश करते हैं कि जल कहां है, किस तरफ है। एक वृक्ष है, उससे पचास फीट दूर पूरब की ओर से म्युनिसिपल कारपोरेशन की पाइप लाइन जाती है। पचास फीट दूर! वह और दिशाओं में अपनी जड़ें नहीं फैलाता। वह उसी पाइप की लाइन की तरफ अपनी जड़ें फैलाता है!
अब पचास फीट दूर पाइप की जो लाइन है जमीन में दबी हुई, इस वृक्ष को कैसे पता चलता है? यह न उत्तर जाता, न दक्षिण जाता, न पश्चिम जाता। हां, अगर यह सब तरफ जड़ें फैलाता और फिर अचानक मिल जाता इसे पाइप, तो हम समझते कि चलो, यह तो संयोगवशात है। इसने चारों तरफ जड़ें फैलाईं; जहां पाइप था, वहां मिल गया; जहां पाइप नहीं था, वहां नहीं मिला। लेकिन वैज्ञानिक हैरान हुए हैं यह बात जान कर कि वह वृक्ष अपनी जड़ें फैलाता ही सीधा पूरब की तरफ है। चला! जैसे उसे अंदाज हो गया कि पचास फीट दूर जल-स्रोत है। कोई अचेतन खोज चल रही है।
जो लोग जमीन में दबे हुए जल-स्रोतों की खोज करते हैं, वे भी वृक्ष की डंडी लेकर करते हैं। हरे वृक्ष की ताजी डंडी तोड़े लेते हैं। डंडी को हाथ में रख लेते हैं। हाथ में बिल्कुल सम्हाल कर--पकड़ते नहीं डंडी को, नहीं तो

बाधा हो जाए--सिर्फ हाथ में रख कर जमीन पर चलते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता चलते हैं। देखते हैं कि कहां डंडी डगमगाती है। जहां जल होता है नीचे, कुआं हो सकता है जहां, वहां डंडी डगमगाती है, झुक जाती है। बस उसका डगमगाना हाथ में उनको खबर दे देता है कि यहां पानी होना चाहिए।
वृक्ष की डंडी, हो सकता है सौ फीट नीचे पानी हो, उस पानी की खबर देती है! जरा सी कंप जाती है! जरा सा कंपन--आह्लाद--कि यह रहा जल! यह रहा मेरा सुख का स्रोत!
पशु-पक्षी ही नहीं, पौधे भी! पौधे भी संगीत को सुन कर जल्दी बढ़ते हैं। शास्त्रीय संगीत को सुन कर और भी जल्दी बढ़ते हैं। कैनेडा में बहुत प्रयोग किए गए हैं इस संबंध में। कुछ पौधों को रविशंकर का सितार सुनाया गया, रोज नियम से। वे पौधे दुगुनी गति से बढ़े। उनमें फूल दुगुने बड़े आए। मौसम के पहले आए। और एक मजा, कि जिस टेप रेकार्डर पर रविशंकर का सितार उनको सुनाया जाता था, वे सब पौधे उस टेप रेकार्डर पर झुक आए, जैसे गलबहियां डाल दीं! उसी बगीचे में दूसरे कोने में, उसी तरह के पौधे, उसी उम्र के पौधे, उनको पॉप म्यूजिक सुनाया गया। पॉप म्यूजिक यानी हुड़दंग। जैसा हिंदी फिल्मों की हुड़दंग होती है! संगीत जैसा कुछ भी नहीं, तांडव नृत्य! उन पौधों ने ठीक उलटा व्यवहार किया। वे दूसरी तरफ झुक गए। वे टेप रेकार्डर की तरफ नहीं झुके; वे दूसरी तरफ झुक गए, भागने की कोशिश में--कि किसी तरह बचाओ! और उनकी गति, विकास की, आधी रही। सामान्यतः जितने बढ़ते, उससे भी आधे बढ़े। और सामान्यतः जब उनमें फूल आने थे, उससे भी देर से फूल आए। और सामान्यतः जितने बड़े फूल आने थे, उससे भी आधे फूल आए, अधमरे फूल आए।
पौधे भी सुख को अनुभव करते हैं; दुख को भी अनुभव करते हैं।
बालकृष्ण, तुम कहते होः "परमसुख मेरा कोई लक्ष्य नहीं।"
तो मैं को ही जान कर क्या करोगे? यह मैं को जानने की आकांक्षा भी क्या देगी? अगर आदमी मैं को भी जानना चाहता है तो सुख के लिए ही। स्वयं को जानना चाहता है, ताकि सुख की ठीक-ठीक अनुभूति हो सके। स्वयं को न जाने, भूलें होतीं, चूकें होतीं; आदमी जीवन को दुख-जाल से भर लेता है। स्वयं को जान लूंगा, तो रास्ता साफ होगा। दरवाजे से निकलूंगा, दीवाल से न टकराऊंगा। स्वयं को जान लूंगा, तो मुझे पता चलेगा--करने योग्य क्या है; करने योग्य क्या नहीं है।
स्वयं को आदमी किसलिए जानना चाहता है? स्वयं को इसलिए जानना चाहता है, ताकि परमसुख मिल सके, आनंद मिल सके, सच्चिदानंद मिल सके।
लेकिन तुम बड़ी गलत धारणाओं से भरे हो। और ये धारणाएं तुम्हारी राह में बड़ी अड़चनें हो जाएंगी, बड़ी चट्टानें हो जाएंगी। इनकी सीढ़ियां बनाना मुश्किल हो जाएगा।
तुम कहते होः "शून्य हो जाना या परमसुख को पाना मेरे लिए कोई लक्ष्य नहीं। मैं कौन हूं? मेरे पहले जन्म? मौत के बाद मेरा कहां जाना है?"
यह सारी चेष्टा, अगर गौर से तुम समझो, तो कोई आत्म-अन्वेषण नहीं है। ऐसा लगता है, तुम अहंकार से ग्रसित हो--मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? कहां जाऊंगा? यह मैं तुम्हें जोर से पकड़े हुए है। इस मैं को तुम सिर पर ढो रहे हो। और मैं से बड़ा झूठ कुछ भी नहीं।
तुम हो, लेकिन मैं जैसा वहां कुछ भी नहीं है। तुम निश्चित हो।
तुम्हारा अस्तित्व है। लेकिन मैं का कोई अस्तित्व नहीं है। तुम्हारा अस्तित्व है सारे अस्तित्व के साथ एक; भिन्न नहीं, पृथक नहीं, अलग नहीं।
मैं का अर्थ होता हैः मैं अलग हूं, यह सारा अस्तित्व अलग है। मैं एक छोटा सा द्वीप हूं। यह सारा अस्तित्व है सागर, मैं इससे अलग-थलग।
मैं को तो गंवाना होगा। और तुम इस मैं के पीछे लाठी लेकर पड़े हो। तुम्हें जानना है कि यह मैं कौन हूं! तुम्हें जानने में उतनी उत्सुकता नहीं है, जितनी तुम्हारी उत्सुकता मैं में है। और मैं रोग है।
लेकिन तुम भटकते-भटकते ठीक जगह आ गए हो। यहां तुम्हारे मैं को हम तोड़
ही डालेंगे, छिन्न-भिन्न कर देंगे। होना शुरू भी हो गया है। उसी से तुम्हारा प्रश्न पैदा हुआ है।
तुम कहते होः "जिन प्रश्नों को जानने के लिए इतनी तड़प, उसका कोई उत्तर नहीं मिल रहा। लेकिन ये प्रश्न ही खत्म होते मालूम होते हैं। ऐसा क्यों?"

ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा ही होता है सदगुरु के पास; ऐसा ही होता है सत्संग में। उत्तर नहीं मिलते, प्रश्न मर जाते हैं। चित्त उत्तरों से नहीं भरता, निष्प्रश्न हो जाता है। और जब पूछने को कुछ भी नहीं बचता, तब आंख खुलती है, तब जानने की घटना घटती है।
अब तुम डरो मत। अब तुम घबड़ाओ मत। प्रश्नों को जाने दो। इतने दिन तो पकड़े बैठे रहे प्रश्नों को, उत्तर न पाया। अब मेरी सुनो, प्रश्नों को जाने दो। और जब प्रश्न ही नहीं रहे, तो उत्तर का कोई सवाल नहीं है।
क्या तुम कल्पना नहीं कर सकते एक ऐसे चित्त की, जहां प्रश्न भी नहीं हैं, उत्तर भी नहीं हैं! जहां सन्नाटा है, जहां पूर्ण मौन है। न कोई पूछने वाला, न कुछ पूछे जाने को। न कोई उत्तर देने वाला, न कोई उत्तर। इस दशा को ही पतंजलि ने निर्विकल्प समाधि कहा है। बुद्ध ने शून्यावस्था कहा है। महावीर ने सामायिक कहा है। कबीर ने सुरति कहा है। झेन फकीर इसी को ध्यान कहते हैं। सूफी इसी को जिक्र कहते हैं। नाम के फर्क हैं ये। यह अवस्था, जहां मस्ती है, और सन्नाटा है; जहां तृप्ति है, और कोई जिज्ञासा नहीं; जहां कोई प्रश्नचिह्न नहीं बचा। और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि जब कोई प्रश्न नहीं बचता, तब सब उत्तर मिल जाते हैं।
बुद्ध से जब पूछा गया उनके परम ज्ञान के बाद कि आपने पाया क्या? तो बुद्ध ने कहा, पाया कुछ भी नहीं, खोया बहुत।
पूछने वाला तो चौंका। क्योंकि लोग बुद्धत्व में पाते हैं। हम तो पाने
के ही लिए आतुर हैं। अगर हमको पहले से ही कह दिया जाए कि बुद्धत्व में कुछ मिलता नहीं, उलटे खो जाता है; तो कौन बुद्धत्व में जाना चाहेगा? कौन बुद्धू बनना चाहेगा? यह तो बुद्धत्व न हुआ, बुद्धूपन हो गया। उलटे हाथ का था, वह भी गंवा दिया!
उसने पूछा कि मैं समझा नहीं!
बुद्ध ने कहा कि तुम क्या समझोगे, मैं भी पहली दफा जब हुआ तो नहीं समझा था। सारे प्रश्न खो गए। वही-वही मुझे घेरे थे। उन्हीं के बवंडर में मैं घिरा था। और उत्तर? उत्तर कोई हाथ लगा नहीं। सारी बीमारियां खो गईं। और औषधि? औषधि कुछ हाथ लगी नहीं। मैं खुद ही खो गया। पूछने वाला न बचा। पूछने को कुछ न बचा। सब गंवा चुका हूं।
तो उस आदमी ने पूछा, फिर आप इतने प्रसन्न क्यों मालूम हो रहे हैं? इतने आनंदित क्यों मालूम हो रहे हैं? फिर आपके चेहरे पर यह प्रसाद कैसा? और आपकी आंखों में यह शांति कैसी? और आपके आस-पास की हवा में यह सुवास कैसी? यह आलोक कैसा? यह आभामंडल कैसा?
बुद्ध ने कहा, इसीलिए क्योंकि अब मैं नहीं हूं। सब रोग मैं के कारण थे। मेरे आस-पास की हवा विषाक्त थी मेरे मैं के कारण। जहर की गांठ ही कट गई। जहर की जड़ ही कट गई। अब मैं नहीं हूं; अस्तित्व है। जैसे बूंद सागर में खो जाए, तो मिला क्या बूंद को? खो गया जरूर कुछ--बूंद होना खो गया। मिला क्या? सीमाएं खो गईं। नदी सागर में उतर गई। तट खो गए। मिला क्या?
एक तरफ से देखो तो बुद्ध ठीक कहते हैं कि सब खो गया, मिला कुछ भी नहीं।
और दूसरी तरफ से देखो तो यह भी कहा जा सकता है कि पहले कुछ भी नहीं था; सिर्फ कल्पना-जाल थे; झूठी धारणाएं थीं; वे सब चली गईं। मिला सब कुछ, मिला पूरा अस्तित्व। या तो कहो बूंद बूंद न रही, सब खो गया। और या कहो कि बूंद सागर हो गई। दो ही ढंग हैं कहने के। बुद्ध ने शून्य कहना पसंद किया। वह उनकी मौज। कबीर ने पूर्ण कहना पसंद किया। वह कबीर की मौज। मैं दोनों से राजी हूं।
तुमने सुनी होगी न यह बात कि गिलास आधा पानी से भरा हो। कोई कहे, आधा खाली; कोई कहे, आधा भरा। मैं दोनों से राजी हूं। मैं कहता हूं, गिलास आधा खाली है, आधा भरा है। आधा खाली है इसीलिए तो आधा भरा है। आधा भरा है इसीलिए तो आधा खाली है।
जहां शून्य है, वहां पूर्ण है। जहां कुछ भी नहीं बचता, वहां सब कुछ बरस उठता है।

तीसरा प्रश्नः आपने क्या कर दिया है? मैं ऐसा आनंदित तो कभी भी न था।
शायद इसे ही लोग आपका सम्मोहन कहते हैं!

कृष्णदास! मैं कुछ भी नहीं करता हूं। कर्ता तो जा चुका; बहुत देर हो गई। मेरे भीतर कोई कर्ता नहीं है। मैं कुछ करता नहीं। और तुम्हें भी यही सिखाता हूं कि तुम भी कर्ता को जाने दो। मैं अकर्ता हूं, तुम भी अकर्ता हो जाओ। इधर एक शून्य है, उधर तुम भी शून्य हो जाओ। और जहां दो शून्य होते हैं, वहां दो नहीं रह जाते। दो शून्य एक ही शून्य हो जाते हैं। शून्य दो हों, कि तीन हों, कि हजार हों, मिल कर एक ही शून्य बनता है।
कृष्णदास, इधर मैं शून्य हूं, उधर तुम शून्य हो रहे, इससे आनंद घटित हो रहा है। इसलिए जो मुझ में आंदोलित है, उसकी तरंगें तुम्हारे तटों को भी छूने लगी हैं। इसलिए तुम पर भी बूंदाबादी होने लगी है। इसलिए तुम भी राजी हो गए हो कि मेरा शून्य-मेघ तुम पर बरसे।
बुद्ध ने समाधि को एक नाम दियाः मेघ-समाधि। कहा है कि सदगुरु ऐसा है जैसा जल से भरा हुआ मेघ। और शिष्य ऐसा है जैसे प्यासी धरती। धरती की प्यास और भरा हुआ मेघ, और दोनों का मिलन हो जाए। तो न तो मेघ को कुछ करना पड़ता, न पृथ्वी को कुछ करना पड़ता। लेकिन कुछ होता जरूर है। कुछ अनूठा होता है।
वह अनूठा हो रहा है। मगर ऐसा मत सोचना कि मैंने कुछ कर दिया।
हम कर्म की धारणा के ऊपर नहीं उठ पाते। हमारे मन में यह बात बनी ही रहती है कि कुछ होगा, तो बिना किए कैसे हो सकता है! हमारी कर्ता की धारणा इतनी रूढ़ हो गई है कि हम कोई न कोई कारण खोजते हैं कि हुआ है, तो किसी न किसी कारण से हुआ होगा। अकारण तो कोई चीज हम मान ही नहीं सकते कि होती है।
और यह सारा अस्तित्व अकारण है। यह सारा अस्तित्व बस है। चूंकि हम नहीं मान सकते, इसलिए हमको ईश्वर गढ़ना पड़ता है। ईश्वर यानी कर्ता। ईश्वर यानी स्रष्टा। हम यह नहीं मान सकते कि फूल अपने से खिल रहे हैं; कोई खिलाने वाला चाहिए। हम नहीं मान सकते कि वृक्ष अपने से बड़े हो रहे हैं; कोई बड़ा करने वाला चाहिए।
तुम परमात्मा को कितना काम सौंप रहे हो! एक-एक वृक्ष को खींचे और बड़ा करे! एक-एक फूल को रंगे! एक-एक तितली के पंखों पर रंग भरे!
हम मान नहीं सकते कि बिना किए कुछ हो सकता है। हमारा अज्ञान ऐसा गहरा है। करेंगे, तो ही होगा! तो हम हर जगह कर्ता की धारणा को थोप लेते हैं। किसी न किसी ने किया होगा। कोई न कोई जरूर इसके पीछे होगा। अपने आप कैसे हो सकता है?
और मैं तुम्हें यही कह रहा हूं। दुनिया में दो तरह की चीजें हैं। कुछ,
जो करने से होती हैं। वे दो कौड़ी की चीजें हैं। धन है, पद है, प्रतिष्ठा है; बाजार है, राजनीति है--वे करने से होती हैं। तुम कोई ऐसे ही बैठे-बैठे, एकदम से जनता आकर तुमको प्रधानमंत्री नहीं बना देगी! हाथ जोड़े-जोड़े जनता के पीछे घूमना पड़ेगा सत्तर-अस्सी साल तक। जनता के पैर दबाओ। मालिश करो। फिर पैर दबाते-दबाते, दबाते-दबाते एक दिन गरदन दबाना। लेकिन शुरू करना पैर से। एकदम गरदन दबाओगे, तो कोई हाथ नहीं रखने देगा। अंगुली पकड़ो, फिर पहुंचा पकड़ लेना। दबाना हमेशा पैर से शुरू करो। इसलिए नेता हमेशा सेवा से शुरू करता है। जिसको भी नेता होना है, पहले सेवक होना पड़ता है। समाज-सेवक!
बस समाज-सेवक को देखो कि सावधान हो जाना--कि झंडा कहीं न कहीं छिपाए होगा आगे-पीछे! थोड़ी देर में झंडा निकाल लेगा। और झंडा बिना डंडा के नहीं होता! और तुमने इतने दिन तक पैर दबवाए, तो फिर तुमसे भी पैर दबवाएगा तो फिर नाराज मत होना। दिल भर कर दबवाएगा।
पद चाहिए, तो ऐसे ही नहीं मिल जाता। आकाश से नहीं उतर आता पद। सिर्फ कहानियों में उतरता है। पुरानी कहानियों में। वह भी आजकल की कहानियों में नहीं। पुरानी कहानियों में ऐसा होता है कि किसी राजा का बेटा नहीं है। तो ज्योतिषी उससे कहते हैं कि कल सुबह गांव में जो पहला आदमी प्रवेश करे, उसको ही राजा बना दिया जाए।
वे दिन गए। न अब ज्योतिषी हैं, न अब राजा हैं, न अब गांव पर कोई द्वार-दरवाजे हैं कि पता लगा सको कि कहां से कौन आदमी पहले प्रवेश किया! और अकेले-दुकेले आदमी तो प्रवेश कर भी नहीं रहे हैं। बसों में आ रहे हैं; ट्रेनों में आ रहे हैं। कैसे तय करोगे--कौन पहले, कौन पीछे! और वे सिर्फ कहानियों की बातें हैं।

अगर तुम्हें पद चाहिए, तो बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी। और धन चाहिए, तो वह ख्याल छोड़ देना कि जब परमात्मा देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। छप्पर फाड़ देता है; देता-वेता कुछ नहीं। छप्पर तो कई के फटते देखे, बाकी और कुछ गिरता-करता नहीं। खुद अपने ही खपड़े गिर जाएं और सिर तोड़ दें, बात अलग। वे बातें छोड़ो, वैसा कुछ होता नहीं। वे सिर्फ कहानियां हैं, मन लुभावनी। आदमी ऐसा चाहता है कि हो, इसलिए ऐसी कहानियां गढ़ता है। आदमी ऐसा चाहता है कि किसी दिन गांव में प्रवेश करूं और गांव कहे कि आइए महाराज! सिंहासन पर विराजिए! कि एक दिन छप्पर खुले एकदम और आकाश से एकदम अशर्फियां बरसें! ऐसा सभी लोग सोचते हैं कि चले जा रहे हैं रास्ते के किनारे, और मिल गई एक बसनी, भरी हैं सोने की अशर्फियां! ये कल्पना-जाल हैं। ये सारी चीजें तो कुछ करने से मिलती हैं। इनके पीछे कर्ता चाहिए; खूब सघन अहंकार चाहिए।
लेकिन कुछ चीजें जगत में हैं, जो बिना किए घटती हैं। और वही असली मूल्यवान हैं। जो चीजें तुम्हारे करने से घटती हैं, उनकी कीमत होती है, मूल्य नहीं होता। कीमत और मूल्य पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। कीमत यानी प्राइस; मूल्य यानी वेल्यू। कीमत होती है उन चीजों की, जिनको हम करते हैं।
और मूल्य होता है उन चीजों का, जो हमारे बिना किए घटित होती हैं।
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
वे धन और पद के संबंध में नहीं कह रहे हैं। अगर मलूकदास की बात चरणसिंह मान लें, तो मामला गया! फिर कभी चेयरसिंह नहीं हो सकेंगे! चरणसिंह ही रह जाएंगे। कहां चरण और कहां चेयर, जरा सोचो भी तो! चरण से चले और चेयर पर पहुंचे! दास मलूका की बिल्कुल नहीं मानी होगी। दास मलूका कितना ही कहते रहे, ध्यान ही नहीं दिया होगा, कान ही नहीं दिया होगा--कि हे मलूकदास! तुम चुप रहो। अभी न बोलो।
लेकिन दास मलूका कुछ और ही बात कह रहे हैं। वे इस काम-धंधे की दुनिया
की बात नहीं कर रहे हैं। वे मूल्यों की बात कर रहे हैं--ध्यान, प्रेम, आनंद। ये सारी की सारी घटनाएं आकाश से उतरती हैं, अज्ञात से उतरती हैं। इन्हें पाने के लिए तुम्हें सक्रिय चेष्टा नहीं करनी पड़ती, तुम्हें निष्क्रिय ग्राहक होना पड़ता है। इनके लिए तुम्हें स्त्रैण होना पड़ता है, पुरुष नहीं। तुम्हें अपने भीतर गर्भ निर्मित करना होता है। उस गर्भ-निर्माण की प्रक्रिया को ही मैं संन्यास कहता हूं।
तुम कहते होः "आपने क्या कर दिया है?"
मैंने कुछ नहीं किया। और तुम्हारा कहना ठीक है, क्योंकि तुमने भी कुछ नहीं किया है। इसलिए तुम अब और किस पर दोष दो! तुमने कुछ किया नहीं, और जादू हो गया है--तो अब तुम दोष किसको दो!
मेरी पुरानी गाड़ी बिकी; नई गाड़ी आ गई। तो बलजीत, जो मुझे नई-पुरानी गाड़ियां लाता ले जाता है, उसने जिसको वह गाड़ी बेची, वह पंद्रह साल से विवाहित है दंपति, लेकिन बच्चे पैदा नहीं हुए। गाड़ी क्या खरीदी, स्त्री गर्भवती हो गई! फूलमालाएं और मिठाइयां और भेंटें लेकर वे लोग बलजीत के पास पहुंच गए। बलजीत बेचारा घबड़ाया। सीधा-सादा सरदार! उसने कहा, इसमें अपना कोई हाथ नहीं! उसने कहा, होगा भगवान का। उसने कहा, भैया, तुम अगर सच्ची बात जानना चाहो, तो यह गाड़ी उनकी है, यह उस दरवाजे पर रही है। ये भेंट इत्यादि तुम उन्हीं को चढ़ाओ।
फिर अब तो बच्चे भी हो गए। और एक झंझट हो गई। एक नहीं बच्चा--दो बच्चे पैदा हुए! तब तो बात बिल्कुल पक्की ही है कि हाथ कुछ बड़ा है पीछे! चौदह-पंद्रह साल से एक नहीं हो रहा था, अब छप्पर फाड़ कर एकदम दो हो गए! अब बलजीत मुझे खबर किया है कि वे आते ही हैं आज नहीं कल में यहां!
मेरा भी कोई हाथ नहीं है। यह दोष मैं भी नहीं ले सकता। और बेचारी गाड़ी
का तो क्या कसूर होगा! इसमें कोई दोषी नहीं है। यह घटना जरूर घटी है। और हमारा तर्क यह कहता है कि जरूर कोई न कोई जिम्मेवार होना चाहिए। कहीं न कहीं जब तक हम जिम्मेवार आदमी को न पा लें, तब तक हमारे मन में खुजलाहट रहेगी, खुजली चलती रहेगी, कि हुआ कैसे? आखिर पंद्रह साल से क्यों नहीं हुआ? अचानक कैसे हुआ?

ठीक ऐसी ही हालत तुम्हारी है कृष्णदास। तुम कहते होः "आपने क्या कर दिया?"
भैया, मुझे माफ करो! मैंने कुछ किया नहीं। एक बेटा पैदा हो कि दो बेटे पैदा हों--मेरा कोई हाथ नहीं।
और तुम कहते होः "मैं ऐसा आनंदित तो कभी भी न था!"
सो तुम ठीक ही कहते होओगे। लेकिन मैं जानता हूं कि प्रश्न उठने शुरू होते हैं कि फिर यह हुआ कैसे? अभी तक तो नहीं हुआ था। आज अचानक हुआ, यहां आकर हुआ। तो जरूर किसी ने किया होगा!
करने की धारणा को छोड़ो। हुआ जरूर है, यह बात पक्की है। अगर करने की धारणा रखोगे, तो वही भ्रांति पैदा होगी जो तुम कहते होः शायद इसीलिए लोग कहते हैं कि आप सम्मोहित करते हैं। करने की धारणा अगर रही, तो फिर जरूर-- सम्मोहित कर लिए गए, वशीकरण कर लिया गया; मैंने कोई जादू-टोना कर दिया; कि तुम्हें कुछ मूर्च्छित कर दिया; कि तुम्हें कुछ भ्रांतियां पकड़ा दीं; कि तुम्हें पागल बना दिया!
लोगों को तो यह भी डर है... । किसी ने मुझे कहा कि वे यहां आते नहीं। खबर भेजी है कि उन्हें कहा गया है कि आश्रम में तो जाना ही मत। और अगर कभी जाओ भी, तो वहां कोई चीज खाना-पीना मत। क्योंकि वहां खाने-पीने की चीजों में मादक द्रव्य मिले हुए हैं। जो लोग खा-पी लेते हैं, बस वे गए काम से! पानी मत पीना वहां का। क्योंकि उसमें एल एस डी, कि मारिजुआना, कि हशीश, कि अफीम, पता नहीं क्या मिला हो! क्योंकि वहां जो भी जाता है, मस्त होकर लौटता है। ऐसी मस्ती तो अफीमचियों में देखी जाती है--कि भंगेड़ी, कि गंजेड़ी! इस तरह की मस्ती भले आदमियों में कहीं देखी जाती है! कि रखते हैं पैर कहीं और पड़ता है पैर कहीं!
लोगों का भी तर्क वही है, कृष्णदास। वे भी यह सोचते हैं कि कुछ न कुछ किया जा रहा होगा। नहीं तो इतने लोग कैसे बंधे चले जाते हैं! जब कि सारी दुनिया विरोध कर रही हो, जब कि जगह-जगह मुझे गालियां पड़ रही हों, तब भी कुछ दीवाने हैं कि फिक्र ही नहीं करते। लाज-संकोच भी होता है आदमी को। फिर भी चले आते हैं! तो जरूर कुछ रस लग गया है। कुछ बात ऐसी है कि तलफ सताती है। कुछ लत पकड़ गई है।
नहीं कृष्णदास, न कोई सम्मोहन है, न कोई अफीम है, न कोई गांजा है, न कोई भांग है। इधर मैं आनंदित हूं। काश तुम इतना ही कर सको कि तुम भी शांत मेरे पास बैठ सको, तो निश्चित आनंदित हो जाओगे। आनंद बहुत संक्रामक है। आनंद से ज्यादा संक्रामक तत्व इस जगत में दूसरा नहीं है। और तुमने कई बार अनुभव किया होगा। किसी नर्तक को नाचते देखा है, और बैठे-बैठे तुम्हारे पैरों में पुलक नहीं हो आती! तुम बैठे-बैठे ही कुर्सी पर पैरों से ताल नहीं देने लगते! तब तुमने देखा क्या हो रहा है? नर्तक ने तुमसे कहा नहीं कि नाचो। नर्तक नाच रहा है, तुम्हारे पैर क्यों ताल देने लगे? गायक गा रहा है, कि मृदंग कोई बजा रहा है, कि सितार किसी ने छेड़ी है, कि तबले पर कोई ताल दे रहा है--और तुम भी हाथ से ताल देने लगे कुर्सी पर। तुम्हें क्या हो गया है? पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उस सिद्धांत को वह कहता था सिंक्रानिसिटी। विज्ञान का एक सिद्धांत हैः कार्य-कारण, कॉजेलिटी। कि हर चीज का कारण होता है, बिना कारण के कोई चीज नहीं होती। जुंग ने कहा कि कुछ चीजें बिना कारण के होती हैं, उनके लिए हमें एक नया सिद्धांत खोजना चाहिए। उसको उसने सिंक्रानिसिटी कहा--एक लयबद्धता।
अब जैसे कोई नाच रहा है, तो सभी देखने वालों के पैर थाप नहीं देते। अगर सभी के पैर थाप दें, तो यह कार्य-कारण का सिद्धांत हुआ। कोई बच ही नहीं सकता; पैर में थाप देनी ही पड़ती। जैसे सौ डिग्री तक पानी गरम किया, भाप बनेगा ही बनेगा। फिर तिब्बत में गरम करो, कि चीन में, कि भारत में, कि पाकिस्तान में। फिर पानी यह नहीं कह सकता कि यह पाकिस्तान है, यह पवित्र भूमि है। पाकिस्तान यानी पवित्र भूमि।
तुमको बहुत दिन से भ्रम था कि भारत है पवित्र भूमि। जिन्ना ने तोड़ दिया। उसने कहा, क्या तुम बकवास लगा रखे हो! पाकिस्तान पवित्र भूमि! नाम ही रख दिया देश का पवित्र-भूमि, अब और क्या करोगे! छोड़ो बकवास--पुण्य पावन

भूमि भारत देश! पाकिस्तान में कुछ जल्दी पानी गरम नहीं हो जाएगा, कि अट्ठानबे डिग्री पर हो जाए। कायदे-आजम जिन्ना की इतनी भी फिक्र नहीं करेगा पानी। और न ही भारत में--कि इतने ऋषि-मुनि हो गए; कि कुछ तो ख्याल करो, कुछ तो लाज रखो! बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर, नानक--हजारों ज्योतिर्मय पुरुषों की परंपरा है। जरा कुछ तो ख्याल रखो! जब तिब्बत में भी सौ डिग्री पर गरम होते हो, तो यहां तो पंचानबे डिग्री पर हो जाओ। कुछ तो दया-भाव रखो! लेकिन नहीं, पानी सौ डिग्री पर ही गरम होता है, कहीं भी गरम करो। सौ डिग्री पर ही भाप बनता है। यह कार्य-कारण का सिद्धांत है। इसमें कोई अपवाद नहीं होता।
लेकिन नर्तक नाचे, कत्थक चलता हो, तो सभी के पैर नहीं थाप देते। किसी
का देता है पैर थाप, किसी का नहीं देता। कोई तो ऊबा सा दिखाई पड़ता है कि कब निकल भागें! कोई सोचता हैः यह भी क्या बकवास हो रही है! ता-ता थई-थई, ता-ता थई-थई--यह क्या मचा रखा है!
इसको जुंग ने कहा सिंक्रानिसिटी। जो व्यक्ति भी तालमेल में आबद्ध हो जाता है, तो कुछ, किसी अज्ञात मार्ग से संक्रमित होता है। नर्तक से नर्तन दर्शक तक पहुंच जाता है। दर्शक के हृदय को आंदोलित कर देता है। गायक का गीत तुम्हें रोमांचित कर देता है।
ठीक ऐसी ही घटना सत्संग में घटती है। वह परम गीत है, परम नृत्य है, परम संगीत है।
अगर तुम कृष्णदास, मौन होकर यहां बैठ सको, तो बस काफी है। न मुझे कुछ करना पड़ेगा, न तुम्हें कुछ करना पड़ेगा--और कुछ होगा। और जब कोई चीज होती है बिना किसी के किए, तो उसमें मूल्य होता है। उसकी कीमत नहीं होती। उसको खरीदा नहीं जा सकता, बेचा नहीं जा सकता। उसका कोई बाजार-भाव नहीं। वह बाजार की वस्तु नहीं। और जहां कोई ऐसी चीज घटती हो, जो न तुमने की, न मैंने की--जिसको किसी ने भी नहीं किया; जो घटी अपने से, स्वस्फूर्त--वहीं समझना मंदिर है। जहां मूल्य बरसते हैं, वहीं मंदिर है।
फागुन को है खुद अब तक हैरानी
जाने तुमको क्या सूझी शैतानी
यह भी कोई वर्षा का मौसम था--तुमने पलकों में सावन घोल दिया।
जैसे-तैसे पथ की बाधाओं से
बच कर आया मंदिर के द्वारे पर,
लेकिन आंगन ने ठुकराया मुझको
दुश्मन दुनिया के एक इशारे पर,
जीवन कोलाहल से भर डाला है
तुमने बिन सोचे क्या कर डाला है
दुख के पग में बेड़ी पहनानी थी--उलटे हाथों का बंधन खोल दिया। जी में आता सूरज की आंखों में
भोले-भोले से दो आंसू भर दूं,
मन करता है चंदा के पांव लगूं
माथे पर मन का राज-मुकुट धर दूं,
जाने बुन कैसा जाल दिया तुमने
मुझको मुश्किल में डाल दिया तुमने तुमको दुनिया का कर्ज चुकाना था बदले में मेरा जीवन तौल दिया! सुख तो कोई दुर्लभ-सी वस्तु नहीं
जब चाहो आदर के बदले ले लो,
दुनिया को अपनी पावनता दे दो
फिर चाहो जिस सिंहासन से खेलो,
जीवन आंधी बन कर झकझोर दिया
मुझको तुमने काजल में बोर दिया
मैंने तुमको बेमौसम फूल दिए--तुमने जाकर पतझर को बोल दिया। मेरी आंखों में सावन घोल दिया।
फागुन को है खुद अब तक हैरानी
जाने तुमको क्या सूझी शैतानी

यह भी कोई वर्षा का मौसम था--तुमने पलकों में सावन घोल दिया।
कृष्णदास, तुम्हारी पलकों में सावन उतर रहा है; तुम्हारी पलकों में फूल उतर रहे हैं। तुम्हारे जाम में फूल ही फूल तैर जाएंगे। लेकिन कृत्य की भाषा भूल जाओ। न तुम कुछ कर रहे, न मैं कुछ कर रहा हूं। हां, कुछ हो रहा है जरूर। हो रहा है खूब। हो रहा है भरपूर। यही तो रहस्य है सत्संग का। यही तो राज है। नहीं कोई कुछ करता, और जो होने योग्य है, हो जाता है। जीवन बदलते हैं, रूपांतरित होते हैं, क्रांतियां घट जाती हैं। और ऐसी ही क्रांतियों का मूल्य है। जो करने से होती है क्रांति--दो कौड़ी की। जो बिन किए हो जाती है!
अगर मैं कुछ करूं, तो तुम पर मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी। फिर मुझे तुम्हें आचरण देना पड़ेगा; अनुशासन देना पड़ेगा; जीवन को जीने की एक शैली देनी पड़ेगी। फिर मैं तुम्हारा मालिक हो जाऊंगा, तुम मेरे गुलाम हो जाओगे। फिर तुम कारागृह के कैदी हो जाओगे। मुझे तुम्हारे हाथों में जंजीरें डालनी पड़ेंगी, तुम्हारे गले में बंधन डालने पड़ेंगे। मुझे तुम्हारी मुक्ति छीन लेनी होगी।
शायद तुम थोड़े ज्यादा शांत हो जाओ। शायद तुम थोड़े कम चिंतित रहो। शायद तुम ज्यादा थिर हो जाओ। मगर वह थिरता बड़ी महंगी होगी। स्वतंत्रता के मूल्य पर जो मिले, उस थिरता की कोई कीमत नहीं। और बेड़ियां पहन कर अगर थोड़ी शांति भी मिल जाए, तो वह शांति वरणीय नहीं है।
मैं तुम्हें आचरण नहीं देता, क्योंकि सब दिए गए आचरण बंधन बन जाते हैं। मैं तुम्हें अनुशासन नहीं देता, क्योंकि सब दिए गए अनुशासन, सदियों- सदियों में, कैदी पैदा किए हैं; मनुष्य को मार डाला है। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं। मैं तुम्हें सत्संग देता हूं, बस। मैं तुम्हें अपने साथ होने का आमंत्रण देता हूं, बस। मेरे साथ डोलो। मेरी आंखों में झांको। मेरे सामीप्य में डूबो। मुझे पीयो। और तुम्हारी स्वतंत्रता अछूती रहे-- अस्पर्शित। मैं तुम्हें कोई शैली कभी न दूं। तुम्हारी जीवन-शैली तुम्हारी ही चेतना से जन्मे; और तुम्हारा आचरण तुम्हारे अंतःकरण से प्रकट हो। तुम्हारा बोध ही तुम्हारे जीवन में दिशा-सूचक बने, मैं तुम्हें कोई दिशा न दूं। तो ही यह क्षेत्र बुद्ध-क्षेत्र होगा। अन्यथा यह भी एक नया कारागृह होगा।
कारागृह तो बहुत हैं दुनिया में; और एक नया कारागृह बनाने की क्या जरूरत है! आचरण देने वाले, चरित्र देने वाले, व्रत-नियम-उपवास देने वाले तो बहुत हैं दुनिया में। उस भीड़ में मैं खड़ा नहीं हो जाना चाहता। मैं उस भीड़ से पृथक हूं। और मैं भी तुम्हें किसी भीड़ का हिस्सा नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें व्यक्तित्व देना चाहता हूं--ऐसा व्यक्तित्व, जो अपने भीतर से जीता है, जो अपने प्रकाश से चलता है, जो अपने बोध के अतिरिक्त और किसी बोध को स्वीकार नहीं करता।
और मैं जानता हूं, आश्वस्त हूं, कि तुम्हारा बोध जगेगा, तो वह वही होगा
जो कृष्ण का था, वही होगा जो बुद्ध का था, वही होगा जो जीसस का था, वही होगा जो मेरा है। क्योंकि बोध और बोध में भिन्नता नहीं होती। प्रकाश और प्रकाश में भेद नहीं होता। दीयों में भेद हो सकता है, ज्योति में क्या भेद हो सकता है!
यह कोई सम्मोहन नहीं है; कोई जादू नहीं है। और फिर भी जादू है। जादू है
इस अर्थों में कि मैं कुछ कर नहीं रहा, तुम कुछ कर नहीं रहे--और कुछ हो रहा है। तुम किसी को समझाओगे, समझा न पाओगे। व्याख्या देना चाहोगे, दे न पाओगे। कुछ अव्याख्य घटित हो रहा है। जहां यह अव्याख्य घटित होता है, संक्रमित होता है, वहीं तीर्थ निर्मित होते हैं। वहीं है काबा; वहीं है काशी; वहीं है कैलाश।
तुम धन्यभागी हो कि एक नये बनते काबा में तुम्हारा सहयोग है! एक नई बनती काशी में तुम्हारे भी हाथ के चिह्न होंगे! इस उठते कैलाश में एक शिलाखंड तुम्हारा भी है! अपने को बड़भागी जानना। अपने को धन्यभागी जानना।
और परमात्मा को जितना धन्यवाद दे सको इसके लिए, मानना कि थोड़ा है।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
सातवां प्रवचन

अभीप्सा का जन्म

पहला प्रश्नः यह परमात्मा की खोज क्या है? लोगों को इस खोज में लगे देखता हूं तो चकित होता हूं। मैं स्वयं तो ऐसी कोई आकांक्षा या अभीप्सा अपने भीतर नहीं पाता हूं!

सुरेंद्रनाथ! परमात्मा की खोज तो एक ऐसा मधुर रोग है कि जिसे लगे, वही जाने। यह तो स्वाद है। और स्वाद शब्दों में व्यक्त नहीं होते। यह तो अंतर्तम में उठी एक अभीप्सा है, जिसके लिए कोई कारण दिया नहीं जा सकता। उठे तो उठे; न उठे तो न उठे। इसलिए संतों ने कहा है कि परमात्मा को वे ही खोजते हैं, जिन्हें परमात्मा खोजता है। इसके पहले कि तुम उसकी अभीप्सा करो, वह तुम्हें पुकारे, तो ही अभीप्सा पैदा हो सकती है।
और तुम्हारा प्रश्न सम्यक है, क्योंकि जिसको प्यास न लगी हो, वह प्यास
से तड़पते आदमी की मुसीबत क्या समझे! जो मरुस्थल में हो और प्यास से तड़फा जा रहा हो, मछली की तरह तड़फता हो, और जिसका रोआं-रोआं एक ही बात, एक ही चाह करता हो--एक घूंट पानी मिल जाए; उसकी परिस्थिति, उसकी मनःस्थिति--जो मरुस्थल में कभी प्यासा नहीं हुआ है, उसे समझ में भी आए तो कैसे समझ में आए! वह तो हंसेगा। वह तो समझेगा, कोई नाटक है, कोई अभिनय है। वह तो सोचेगा, कोई विक्षिप्तता है।
परमात्मा की खोज मनुष्य के भीतर तब संभव होती है, जब और सब प्रेम-पात्र असफल हो जाते हैं। धन को किया प्रेम, और कुछ न पाया। पद को किया प्रेम, और कुछ न पाया। प्रियजन, मित्र, परिवार, पति-पत्नी, भाई-बंधु--सब को किया प्रेम, और हाथ खाली के खाली रहे। और गागर न भरी सो न भरी। जिसके जीवन में प्रेम के और सारे आयाम असफल हो गए हैं, उसके भीतर परमात्मा की अभीप्सा पैदा होती है। वह प्रेम की अंतिम चुनौती है; वह प्रेम की अंतिम पुकार है। परमात्मा, प्रेम का अंतिम पात्र है। इसलिए जिनके जीवन में और प्रेम अभी महत्वपूर्ण हैं, अभी जिन्हें आशा बंधी है, जिनकी आंखें अभी इस आश्वासन से भरी हैं कि संसार में कुछ मिल जाएगा--आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों-- वे परमात्मा की खोज को नहीं समझ पाएंगे। परमात्मा की खोज तो केवल वे ही समझ सकते हैं, जिनकी और सारी खोजें निष्फल हो गईं, समग्ररूपेण निष्फल हो गईं। जिन्होंने सब जगह टटोल कर देख लिया, रिक्तता पाई। जिनके हाथों में हीरे आए, और पाया कि राख थे। सोना आया, और पाया कि मिट्टी थी। संबंध बने और बिगड़े, और पाया कि पानी के बबूले थे। बहुत राग, बहुत आसक्तियां, बहुत लगाव-- लेकिन सब स्वप्न सिद्ध हुए। जैसे पानी पर खींची गई लकीरें, खिंच भी न पाएं और मिट जाएं। जिन्होंने जीवन को सब दिशाओं से जांचा-परखा और व्यर्थ पाया है, वे परमात्मा की खोज पर निकलते हैं।
सुरेंद्रनाथ, तुम परमात्मा की चिंता अभी न करो। और न उनकी चिंता करो,
जो परमात्मा की अभीप्सा से भरे हैं। अभी तो तुम यह देखो कि तुम्हारा प्रेम क्या मांग रहा है--धन, पद, प्रतिष्ठा, प्रियजन? अभी तो तुम अपने प्रेम को परखो।
अभी तुम्हारा प्रेम कुछ क्षुद्र मांग रहा होगा। तुम्हारा प्रेम अभी किसी सीमित दिशा में गति कर रहा होगा। तुम्हारा प्रेम अभी संसार से हारा नहीं है। तुम्हारा प्रेम अभी विषादग्रस्त नहीं हुआ है। तुम्हारे भीतर विषाद-योग पैदा नहीं हुआ है। तुमने अभी प्रेम की व्यर्थता, आत्यंतिक व्यर्थता से परिचय नहीं बनाया है। अभी आशा का दीया जल रहा है। अभी टिमटिमा रही है ज्योति। कल, आने वाले कल में अभी तुम्हारी आशा टिकी है, सपने टिके हैं।
इसलिए तुम्हें हैरानी होती होगी, तुम चकित होते होओगे। तुम्हारा चकित होना मुझे चकित नहीं करता। तुम्हारा आश्चर्य से भरना मुझे आश्चर्य से नहीं भरता। यह स्वाभाविक है। तुम सोच-विचार वाले व्यक्ति हो। तुम्हारे मन में यह बात समझ में नहीं आती कि लोग क्यों परमात्मा की खोज में लगे हैं?

परमात्मा यानी क्या? तुम्हारे लिए कुछ परमात्मा शब्द में अभी अर्थ भी नहीं है। अभी यह शब्द कोरा है, खाली है, शब्द-मात्र है, अर्थशून्य है, अर्थ-रिक्त है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। न ही परमात्मा तुम से बाहर कोई शक्ति है। परमात्मा है तुम्हारे भीतर प्रेम का वापस लौट आना। समझने की थोड़ी कोशिश करो।
साधारणतः प्रेम बहिर्मुखी है, जैसे गंगा सागर की तरफ बहती है। पहाड़ों
से उतरती है, नीचाइयों की तरफ बहती है। इस संदर्भ में उचित होगा कि तुम्हें मैं एक शब्द समझाऊं।
पुराने शास्त्रों में उल्लेख है कि कृष्ण के पास बहुत गोपियां नाचती हैं, गोप नाचते हैं, रास रचता है। कभी किसी पूर्णमासी की रात्रि में वृंदावन के वंसीवटों में बांसुरी बजती है, कृष्ण घूंघर पहनते हैं, मोर-मुकुट बांधते हैं, उनके आस-पास सुंदरियों का मेला लगता है। जैसे चांद-तारे सजे हों। जैसे तारों की बारात निकली हो। जैसे दीपावली हुई हो। उन्हीं शास्त्रों में उल्लेख है कि एक ऐसी भी प्रेयसी है, जो छाया की तरह कृष्ण के पीछे चलती है। उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं है। और गोपियों के नाम का उल्लेख है। लेकिन उस एक के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। और वही छाया की भांति चलती हुई जो गोपी है, बाद में, हजारों साल बाद, राधा के नाम से जानी गई। वह नाम संतों ने दिया। राधा नाम की कोई स्त्री का उल्लेख पुराने शास्त्रों में नहीं है। यह तो हजारों साल बाद, कोई तीन हजार साल बाद संतों ने नाम दिया--राधा। और बड़े गहरे अर्थ उस शब्द में हैं।
गंगा बहती है गंगोत्री से, हिमालय से। जाती है सागर की तरफ--अधोमुखी। गंगा की इस अवस्था को कहते हैं--धारा। और अगर गंगा उलटी बहने लगे--गंगासागर से गंगोत्री की तरफ बहने लगे; नीचाइयों से ऊंचाइयों की तरफ बहने लगे; मैदानों से पहाड़ों की तरफ बहने लगे--तो उस उलटी हो गई धारा को कहेंगे राधा।
राधा धारा का उलटा है।
जिन संतों ने उस छाया मात्र, अनाम कृष्ण की प्रेयसी को राधा नाम दिया, अदभुत काम किया। बड़ा अर्थपूर्ण, बड़ी गहराइयां लिए हुए यह नाम है--राधा। प्रेम साधारणतः बहिर्मुखी है। जैसे गंगा। चली सागर की तरफ। प्रेम जब अंतर्मुखी हो जाता है, जब धारा राधा बनती है; जब प्रेम बाहर की तरफ नहीं जाता--न धन, न पद, न प्रतिष्ठा, न पति, न पत्नी--जब प्रेम बाहर की तरफ नहीं जाता वरन अंतर्यात्रा शुरू होती है; सब जगह जहां बाहर प्रेम अटका था, वहां- वहां से मुक्त होता है और वापस लौटने लगता है गंगोत्री में; जब प्रेम राधा बनता है, तो कृष्ण से मिलन होता है। अपने से ही मिल जाना कृष्ण से मिलना है। अपने ही आकर्षण के केंद्र से संयुक्त हो जाना, कृष्ण से मिलना है। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है--जो आकर्षित करे। अंग्रेजी में शब्द है-- मैग्नेटिज्म। वह ठीक कृष्ण शब्द का रूपांतर है। चुंबकीय। कृष्ण का अर्थ होता है, जो आकृष्ट करे; खींच ले; चुंबक जैसा खींच ले। जैसे लोहे के छोटे- छोटे टुकड़े चुंबक की तरफ खिंचते हुए चलते हैं, ऐसे ही तुम्हारे भीतर छिपा है कोई रहस्य। जब तुम्हारी प्रेम की सारी किरणें उसी रहस्य की तरफ चुंबक की तरह खिंच चलती हैं; जब तुम्हारे भीतर के कृष्ण की तरफ तुम्हारे प्रेम की अनंत धाराएं जो तुम जन्मों-जन्मों में बाहर बहाते रहे हो--न मालूम कहां- कहां; न मालूम किन-किन दिशाओं में--वे सब धाराएं जब लौटने लगती हैं घर की तरफ, तो तुम्हारे भीतर रास निर्मित होता है। तुम्हारी चेतना का केंद्र-- कृष्ण; और तुम्हारे प्रेम की ऊर्जा लौटती हुई--गोपियां, सखियां। तुम्हारे भीतर एक नृत्य का आयोजन होता है, एक उत्सव का आयोजन होता है। सुरेंद्रनाथ, परमात्मा की खोज अपनी ही खोज है। तुमने जिन लोगों को परमात्मा को खोजते देखा है, वे भी शायद परमात्मा को नहीं खोज रहे हैं। कोई राम को खोज रहा है--मंदिर में। कोई अल्लाह को खोज रहा है--मस्जिद में। यह तो खोज अब भी बाहर चल रही है। यह खोज परमात्मा की खोज नहीं है। यह तो वही पुरानी खोज है, सिर्फ नाम बदल दिया है। पहले धन खोजते थे; अब धन नहीं खोजते, अब राम खोजते हैं। मगर पहले भी बाहर खोजते थे; अब भी बाहर खोजते हैं। धन खोजते थे, तो जाते थे दूर-दूर की यात्राओं पर। अब परमात्मा को खोजते हैं,

तो काशी जाते हैं, काबा जाते हैं। वही यात्राएं; जरा भी भेद न पड़ा। रंच मात्र भेद न पड़ा। रत्ती भर क्रांति नहीं हुई है।
जिस दिन तुम खोज पर जाना बंद कर देते हो; सारी खोज सिकुड़ आती है अपने भीतर। जिस क्षण तुम अपने पंखों को समेट लेते हो; अपने भीतर डुबकी मार कर बैठ जाते हो--उस क्षण परमात्मा की खोज शुरू हुई। जब तुम किसी को ध्यान में डूबा देखो, तो जानना कि परमात्मा की खोज है। कि मस्ती में मस्त देखो, अपने में लीन देखो, तो जानना कि परमात्मा की खोज है। कोई चला हज की यात्रा को, इससे मत सोच लेना कि परमात्मा की खोज है।
मुसलमान फकीर बायजीद ने कहा है, जब मैं पहली दफा काबा गया, तो मैंने काबा का पत्थर देखा। और जब मैं दुबारा काबा गया, तो मैंने काबा के मालिक को देखा। और जब मैं तीसरी बार काबा गया, तो न काबा का पत्थर था, न काबा का मालिक था; बस मैं था। मैंने अपने को देखा।
तीसरी बार हज हुआ। अगर तुम मुझसे पूछो, तो मैं कहूंगा, बायजीद की पहली
दो यात्राएं काम न आईं। तीसरी यात्रा काम आई। और तीसरी यात्रा के लिए काबा जाने की कोई जरूरत न थी। जहां भी बायजीद ने आंख बंद कर ली होतीं, वहीं अपने को देख लिया होता।
प्रेम की खोज ही परमात्मा की खोज है। और प्रेम का स्रोत तुम्हारे भीतर है।
प्यासा जियरा भर-भर आता, इन नयनों की कोर में
अपने आंसू बांधूं किसके, कोमल अंचल छोर में?
है यह कैसी पावन तृष्णा, जोगन के जो वेश में--डोल रही है व्याकुल मन के, अनदेखे परदेश में
प्राण मचलते बंध जाने को किसकी करुणा डोर में?
युग-युग से तप-तप कर किसकी, मोहक क्वांरी ज्वाल में
पागल सपने भटक रहे हैं, अंबर में, पाताल में
छबि के घूंघट उठते-गिरते, किसके विरह-झकोर में?
कूक रही हैं आहें, किसके, प्रेरित स्वर-लय-ताल से
किसकी सुधि से प्राण हृदय के, बज उठते करताल से
जप-माला बन जाती पीड़ा, किसकी नेह हिलोर में?
प्यासा जियरा भर-भर आता, इन नयनों की कोर में
अपने आंसू बांधूं किसके, कोमल अंचल छोर में?
एक प्रेम की अपूर्व ऊर्जा है तुम्हारे भीतर। अनंत स्रोत हैं उसके। न चुकने वाली संपदा है वह। किसके आंचल में उंडेल दो? सब आंचल छोटे पड़ते हैं। किसको दे दो? सब पात्र छोटे हैं। और तुम्हारे भीतर देने को आकाश जैसा प्रेम है। आकाश जैसा ही कोई पात्र भी चाहिए। उस पात्र का नाम ही परमात्मा है।
परमात्मा तो केवल प्रतीक है। इस प्रतीक को, इस काव्य-संकेत को बहुत जोर से मत पकड़ लेना। बस वहीं भूल हो जाती है। फिर परमात्मा मंदिर की मूर्ति बन जाता है। और तुम धार्मिक नहीं रह जाते, तुम काफिर हो जाते हो। फिर परमात्मा का कोई रूप-रंग हो जाता है, आकृति हो जाती है। जैसे ही तुमने परमात्मा को रूप-रंग दिया, आकृति दी--कुफ्र हुआ; पाप हुआ। क्योंकि परमात्मा निराकार है। सब रंग उसके हैं, फिर भी कोई रंग उसका अपना नहीं। और सब ढंग उसके हैं, फिर भी कोई ढंग उसका अपना नहीं। सब स्वर उसके हैं, लेकिन वह किसी एक स्वर में समाप्त नहीं। सारे स्वरों में है, और सारे स्वरों के पार है। सारे रंगों में है, और सारे रंगों के पार है। पास भी वही, दूर भी वही। मृत्तिका में भी वही, चैतन्य में भी वही। परमात्मा की खोज अस्तित्व की खोज है, आत्मा की खोज है। और अस्तित्व की खोज में जो पहला कदम है, वह स्वयं के भीतर ही उठाना होगा। जिसने अपने को नहीं जाना, वह और क्या जान सकेगा!
सुरेंद्रनाथ, चकित न होओ। क्योंकि कहीं ऐसा न हो, तुम्हारा यह चकित होना तुम्हारा दंभ बन जाए, अहंकार बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम सोचने लगो कि ये परमात्मा के खोजी बुद्धू हैं; बुद्धिहीन हैं; तर्कशून्य हैं; विचाररहित हैं। कहीं ऐसा न हो जाए दुर्भाग्य से, कि तुम्हारे भीतर ऐसा लगने लगे कि मैं बहुत प्रतिभाशाली हूं, इसलिए ये परमात्मा इत्यादि की

बातें मुझे नहीं जंचतीं। कि मेरे भीतर बड़ी प्रखर प्रतिभा है, बुद्धि है धारवाली, कि मेरे भीतर संदेह उठते हैं, ये अंधी श्रद्धाएं मुझे नहीं छू सकतीं। कहीं ऐसा दुर्भाग्य न हो जाए। अन्यथा तुम अपने से वंचित रह जाओगे। जिन पर तुम हंसोगे, जिन पर तुम चकित होओगे, उनकी कोई हानि नहीं है। हानि तुम्हारी अपनी हो जाएगी। आत्मघात होगा यह।
अगर लोग परमात्मा को खोज रहे हैं... और जीसस जैसा व्यक्ति खोज रहा है! बुद्ध जैसा व्यक्ति खोज रहा है! लाओत्सू जैसा व्यक्ति खोज रहा है! जरथुस्त्र, नानक, कबीर, फरीद... ऐसे-ऐसे अदभुत लोग खोज रहे हैं! सुरेंद्रनाथ, थोड़ा झिझको, थोड़ा ठहरो। ऐसा मत सोच लेना कि तुम्हारे भीतर संदेह उठते हैं तो ये तुम्हारी बहुत बुद्धिमत्ता के प्रतीक हैं। नहीं तो तुम एक ऐसी भ्रांति में पड़ जाओगे, जिसके बाहर आना मुश्किल हो जाता है। जन्म-जन्म लग जाते हैं।
तुमने पूछाः "यह परमात्मा की खोज क्या है?"
अपनी खोज! परमात्मा शब्द को छोड़ो, जाने दो। उस शब्द में मत अटको। उस शब्द में अटकाव हो जाता है। और अटकाव के कारण हैं। सदियों-सदियों में परमात्मा शब्द को पंडितों ने, पुरोहितों ने, पुजारियों ने इस तरह लूटा है, उस शब्द को ऐसा निचोड़ा है, उस शब्द का इतना शोषण किया है कि कोई भी सोच-विचार वाला व्यक्ति उस शब्द को सुन कर चौंक जाता है, सम्हल जाता है। उस शब्द को सुनते ही उसे लगता है, खतरा करीब है। सावधान! सावचेत हो जाता है। परमात्मा शब्द के पीछे पुजारी छिपा है, पंडित छिपे हैं, पुरोहित छिपे हैं, पादरी छिपे हैं। और उन्होंने आदमी के साथ जैसी ज्यादती की है, वैसी किसी और ने नहीं की। परमात्मा के नाम पर आदमी को ऐसे-ऐसे नाच नचाए, परमात्मा के नाम पर आदमी से ऐसे-ऐसे जघन्य कृत्य करवाए! हिंदू ने मस्जिदें जलाईं, मुसलमान काटे। मुसलमान ने मंदिर गिराए, मूर्तियां तोड़ीं, बलात्कार किए, हत्याएं की, आगजनी की। ईसाइयों ने मुसलमान काटे, मुसलमानों ने ईसाई काटे! परमात्मा के नाम पर इतना खून बहा, इतना रक्तपात हुआ, इतने युद्ध हुए। और उन सभी युद्धों को पंडित-पुरोहितों ने आशीर्वाद दिए। उन युद्धों को जिहाद कहा, धर्मयुद्ध कहा! उन युद्धों की प्रशंसा की, गरिमा की। शास्त्र कहते हैं कि जो धर्मयुद्ध में मरता है, वह तत्क्षण स्वर्ग जाता है! खूब प्रलोभन दिए लोगों को!
धर्मयुद्ध में उतरने के लिए और अच्छा प्रलोभन क्या होगा! तत्क्षण! फिर तुम्हारे पापों का हिसाब नहीं रखा जाता। फिर तुमने धर्मयुद्ध के पहले क्या-क्या पाप किए, क्या-क्या अनाचार किए, क्या-क्या अनीति की, उसका कोई लेखा-जोखा नहीं रखा जाता। धर्मयुद्ध में जो मर गया, वह सीधा, तत्क्षण स्वर्ग जाता है! उसे कहीं रुकावट भी नहीं पड़ती। द्वारपाल भी उसका दरवाजा नहीं छेंकते। कोई पूछताछ नहीं होती, कि तेरे जन्मों-जन्मों के पापों का क्या हुआ! वह कर्म का सिद्धांत एकदम पोंछ दिया जाता है; इस आदमी के लिए एक तरफ उठा कर रख दिया जाता है। वह सिद्धांत इस आदमी के लिए नहीं है।
लोगों को धर्मयुद्धों में उतारने के लिए कैसे-कैसे लालच, कैसी-कैसी रिश्वत--स्वर्ग की रिश्वत! बहिश्त की रिश्वत!
और पंडित-पुरोहितों ने कितना शोषण किया है आदमी का! उसका खून पीते रहे हैं--और परमात्मा का नाम! स्वभावतः, समझा जा सकता है। परमात्मा नाम सुनते ही विचारशील व्यक्ति चौकन्ना हो जाता है, सम्हल जाता है। अपनी जेब सम्हाल लेता है, कि पीछे कहीं कोई पंडित-पुरोहित छिपा होगा। खतरा करीब ही है। तुम परमात्मा शब्द को छोड़ो। यह शब्द गंदा हो गया। यह शब्द प्यारा था, लेकिन गंदे हाथों में पड़ गया। यह शब्द अदभुत था, क्योंकि इस शब्द का अर्थ होता है--परम आत्मा। इस शब्द की महिमा खूब है। यह आत्मा का शुद्धतम रूप। आत्मा की निर्मल अवस्था। आत्मा की परम पुनीत दशा। जैसे आत्मा के फूल से उड़ी सुगंध--ऐसा परमात्मा। कि आत्मा के दीये से झरती रोशनी--ऐसा परमात्मा। परमात्मा शब्द तो प्यारा है, लेकिन गलत लोगों के हाथ में पड़ गया। और गलत लोगों के हाथ में अच्छी चीजें भी पड़ जाएं, तो गलत हो जाती हैं। गंदे हाथों में सुंदर से सुंदर फूल गंदे हो जाते हैं। रुग्ण हाथों में स्वस्थ से स्वस्थ फूल रुग्ण हो जाते हैं, रोग के कीटाणुओं से भर जाते हैं।

लेकिन जाने दो। इस शब्द से क्या लेना-देना है! इस शब्द के बिना भी काम
हो सकता है। मैं तुमसे कहता हूं--प्रेम की खोज करो। छोड़ो परमात्मा को। तुम्हारे भीतर प्रेम की तरंग तो उठती है या नहीं? कभी आकाश से इस तरह धुआंधार होती वर्षा को देख कर तुम्हारे हृदय में भी कोई स्वर-ताल छिड़ता है या नहीं? कभी फूलों की हरियाली, फूलों का रंगीनपन, फूलों की सुर्खी देख कर तुम्हारे भीतर भी कोई लाली फैल जाती है या नहीं? कोई हरियाली फैल जाती है या नहीं? कभी ऊगते सूरज को देख कर तुम विभोर होते हो या नहीं होते हो? कभी सांझ जब सूरज डूबता है और उसकी आखिरी किरणें सफेद बदलियों पर रंग-बिरंगे ताने-बाने बुनने लगती हैं, तब एक क्षण को तुम्हारे भीतर विचार की सतत धारा ठहर जाती है या नहीं?
अगर हां, तो तुम भी परमात्मा की खोज में हो। परमात्मा को नाम दो प्रेम का। परमात्मा को नाम दो सौंदर्य का। परमात्मा को नाम दो सत्य का। अगर यह परमात्मा नाम ओछा पड़ गया, तो नाम से क्या लेना-देना है! आम खाने हैं या गुठलियां गिननी हैं?
फूल
दो क्षण झूल कर
मुरझा गया।
किंतु
उसका रूप
नयनों में गया बस,
और उसकी गंध
दिल को डस गई।
जानता हूं
रूप चिरस्थायी नहीं है
और यह जो गंध है,
आई-गई है।
किंतु
उसकी स्मृति,
मादक है, मदिर है
और मन में
इस तरह
कुछ बस गई है
कि
एक युग के बाद भी
जब देखता हूं
मन-मुकुर में
तो यूं लगता है
कि जैसे नित नई है।
तुम्हें सौंदर्य छूता है या नहीं? रात जब आकाश तारों से भर जाती है, तो कोई विस्मय-विभोर तुम्हारे भीतर होता है या नहीं? और जब आकाश में पूर्णिमा का चांद होता है, तो तुम्हारे भीतर भी--जैसे सागर में लहरें उठती हैं, ज्वार आता है--तुम्हारी चेतना में भी ज्वार आता है या नहीं?
अगर तुम्हारे प्राणों में अभी भी तारों को देख कर कोई झंकार होती है; चांद को देख कर तुम्हारा मन भी होता है कि बांसुरी उठा लो और बजाओ; और जब दूर कोयल कूकने लगती है, तो तुम्हारा हृदय भी कूक का उत्तर देने लगता है। और जब पपीहा पुकारता है पी कहां, तो तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं होता! सुरेंद्रनाथ, कुछ तो होता होगा। इतना दीन-दरिद्र आदमी तो कोई भी नहीं कि जिसको जगत में कोई भी चीज आंदोलित न करती हो, तरंगित न करती हो, आह्लादित न करती हो। बच्चे की किलकारी, किसी का हंसना, किन्हीं आंखों में झलक गए दो आंसू--तुम्हें छू जाते हैं या नहीं? तुम्हें कुछ रोमांचित करता है या नहीं? अगर कुछ भी तुम्हें रोमांचित करता है तो मैं कहता हूं, तुम धार्मिक व्यक्ति हो।
और निश्चित रोमांचित करता होगा, अन्यथा तुम यहां कैसे आते! तुम यहां आ
गए हो, तुम इस मदिर-मादक क्षण में यहां उपस्थित हो, इस सुंदर प्रभात में, इस

वर्षा की भीगी-भीगी प्रभात में, जब कि भूमि नई-नई वर्षा को पाकर अपनी सुगंध बिखेर रही हो, तुम यहां चले आए हो। पता नहीं कितने दूर से तुमने यात्रा की होगी। मैं कहता हूं, तुम भी खोजी हो। सिर्फ तुम्हारी खोज को परमात्मा का नाम देने में तुम्हें अड़चन है। छोड़ो नाम। नाम से क्या लेना-देना है! जो नाम प्रीतिकर लगे, वही दे दो।
बुद्ध ने उसे नाम दिया--निर्वाण। क्योंकि परमात्मा नाम से बुद्ध भी राजी नहीं थे। बहुत हो चुके थे यज्ञ-हवन। सब तरह की हत्याएं यज्ञ और हवन के नाम पर हो रही थीं। जिनको आज तुम देखते हो गौ-हत्या के विरोध में आंदोलन करते, उनसे जरा पूछो कि तुम्हारे ऋषि-मुनि क्या करते रहे? यहां गौमेध यज्ञ होते थे; यहां अश्वमेध यज्ञ होते थे। जब तक कोई अश्वमेध यज्ञ न करे, तब तक चक्रवर्ती सम्राट नहीं होता था। राम ने भी किया था अश्वमेध यज्ञ। और इतना ही नहीं, वेद तो नरमेध-यज्ञ की भी बात करते हैं, जिनमें मनुष्यों की बलि दी जाती थी। आज तो यह बात भी भरोसे की नहीं मालूम होती, संदेह खड़े होते हैं, लेकिन यह सचाई है।
बुद्ध ने इसका विरोध किया है। महावीर ने इसका विरोध किया है। ढाई हजार साल पहले बुद्ध ने इसके लिए इनकार किया है। परमात्मा के नाम पर इतना खून बहाया जा रहा था कि बुद्ध ने कहा कि नहीं, यह नाम अब काम का नहीं। अब हम नया नाम खोजेंगे। उन्होंने नया नाम खोजा--निर्वाण।
तो तुम्हें जो प्रीतिकर लगे--निर्वाण कहो, समाधि कहो, आत्मा कहो। इन सारे शब्दों में भी तुम्हें धर्म की गंध आती हो, क्योंकि इन सब शब्दों के साथ भी अब ढाई हजार साल का इतिहास जुड़ गया, तो सत्य कहो। लेकिन मेरा सुझाव अगर मानो, तो मैं कहूंगा प्रेम कहो। क्योंकि सत्य में कुछ बौद्धिकता की गंध आती है। जैसे कोई तार्किक निष्कर्ष। जैसे गणित। जैसे विचार से पाई गई कोई निष्पत्ति। प्रेम हार्दिक है, अनुभूतिगत है। प्रेम को खोजो, और परमात्मा मिलेगा। तुम प्रेम को खोजो, परमात्मा तुम्हें खोजेगा। तुम परमात्मा को छोड़ ही दो, भूल ही जाओ।
कबीर ने कहा है कि मैं परमात्मा को खोजता-खोजता फिरता था। नहीं मिला। नहीं मिला। नहीं मिला। और फिर एक दिन मैंने सारी खोज छोड़ दी। मैंने फिक्र ही छोड़ दी। और तब से उलटी हालत हो गई है। अब परमात्मा मेरे पीछे-पीछे लगा फिरता है--कहत कबीर-कबीर।
सुरेंद्रनाथ, तुम्हीं जीवन के परम सत्य को नहीं खोज रहे हो, परम सत्य
भी अपने हाथ तुम्हारी तरफ बढ़ा रहा है। तुम अगर सिकुड़ न जाओ, तुम अगर अपने में बंद न हो जाओ, तुम अगर खुले हो, राजी हो, आतुर हो, उत्सुक हो, प्यासे हो, अपने द्वार-दरवाजे खोलने के लिए साहस रखते हो--कि आ सके गंध, कि आ सके पवन, कि आ सके सूरज की किरण--तो परमात्मा मिलेगा; निश्चित मिलेगा। नाम, तुम्हारी जो मर्जी हो, दे लेना। मुझे नामों में रस नहीं है।
इसलिए नास्तिक भी मेरे पास आता है और कहता है, क्या मैं संन्यासी हो सकता हूं? मैं कहता हूं, निश्चित! क्योंकि नास्तिक भी सत्य की खोज में लगा है। सत्य की खोज में न लगा होता तो नास्तिक कैसे होता! नास्तिकता इतना ही कह रही है उसकी कि सत्य को मैंने खोजा है, और अभी पाया नहीं। पाया नहीं, तो मानूं कैसे? जब तक नहीं पा लूंगा, मानूंगा भी नहीं। यह तो ईमानदारी है। इसमें नास्तिकता कहां? इसमें बुराई कहां? पाप कहां? अधर्म कहां? यह तो निष्ठा है। यह तो सत्य पर श्रद्धा है। तो मैं तो नास्तिक को भी कहता हूं कि आओ, संन्यास तुम्हारा है। तुम नहीं संन्यास लोगे तो कौन संन्यास लेगा!
जो कहता है कि मुझे धर्म में कोई रस ही नहीं है; क्या मैं भी ध्यान कर सकता हूं? मैं कहता हूं, इतना ही रस काफी है कि तुमने पूछा कि क्या मैं भी ध्यान कर सकता हूं। और रस क्या चाहिए?
तुमने पूछा, तुम पूछने यहां तक आए--काफी प्रमाण है। सिर्फ शब्द से तुम्हें अड़चन है।
तुम कहते होः "परमात्मा की खोज क्या है?"
प्रेम की खोज--मेरा उत्तर!
सत्य की खोज--मेरा उत्तर!
तुम्हारे अपने स्वरूप की खोज--मेरा उत्तर!

और तुम कहते होः "लोगों को इस खोज में लगे देखता हूं तो चकित होता हूं।"
चकित तुम इसीलिए होते हो कि अब तक तुमने अपने भीतर झांक कर नहीं देखा
कि यही खोज तुम्हारे भीतर भी चल रही है। अभी तक तुमने खोज को पहचाना नहीं। अभी तक खोज अचेतन में चल रही है; उसे चेतन नहीं बनाया। और खोज चेतन बन जाए, तो सुरेंद्रनाथ, तुम एक अपूर्व संन्यासी सिद्ध होओगे।
खोज जब तक अचेतन होती है, अंधेरे-अंधेरे में होती है, तब तक हम टटोलते- टटोलते रहते हैं। जब खोज चेतन बनती है, तो हम दीया जला कर खोज करते हैं। और कुछ मिलेगा, तो दीया जलाने से मिलेगा। उस दीये का नाम ध्यान है। और उस दीये को जलाने की जो पृष्ठभूमि है, वही संन्यास है।
और तुम पूछते होः "मैं स्वयं तो ऐसी कोई आकांक्षा या अभीप्सा स्वयं के भीतर नहीं पाता हूं।"
तुम्हारे भीतर आकांक्षा भी है, अभीप्सा भी है। अन्यथा तुम यहां न होते। कौन तुम्हें लाता? कैसे तुम आते? यह प्रश्न तुमने न पूछा होता! यह प्रश्न सूचक है। हां, इतना जरूर सच है कि परमात्मा की खोज तुम्हारे भीतर नहीं मालूम हो रही है। लेकिन परमात्मा से क्या लेना-देना है! खोज तो तुम्हारे भीतर जरूर है।
तुम नहीं जानना चाहते यह जीवन क्या है? तुम नहीं जानना चाहते मैं कौन हूं? तुम नहीं जानना चाहते यह विस्तार किसका है? तुम नहीं जानना चाहते प्रथम क्या है, अंत क्या है? तुम नहीं जानना चाहते कि जीवन का गंतव्य क्या है, नियति क्या है?
ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं है जिसके भीतर सत्य की खोज न हो। मनुष्य की परिभाषा ही यही है--जिसके भीतर सत्य की खोज है। पशु और मनुष्य में इतना ही भेद है।

दूसरा प्रश्नः परमात्मा को कैसे तृप्त करूं?

सुदास भारती! परमात्मा तो परम तृप्ति है। परमात्मा को तृप्त नहीं करना है; तुम्हें तृप्त होना है। लेकिन तुम्हारे प्रश्न का अर्थ मैं समझा। तुम यह कह रहे हो कि मैं कैसा बनूं कि परमात्मा मुझसे तृप्त हो जाए। लेकिन परमात्मा तो तुमसे तृप्त है, तुम जैसे हो वैसे ही। परमात्मा को तुमसे जरा भी अड़चन नहीं है। तुम उसकी तरफ पीठ किए रहो, वह तृप्त है। तुम उसकी पूजा करो, वह तृप्त है। तुम उसे पत्थर मारो, वह तृप्त है। तुम फूल चढ़ाओ तो, तुम गीत गाओ तो, तुम गालियां बरसाओ तो। तुम उसे मानो तो, तुम उसे न मानो तो। तुम जन्मों-जन्मों में उसकी याद-फिक्र न करो तो; या तुम उसे रोज अहर्निश स्मरण करो तो। परमात्मा तृप्त है; अतृप्त होने का उसका कोई उपाय नहीं है। वह चाहे भी तो अतृप्त नहीं हो सकता।
ऐसा समझो कि परम तृप्ति का नाम ही परमात्मा है। इसलिए तो हमने परम तृप्त व्यक्तियों को भगवान कहा--बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को। ये परम तृप्त लोग हैं। इनके जीवन में कोई भी असंतोष का स्वर नहीं है। इनकी वीणा पर एक ही राग उठता है--परम तृप्ति का, तुष्टि का, परितोष का। ऐसे बजाओ कि वैसे बजाओ--इनकी बांसुरी से तुम असंतोष का स्वर पैदा नहीं कर सकते।
बुद्ध का एक शिष्य पूर्णकाश्यप ज्ञान को उपलब्ध हो गया, परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। उसने बुद्ध के चरणों में सिर रखा और कहा, मुझे आज्ञा दें कि जाऊं और आपने जो मुझे दिया है, वह औरों को बांटूं। बुद्ध ने कहा, मेरा आशीष। मगर मैं जानना चाहता हूं, तू कहां जाएगा--किस दिशा में, किस देश में, किन लोगों के बीच?
पूर्ण ने कहा कि मैं सूखा नाम के प्रांत में जाऊंगा--बिहार का एक हिस्सा था--क्योंकि वहां अब तक कोई भी भिक्षु नहीं गया।
बुद्ध ने कहा, तू यह इरादा छोड़ दे तो अच्छा। इतने से ही तुझे समझ लेना चाहिए कि अब तक वहां क्यों कोई भिक्षु नहीं गया। उस इलाके के लोग बड़े कठोर हैं, पाषाण हृदय हैं; हत्यारे हैं, चोर हैं, बेईमान हैं, लुटेरे हैं, ठग हैं। उस इलाके के लोगों में धर्म का प्रचार असंभव है। वे तेरी सुनेंगे ही नहीं, उलटे तुझे सताएंगे। बहुत दुष्ट प्रकृति के हैं। तू वहां न जा। इतना

बड़ा देश पड़ा है; बहुत पात्र हैं, जो प्रतीक्षा कर रहे हैं--वहां जा। उन अपात्रों के बीच क्यों जाना!
लेकिन पूर्ण ने कहा कि नहीं भगवन! मुझे वहीं जाने दें। आखिर उनको भी
तो जरूरत है। अगर कोई भी वहां न जाएगा, तो क्या वे आपके संदेश से वंचित ही रह जाएंगे! और सौ को कहूंगा, तो एक तो समझेगा। दस समझेंगे, तो एक तो चलेगा। दस चलेंगे, तो एक तो पहुंचेगा। इतना भी क्या कम है!
नहीं माना पूर्ण, तो बुद्ध ने कहा, इसके पहले कि तू जा, तीन प्रश्नों
के उत्तर दे दे। पहला कि वहां के लोग गालियां देंगे तुझे, तो तेरे मन में क्या होगा?
पूर्ण हंसने लगा। उसने कहा, आप भलीभांति जानते हैं। क्योंकि अब मेरा
मन और आपका मन कुछ अलग नहीं रहे। जो आपको होगा, सो मुझे होगा। फिर भी आप पूछते हैं, इसलिए निवेदन करता हूं कि अगर लोग मुझे गालियां देंगे, तो मेरे मन में होगा कि कितने भले लोग हैं कि गालियां ही देते हैं, मारते नहीं! बुद्ध ने कहा, और पूर्ण, दूसरा प्रश्नः अगर लोग मारें-पीटें; फिर तुझे क्या होगा?
पूर्ण ने कहा, यही कि कितने भले लोग हैं; सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते!
और बुद्ध ने कहा, पूर्ण, अंतिम और तीसरा प्रश्नः अगर वे लोग तुझे मार
ही डालें, तो जब तू अंतिम सांस ले रहा होगा, तो किस भाव से विदा होगा? पूर्ण ने कहा, यही भाव श्वास-श्वास में, रोएं-रोएं में गूंजेगा कि कितने भले लोग हैं; मुझे उस जीवन से छुटकारा दिला दिया, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी, जिसमें कहीं पैर फिसल सकता था। अब कोई भूल-चूक नहीं होगी। अब पैर फिसलने की संभावना न रही। मैं धन्यवाद देता हुआ, अनुगृहीत, विदा हो जाऊंगा।
बुद्ध ने कहा, तब तू जा सकता है। तब तू जहां जाना चाहे, जा सकता है। अब तेरे ऊपर कोई पाबंदी नहीं। अब मुझसे तू पूछना ही मत। अब पूछने की कोई जरूरत ही नहीं; क्योंकि तू परम तृप्त हो गया। और परम तृप्ति बुद्धत्व का लक्षण है।
तुम पूछते हो सुदासः "परमात्मा को कैसे तृप्त करूं?"
परमात्मा तृप्त है। तृप्ति ही उसकी गंध है। तृप्ति ही उसका रंग है, उसका रूप है।
लेकिन तुम्हारा असली मतलब यह है कि मैं अपने को कैसा बनाऊं, कैसा रचूं, कैसा गढूं कि परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हो, उसके आशीष मुझ पर बरसें। मन नहीं लगता, लगाए क्या करूं?
बेबसी छाई हुई है
नींद सी आई हुई है
तन नहीं जगता, जगाए क्या करूं?
मन नहीं लगता, लगाए क्या करूं?
रात, सो भी स्याहकारी
और सुधि आई तुम्हारी
दिन नहीं उगता, उगाए क्या करूं?
मन नहीं लगता, लगाए क्या करूं?
इन हवाओं से न बोलूं
पीर का घूंघट न खोलूं
प्रण नहीं निभता, निभाए क्या करूं?
मन नहीं लगता, लगाए क्या करूं?
तुमने अपनी बेबसी की बात कही। तुम यह कह रहे हो कि मैं तो स्वयं को अभी स्वीकार नहीं कर पाता, परमात्मा मुझे कैसे स्वीकार करेगा?
लेकिन मैं तुम्हें याद दिलाऊं कि तुम चाहे अपने को स्वीकार करो या न करो, वह तुम्हें स्वीकार किए हुए है। नहीं तो कौन तुम्हारे भीतर श्वास ले? कौन तुम्हारे हृदय में धड़के?
पापी से पापी भी उसे अंगीकार है, उतना ही जितना पुण्यात्मा। रावण के भीतर वह उतना ही मौजूद है, जितना राम के भीतर। उस परम अवस्था में भेद नहीं है। उस परम अवस्था में कोई न ऊपर है, न कोई नीचे है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कह रहा हूं कि तुम अपने को रूपांतरित
न करो। अगर तुम्हें कांटे चुभ रहे हैं, तो कांटे निकालने होंगे। और अगर तुम्हारे जीवन में कुछ विषाद है, तो विषाद झाड़ना होगा। और तुम्हारी चेतना के दर्पण पर अगर धूल जम गई है, तो धूल पोंछनी होगी।
आओ, तुम स्वर साधो, मनतारा छेड़ दूं,
गुमसुम यह रात तो कटे।
पी-पीकर हालाहल बेसुध सी रात है
झंझा के केंचुल में धरती का गात है
आओ, तुम आंचल दो, दीपक तो बाल दूं,
तम की कुछ उम्र तो घटे।
बंदी है किरन-किरन, कैदी दिनमान है सम्मुख ही दृग पथ के तम का व्यवधान है
आओ, तुम बांह गहो, चिलमन यह तोड़ दूं, कल्मष का आवरण हटे।
शंकित हैं प्राण-प्राण, कुंठित हर सांस है
सकुचाई आशाएं, सहमा विश्वास है
आओ, तुम भाव भरो, शब्द-बाण छोड़ दूं,
भय का यह मेघ तो छंटे।
आओ, तुम स्वर साधो, मनतारा छेड़ दूं,
गुमसुम यह रात तो कटे।
अगर तुम्हारे जीवन में रात है, तो सुबह लानी है। इसलिए नहीं कि परमात्मा को तृप्त करना है, बल्कि इसलिए कि सुबह का आनंद, सुबह का उत्सव क्यों चूकें! अगर तुम्हारे जीवन में दुर्गंध है, तो क्यों दुर्गंध भोगो! परमात्मा को तो दुर्गंध और सुगंध समान हैं। वहां तो समत्व है। लेकिन तुम जब सुगंध से भर सकते हो--बेलाओं की, गुलाबों की, जुही की, और चंपा की--तो क्यों दुर्गंध में जीओ! दुर्गंध काटी जा सकती है। मगर इसे काटो अपने लिए-- परमात्मा के ख्याल से नहीं। क्योंकि जब तुम परमात्मा के ख्याल से काटते हो, तो बात थोड़ी उथली हो जाती है, ओछी हो जाती है। जैसे कोई किसी और के लिए सज कर जा रहा है, लेकिन सौंदर्य का कोई आत्मबोध नहीं है।
मंदिर चले। स्नान कर लिया। फूलमाला पहन ली। तिलक-चंदन लगा लिया। और
घर बैठे थे भूत-प्रेत बने। न नहाए, न धोए। जिस दिन मंदिर नहीं जाना, उस दिन स्नान की जरूरत ही नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्नान का आनंद तुम्हारे अनुभव में नहीं आया है। स्नान अभी तुम्हारी जीवन-चर्या नहीं बना है। उधार है। दिखावा है। प्रदर्शन है। नुमाइश है। सौंदर्य का तुम्हें अभी सहज-बोध नहीं है।
स्त्रियां घर के बाहर निकलती हैं, तो सज-धज कर। बाल संवार लिए। मांग
भर ली। इत्र-फुलेल लगा लिया। सुंदर साड़ी पहन ली। आभूषण। बाहर स्त्रियां ऐसी सज कर निकलती हैं कि खुद का पति मिल जाए, तो वह भी उनके प्रेम में पड़ जाए। लेकिन घर इन्हीं देवियों को बैठे देखो! रणचंडी बनी बैठी रहती हैं--कि अपना पति क्या, दूसरे का पति भी देख ले, तो भाग खड़ा हो!
सौंदर्य का एक अंतर्बोध अलग बात है। फिर कोई देखता है कि नहीं, यह सवाल नहीं है। सौंदर्य का अपना रस है। स्वास्थ्य का अपना आनंद है। स्वच्छता की अपनी गरिमा है।
मैं तुमसे कहूंगा, सुदास, परमात्मा को तृप्त करने के लिए कुछ मत मरना--
कि सत्य बोलूंगा, क्योंकि परमात्मा सत्य से प्रसन्न होगा। तो इसका अर्थ हुआ कि अभी तक सत्य से तुम्हारा कोई नाता नहीं जुड़ा है। अगर परमात्मा असत्य से प्रसन्न होता हो, तो फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम असत्य बोलोगे! लेकिन जिसका सत्य से नाता जुड़ गया है, वह परमात्मा के लिए भी असत्य नहीं बोलेगा। वह कहेगा कि परमात्मा अपनी जाने। अगर उसे सत्य नहीं रुचता, तो वह अपनी रुचि बदले। लेकिन मुझे सत्य प्रीतिकर है। सत्य मेरा आनंद है। मैं सत्य ही बोलूंगा। अगर सत्य के कारण मुझे नर्क भी जाना पड़े, तो मैं जाने को राजी हूं। लेकिन झूठ बोल कर स्वर्ग नहीं जा सकूंगा।
तुम अगर सिर्फ स्वर्ग जाने में उत्सुक हो, तो क्या फर्क पड़ता है कि कैसे स्वर्ग गए। जिसको साध्य का बहुत ध्यान हो जाता है, उसके जीवन में

साधन की कीमत कम हो जाती है। वह साधन की फिक्र ही नहीं करता। अगर द्वारपाल को स्वर्ग के, रिश्वत देकर प्रवेश मिलता हो, तो कौन पंचायत करे! दे देंगे रिश्वत। अगर द्वारपाल के पैर दबाने से, चमचागिरी करने से स्वर्ग में प्रवेश मिलता हो, तो वह भी कर लेंगे!
तुम्हारी प्रार्थनाएं अक्सर चमचागिरी हैं। तुम्हारी स्तुतियां क्या हैं--खुशामदें हैं। जैसे तुम किसी राजा-महाराजा की स्तुति कर रहे हो, ऐसे तुम परमात्मा की स्तुति करते हो। तुम खूब बढ़ा-चढ़ा कर, जितना झूठ बोल सकते हो... जानते हो कि तुम झूठ बोल रहे हो। क्योंकि तुम्हारा जीवन-व्यवहार तुम्हारी प्रार्थना की गवाही नहीं होता। तुम्हारी जीवन-शैली तुम्हारी प्रार्थना का समर्थन नहीं करती।
नहीं; परमात्मा की फिक्र न करो सुदास। वह तो तृप्त है। और तुम जैसे हो, ऐसे भी रहे, तो भी तृप्त है। उसे रंचमात्र बेचैनी नहीं है। लेकिन तुम जैसे हो, अगर बेचैन हो, तो अपनी बेचैनी बदलो। तुम अगर अशांत हो, तो अपनी अशांति बदलो।
बदलाहट--बदलाहट के लिए। क्रांति--क्रांति के लिए। क्रांति स्वयं साध्य है; साधन नहीं। और जब तुम क्रांति का साध्य की तरह उपयोग करते हो-- साधन की तरह नहीं--तो क्रांति में एक महिमा समाविष्ट हो जाती है; एक गौरव समाविष्ट हो जाता है; एक गरिमा। तब साधन और साध्य का भेद मिट जाता है। और उस व्यक्ति को मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं, जिसके जीवन में साधन और साध्य का भेद नहीं है। जिसके लिए साधन साध्य है। साधन जैसे साध्य है, वैसे ही साध्य साधन है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
कैसे छोडूं यह जीर्ण जगत, रह गए अधूरे गान सखी!
पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी!
जन-स्तुति के स्वर्णिम मंदिर में
वे प्रतिमा, प्रस्तर, देव बने--लाचार, मनुजता खो न सकी
हैं मुझमें उनमें भेद घने
वे मनुज बनें तो बनें भले, मैं बन न सकूं पाषाण सखी! पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी! मैंने कब माना, बहुत कहा--जग ने, प्रिय आते सपने में,
मैं जगती हूं, मैं तो देखूंगी
जाग्रत को ही अपने में,
आंखें मूंदूं, यदि परस करें मेरे जी को वे प्राण सखी! पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी!
वे मनुज बनें तो बनें भले! जिन्होंने प्रेम को पहचाना है,
वे तो परमात्मा से कहेंगे कि तुम्हें अगर मनुष्य बनना हो,
तो बन जाओ।
वे मनुज बनें तो बनें भले,
मैं बन न सकूं पाषाण सखी!
लेकिन मैं पत्थर नहीं बनूंगा।
पत्थर की प्रतिमाएं हैं मंदिरों में। उनकी पूजा करते-करते तथाकथित भक्त भी पत्थर हो गए हैं, पाषाण हो गए हैं। हृदय उनके पत्थरों से भी गए-बीते हो गए हैं। उनके हृदय पर कोई संवेदना पैदा नहीं होती। यह ठीक हैः
वे मनुज बनें तो बनें भले, मैं बन न सकूं पाषाण सखी! पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी!
तुम्हें पत्थर नहीं बनना है। तुम्हें कुछ भी नहीं बनना है तथाकथित पंडित-पुरोहितों की बात मान कर। तुम्हें जबरदस्ती अपने आचरण को शुद्ध नहीं करना है। तुम्हें जबरदस्ती संत नहीं बनना है। तुम्हें सरल बनना है-- आनंदित, प्रफुल्लित, मुग्ध, जीवन के प्रेम में ऐसे लिप्त कि नाच सको, गा सको। फिर कठिनाई नहीं है। फिर निश्चित तुम्हें पगध्वनि सुनाई पड़ेगी। पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी!
और कोई रथ नहीं है स्वर्ण का, जिस पर परमात्मा आएगा। वह अतिथि तुम्हारी ही चेतना के रथ पर सवार होकर आता है।

कैसे छोडूं यह जीर्ण जगत, रह गए अधूरे गान सखी! पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी! आंखें मूंदूं, यदि परस करें मेरे जी को वे प्राण सखी! पगध्वनि सुनती हूं, आएंगे मन के रथ पर मेहमान सखी!
तुम्हारी चेतना ही स्वर्ग है, स्वर्ग का द्वार है। तुम्हारी चेतना की परम शुद्धि ही परमात्मा है। इसलिए किस परमात्मा को तृप्त करने की बात कर रहे हो सुदास! तुम तृप्त हो जाओ, तो परमात्मा तृप्त है।
तुम अतृप्त हो--अड़चन है। तुम्हारी अतृप्ति का सवाल है। तुम रुग्ण हो। सारा अस्तित्व तो स्वस्थ है। तुम ताल के बाहर पड़ गए हो। तुम बेताल हो गए हो। तुमने स्वर खो दिया है। तुम बेसुरे हो गए हो। अन्यथा सारा अस्तित्व स्वर में बद्ध है। सारा अस्तित्व संगीत में लीन है। तुम भी स्वरबद्ध हो जाओ। इस स्वरबद्धता को मैं प्रार्थना कहता हूं, पूजा कहता हूं, ध्यान कहता हूं।
कैसे कोई स्वरबद्ध होता है सुदास? अतीत में रहोगे--स्वर छिन्न-भिन्न रहेंगे। भविष्य में रहोगे--स्वर छिन्न-भिन्न रहेंगे। वर्तमान में जीओ-- स्वर सध जाएंगे।
बस यही एक क्षण वर्तमान का सब कुछ हो। एक-एक क्षण जीओ। और परिपूर्णता
से जीओ, समग्रता से जीओ। ऐसी डुबकी मारो कि पूरे-पूरे डूब जाओ। और प्रतिपल तुम पाओगेः मेहमान करीब आ रहा है--और करीब आ रहा है--और करीब आ रहा है। और एक दिन वह अपूर्व घटना घटती है, जिस दिन अतिथि में और आतिथेय में कोई भेद नहीं रह जाता है। मेहमान मेजबान की तरह आता है। अचानक एक दिन तुम पाते हो कि तुम ही हो वह। तत्वमसि श्वेतकेतु!

तीसरा प्रश्नः प्रतिभा किसे कहते हैं? आपने यह नाम मुझे दिया है, इसीलिए पूछती हूं।

प्रतिभा! प्रतिभा कहते हैं विचार-मुक्त चैतन्य की अवस्था को। जब तुम्हारे भीतर आभा ही आभा रह जाती है। उस आभा में कहीं कोई छाया, कहीं कोई अंधेरा नहीं रह जाता। मन के किसी कोने-कातर में छिपा हुआ कहीं भी कोई अंधेरा नहीं रह जाता। जब भीतर सब आलोकित होता है, उस अवस्था का नाम प्रतिभा है। जब तुम्हारे भीतर प्रज्ञा का आविर्भाव होता है, तो प्रतिभा का जन्म हुआ।
प्रतिभा का अर्थ साधारणतः जैसा किया जाता है, उतना ही नहीं है। साधारणतः तो किया जाता है--बहुत बुद्धिमान व्यक्ति, सोच-विचार वाला व्यक्ति, तर्क-निष्ठ। प्रतिभा वस्तुतः इससे बिल्कुल उलटी बात है। वहां कहां सोच-विचार! वहां कहां तर्क! वहां कहां बुद्धिमानी! प्रतिभा बुद्धिमानी नहीं है--सरलता है, निर्दोषता है। प्रतिभा तर्क नहीं है, तर्कातीत अवस्था है। प्रतिभा सोच-विचार नहीं है, निर्विचार अवस्था है। लेकिन भाषा-कोश में तो प्रतिभा का यही अर्थ लिखा हैः सोचने-विचारने वाला, चालाक आदमी, चतुर। उसी को हम कहते हैं कि देखो, कैसी प्रतिभा है! तर्क में कुशल, विवाद में प्रवीण, हर स्थिति में रास्ता निकाल ले; कैसी ही उलझन हो, कैसी ही पहेली हो, हल कर ले।
भाषा-कोश कुछ कहता है, लेकिन अस्तित्व की परिभाषा कुछ और है। भाषा-कोश अस्तित्व के संबंध में जरूरी रूप से सही सूचनाएं नहीं देता, क्योंकि भाषा अस्तित्व को जानती ही कहां है!
मैंने सुना है, एक बार मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन में यात्रा कर रहा था। रात्रि का समय था। ट्रेन के उस डब्बे में उसके अतिरिक्त सिर्फ एक दंपति और था। शेष डब्बा खाली था। मुल्ला ऊपर की बर्थ पर लेटा हुआ था। दंपति नीचे सामने वाली बर्थ पर बैठे हुए थे। थोड़ी देर बाद पति पत्नी से बोला, लल्लू की अम्मा, आज तो मेरी इच्छा हो रही है कि खतरे की जंजीर खींची जाए। और देख ही रही हो कि डब्बे में भी कोई और नहीं है।
पत्नी उसे समझाते हुए बोली कि क्या आपको पता नहीं, बगैर कारण के जंजीर खींचने पर दो सौ पचास रुपये जुर्माना या छह महीने की सजा का प्रावधान है? फिर भी आप ऐसी जिद क्यों कर रहे हैं! पति बोला, क्या करूं लल्लू की मां, इच्छा को दबाने की बहुत कोशिश कर रहा हूं, मगर इच्छा बलवती होती जा रही है!

और रही चिंता जुर्माना हो जाने की, सो डेढ़ सौ रुपये तुम्हारे पास हैं और सौ रुपये मेरी जेब में; पूरे ढाई सौ हो गए। ज्यादा हुआ तो जुर्माना दे देंगे। मगर जंजीर तो आज जरूर खींचूंगा। असल में जीवन भर की इच्छा है यह मेरी, और कब तक टालूं!
पत्नी ने देखा कि अब कोई और रास्ता नहीं, तो बोली, ठीक है। जब आप नहीं मानते, तो खींचिए। मगर वह देखिए, सामने की बर्थ पर एक आदमी सो रहा है, हम उसी का नाम लगा देंगे कि जंजीर उसी व्यक्ति ने खींची है। और हम दो हैं; उसके लिए कोई गवाही भी नहीं मिल सकती।
पति ने आगे बढ़ कर जंजीर खींच दी। ट्रेन रुक गई। गार्ड हाथ में अपनी लालटेन लिए आ गया और आकर बोला, क्या बात है? जंजीर किसने खींची? दंपति ने फौरन मुल्ला की ओर इशारा कर दिया। गार्ड मुल्ला नसरुद्दीन के पास पहुंचा, उसे हिलाया, और बोला, क्या बात है बड़े मियां, जंजीर क्यों खींची?
मुल्ला जोर से चिल्लाने लगा और बोला, अरे गार्ड साहब, इन दोनों धूर्तों ने मिल कर मेरे रुपये चुरा लिए। पूरे ढाई सौ रुपये थे। विश्वास न हो तो इन दोनों की तलाशी ले लें। पत्नी ने ड.ेढ सौ रखे हैं और पति ने सौ। तलाशी ली गई। मुल्ला की बात सच निकली। गार्ड ने पैसे मुल्ला को लौटा दिए और उन दोनों को पुलिस के हवाले कर दिया।
संसार में इस तरह की स्थिति को प्रतिभा कहते हैं। लेकिन प्रतिभा, मैंने तुझे इस तरह का नाम नहीं दिया है। ऐसी प्रतिभा सस्ती प्रतिभा है; थोड़ी ही सोच-समझ की क्षमता हो, तो आ जाती है। और ऐसी प्रतिभा अक्सर घातक सिद्ध होती है। पृथ्वी इसी तरह की तथाकथित प्रतिभा से भर गई है। हमारे विद्यालय, विश्वविद्यालय इसी तरह के प्रतिभावान व्यक्ति पैदा कर रहे हैं। अगर ठीक-ठीक कहो, तो सिर्फ चालबाज और चालाक आदमी पैदा किए जा रहे हैं। दुनिया से सरलता, निर्दोषता खोती चली जा रही है। लोग बेईमान होते जा रहे हैं। पढ़ा-लिखा आदमी हो और बेईमान न हो, यह जरा मुश्किल हो गया है। बेपढ़ा- लिखा आदमी, गांव का गंवार आदमी शायद ईमानदार भी है। अभी भी ईमानदार है! लेकिन जैसे ही कोई पढ़-लिख जाता है, जैसे ही कोई विश्वविद्यालय से उपाधियां लेकर लौट आता है, वैसे ही चालबाज हो जाता है, बेईमान हो जाता है। वैसे ही लोगों की जेब काटना और लोगों की गर्दन काटना, वही उसके जीवन का धंधा हो जाता है।
जिन लोगों ने दुनिया में सार्वभौम शिक्षा का प्रचार किया, उन्होंने सोचा था कि जब दुनिया में सभी लोग शिक्षित हो जाएंगे, तो बड़ी ईमानदारी होगी, बड़ी सच्चाई होगी। मगर हुआ उलटा। जितने लोग शिक्षित होते गए, उतनी सचाई खोती गई, उतनी बेईमानी बढ़ती चली गई। सीधा-सादा आदमी तो बेईमानी कर भी नहीं सकता, क्योंकि डरता है--पकड़ा जाए! पढ़ा-लिखा आदमी बेईमानी की हजार तरकीबें खोज सकता है।
मैंने सुना है कि एक कब्र के पास से मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र
के साथ गुजर रहा था। कब्र बड़ी प्यारी थी, संगमरमर की थी। सोने के अक्षरों में उस पर कुछ लिखा था। मुल्ला ने कहा, जरा रुको। पढ़ें, किसकी कब्र है! कब्र पर लिखा थाः यहां एक राजनेता और एक संत पुरुष की समाधि है। मुल्ला ने कहा, यह बात बड़ी मुश्किल है! इतनी छोटी कब्र में दो आदमी कैसे समाए होंगे? राजनेता और संत?
मुल्ला यह तो सोच ही नहीं सका कि ये एक ही आदमी के संबंध में दोनों वक्तव्य हैं। कोई भी नहीं सोच सकता। राजनेता और संत? या तो संत हो सकता है, या राजनेता हो सकता है। या राजनेता हो सकता है, या संत हो सकता है। ये दोनों बातें एक साथ असंभव हो गईं! या तो आदमी वकील हो सकता है, या ईमानदार हो सकता है। या ईमानदार हो सकता है, या वकील हो सकता है। या तो पढ़ा-लिखा हो, तो फिर ईमानदारी की फिक्र नहीं की जा सकती। और या फिर ईमानदार हो, तो पढ़ाई-लिखाई को एक तरफ रखना होगा।
हमने कुछ बड़ी उलटी दुनिया पैदा कर ली है। यहां प्रतिभा सिर के बल खड़ी
हो गई है, शीर्षासन कर रही है। और जिनको हम प्रतिभाशाली कहते हैं, उनकी कुल कुशलता क्या है? अनुमान! वे अनुमान करने में कुशल हैं। हम जिसको तर्क कहते हैं, वह भी अनुमान का शास्त्र है। उससे सत्य का कोई साक्षात्कार नहीं

होता; केवल अनुमान लोग लगाते रहते हैं! और अनुमान सत्य नहीं है। अनुमान तो सिर्फ अनुमान है।
मुल्ला नसरुद्दीन, चंदूलाल और ढब्बूजी, तीनों मिल कर एक दिन आपस में गपशप कर रहे थे। ढब्बूजी बोले, आप लोग विश्वास करें या न करें, लेकिन गर्भवती महिलाओं पर फिल्मों का असर जरूर पड़ता है। अब मेरी ही पत्नी को लो। पिछले सप्ताह ही फिल्म राम और श्याम देख कर आई और दूसरे ही दिन अस्पताल में उसने जुड़वां बच्चों को जन्म दिया!
चंदूलाल ने ढब्बूजी की हां में हां मिलाते हुए कहा कि जी हां, भाई साहब! आपकी बात बिल्कुल सच है। अरे मेरी पत्नी परसों फिल्म त्रिमूर्ति देख कर आई और कल ही सांझ उसने एक साथ तीन बच्चों को जन्म दिया!
यह सुन कर मुल्ला नसरुद्दीन एकदम घबड़ा गया और रोने लगा। चंदूलाल और ढब्बूजी यह देख कर चिंतित स्वर में बोले, क्या बात है नसरुद्दीन, तुम अचानक हम लोगों की बात से क्या इतने घबड़ा गए? तुम्हें घबड़ाने की क्या जरूरत! अरे रोएं तो हम रोएं। रोएं तो ढब्बूजी रोएं। तुम क्यों रो रहे हो? क्यों रोने लगे? तुम्हें क्या हो गया!
नसरुद्दीन रोते हुए बोला, भाइयो, मैं तो सोच रहा था कि यदि तुम लोगों
की बात सही है, तो मेरी गर्भवती पत्नी गुलजान का क्या हाल होगा जो आज ही अलीबाबा और चालीस चोर फिल्म देख कर लौटी है!
अनुमान! लेकिन जिसको तुम तथाकथित प्रतिभाशाली आदमी कहते हो, वह अनुमान ही लगाता रहता है। हां, अंधेरे में तीर चलाता है, लग जाए तो तीर, न लगे तो तुक्का!
मैं प्रतिभा का ऐसा अर्थ नहीं करता हूं। प्रतिभा ध्यान की विशुद्ध अवस्था है। अनुमान नहीं, तर्क नहीं, विचार नहीं; चित्त की सारी कल्पनाएं गईं, ऊहापोह गया; चित्त की सारी तरंगें सो गईं। चेतना की झील बिल्कुल शांत हो गई। एक भी लहर नहीं। जरा सी भी लहर नहीं। झील कंपती ही नहीं; दर्पण हो गई। जब चेतना की झील बिल्कुल दर्पण की तरह शांत होती है--निष्कंप, अडोल, अचंचल--तो सारे चांद-तारे उसमें उतर आते हैं। सारे चांद-तारों की प्रतिछवि उसमें बन जाती है।
ऐसे ही ध्यान जब तुम्हारे भीतर से चित्त की सारी तरंगों को छीन लेता
है और तुम्हारी चित्त की झील शून्य हो जाती है, तो उसमें उतर आते हैं जीवन के सारे सौंदर्य, सारे सत्य। उतर आता है जीवन का प्रेम; उतर आता है परमात्मा। तुम्हारे भीतर प्रतिफलन बनते हैं। तुम दर्पण हो जाते हो। दर्पण हो जाने की वह कला, जिसमें कि अस्तित्व वैसा ही दिखाई पड़ने लगे जैसा है, उसे मैं प्रतिभा कहता हूं।
प्रतिभा, मैंने इसी अर्थ में तुझे प्रतिभा नाम दिया है। ध्यान की तरफ इशारा है। नाम मैं ऐसे ही नहीं दे रहा हूं। नाम में इंगित है। नाम में संदेश है। नाम इसलिए दे रहा हूं, ताकि तुम्हें याद बनी रहे कि क्या तुम्हें करना है। नाम तुम्हें याद दिलाता रहे। जब भी कोई तुझे पुकारेगा और कहेगा--प्रतिभा! तो ख्याल रखना, स्मरण करना, सुरति लाना कि चित्त से मुक्त होना है; चित्त की तरंगों से मुक्त होना है। यह स्मृति बनी रहे, बनी रहे, बनी रहे, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, एक दिन वह अपूर्व क्षण भी आ जाता है, जब चित्त बिल्कुल शांत हो जाता है, तब प्रतिभा का अनुभव होगा।
और जहां प्रतिभा है, वहां परमात्मा है। क्योंकि प्रतिभा में जो प्रतिछवि बनती है अस्तित्व की, उसका नाम ही परमात्मा है।

चौथा प्रश्नः मैं जिसे चाहता हूं, उसे ही पाना असंभव हो जाता है। जीवन में भी जिन्हें चाहा, प्राणपण से चाहा, मगर न पा सका। कहीं यही स्थिति परमात्मा के संबंध में भी तो नहीं होगी कि परमात्मा को चाहूं और न पा सकूं?

धर्मेंद्र! चाह में खतरा है। चाह बाधा है पाने में। जितने जोर से तुम चाहोगे, उतना ही पाना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि चाहने वाला चित्त शांत नहीं हो सकता। और शांत होना, पाने की पहली शर्त है। चाहने वाला चित्त तनावग्रस्त होता है। चाहनेवाला चित्त वर्तमान में नहीं होता, भविष्य में

होता है। चाह का अर्थ हैः आज नहीं है मूल्यवान; कल है मूल्यवान! चाह का अर्थ हैः नजरें मेरी कल पर टिकी हैं। आज तो चूका जा रहा है, और आंखें मेरी कल पर टिकी हैं। और कल कभी आया है? कल कभी आता ही नहीं। जो नहीं आता, उसी का नाम कल है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक फकीर से कहा कि मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया हूं। पान की मेरी दुकान है और लोग उधारी पर उधारी किए जाते हैं। लोग उधारी चुकाते भी नहीं। और अगर उनको आगे उधार न दो, तो पुरानी उधारी गई! उस डर से मुझे उन्हें उधार भी देना पड़ता है। मैं करूं तो क्या करूं?
उस फकीर ने कहा, तू एक काम कर। एक तख्ती टांग दे--आज नगद कल उधार!
मुल्ला ने कहा, इससे कुछ भी नहीं होगा। मैं अपने ग्राहकों को जानता हूं। अरे वे बड़े काइयां हैं, बड़े चालबाज हैं। वे कहेंगे, ठीक नसरुद्दीन! तो आज नहीं खरीदते, कल ही आ जाएंगे।
उस फकीर ने कहा, तू फिक्र मत कर। जब कल आएंगे, फिर तख्ती बता देना--आज नगद कल उधार। आने दे उनको कल बार-बार; जब भी आएं, तख्ती बता देना। क्योंकि कल कभी आया है पागल! कितने ही काइयां हों तेरे ग्राहक, लेकिन कल कभी आता ही नहीं।
कल आ ही नहीं सकता। और चाह तुम्हें कल में उलझाए रखती है। फिर तुमने किसको चाहा--धन, पद, पत्नी--इससे फर्क नहीं पड़ता। चाहत का रूप ही है-- भविष्य। और ध्यान होता--अभी, यहीं।
अब तुम कहते होः कहीं परमात्मा के संबंध में भी तो यही उपद्रव न हो जाएगा?
होगा। परमात्मा से ही क्या फर्क पड़ता है। सिर्फ तुमने चाह का विषय बदल दिया। धन की जगह ध्यान, काम की जगह राम। लेकिन तुम वही के वही। तुम्हारी चाहत का ढंग वही का वही। तुम्हारी चाल वही; वही बेढंगी चाल! कुछ फर्क न पड़ेगा।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम किस दिशा में जा रहे हो। तुम्हारे पैरों की गलती है। तुम्हारे चलने में भूल है। दिशा कोई भी हो, तुमसे भूल होने ही वाली है।
इतनी बार चाह कर जब यह देखा कि जिसको चाहा वही नहीं मिला, जो चाहा वही असंभव हो गया, तो कुछ तो सीखो! इतना तो सीखो कि अब जिसे पाना है उसे चाहेंगे नहीं! यह तो सीधा सा गणित है कि अब जिसे पाना है उसे चाहेंगे नहीं। अब चाह को बीच में खड़ा न करेंगे।
इसलिए बुद्ध ने कहा है कि परमात्मा को भी जो चाहता है, वह उसे नहीं पा सकेगा। इसलिए बुद्ध ने कहा, परमात्मा है ही नहीं। फिक्र ही छोड़ो। तुम ध्यान करो।
ध्यान का क्या अर्थ है? अचाह। चाहमुक्त हो जाओ। तुम शून्य हो जाओ।
तुम्हारे भीतर कोई वासना न हो। फिर आना होगा परमात्मा को तो आ जाएगा।
खोजता चला आएगा। तुम शून्य हुए कि सत्य तुम्हारी तरफ बहा।
तुम कहते होः "मैं जिसे चाहता हूं, उसे ही पाना असंभव हो जाता है!"
इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं धर्मेंद्र। यह जीवन का शाश्वत नियम है।
एस धम्मो सनंतनो। यही शाश्वत नियम हैः चाहोगे--पा न सकोगे। दौड़ोगे-- चूकोगे। रुकोगे--पा लोगे। ठहर जाओ।
चाह दौड़ाती है। और दौड़ने में कोई नहीं पा सकता। क्योंकि जिसे पाना है,
वह दूर नहीं है। जिसे पाना है, वह मिला ही हुआ है।
मुझे ऐसा कहने दोः तो यह तो हो भी सकता है कि चाहने वाला धन पा ले। हालांकि धनी कभी नहीं हो पाएगा। यह हो सकता है कि तुम जिस स्त्री को चाहते हो, उसे पा लो। हालांकि पाते ही वह स्त्री वही नहीं रह जाएगी जो पाने के पहले थी। अगर ठीक से समझो, तो तुमने जिसे पाया, यह वही स्त्री नहीं है; यह कोई और है। जब तक नहीं पाया था, तब तक जो रूप था; जब तक नहीं पाया था, तब तक जो लावण्य था; जब तक नहीं पाया था, तब तक यह स्त्री स्वर्ग की अप्सरा थी। पा लिया--सब मिट्टी हो गया!
मजनू बड़ा सौभाग्यशाली था; लैला नहीं मिली। लैला मिल जाती तो मजनू को संन्यासी होना पड़ता। मियां मजनू को स्वामी होना पड़ता! और मेरे सिवा तो उनको कोई संन्यास दे नहीं सकता था। सो स्वामी मजनू भारती! और लैला भी

बेचारी क्या करती! जब मजनू हो जाते स्वामी, तो लैला भी क्या करती! वे तो बड़े सौभाग्यशाली थे, मिलना नहीं हो पाया। पुकारते रहे, चिल्लाते रहे, खोजते रहे। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं। दूरी में ही सारा सुहावनापन है। जैसे-जैसे चीजों के पास आते हो, वैसे-वैसे उनकी व्यर्थता सिद्ध होने लगती है।
तुम्हीं न समझीं जब मेरे गीतों की भाषा,
दुनिया सौ-सौ अर्थ लगाए, क्या होता है।
यह मेरे मन की कमजोरी या मजबूरी
कुछ भी कह लो, सिर्फ तुम्हें ही अपनाया है।
तुम्हें समर्पित किया सहज ही इस जीवन में
जो कुछ भी खोया-पाया, रोया-गाया है।
तुम्हीं न दुहरा पाईं मेरे गीत प्राण! जब,
सारे-का-सारा जग गाए, क्या होता है!
मात्र बहाना था गीतों का सृजन मुझे तो--अपना दर्द तुम्हारे दिल तक पहुंचाना था।
जो न अन्यथा कह पाता मैं--सुन पातीं तुम
कुछ ऐसा था राज तुम्हें जो समझाना था।
मेरा दर्द न छू पाया जब हृदय तुम्हारा
पत्थर का भी दिल पिघलाए, क्या होता है।
और सभी मिल जाते केवल वही न मिलता--चाह करो जिसकी, दुनिया का यही नियम है,
सारे स्वर सध जाते केवल वही न सधता--जो प्रिय हो मन को, जीवन ऐसी सरगम है।
तुम्हीं न अर्पण मेरा जब स्वीकार कर सकीं,
यह सारी दुनिया अपनाए, क्या होता है।
लेकिन ऐसे काव्य, ऐसे गीत जनमते हैं उन कवियों के हृदय में, जो तड़पते रहे हैं और जिनको अपना प्रेम-पात्र नहीं मिल पाया। प्रेम-पात्र मिल जाए, तो अचानक आंख खुल जाती है। क्योंकि तुमने जो सोचा था, वह तुम्हारी कल्पना थी। वह तुम्हारा प्रक्षेपण था। वह तुमने आरोपित कर लिया था।
मजनू लैला में जो देखता है, वह लैला में नहीं है, मजनू की आंख में है।
वह मजनू की आंख से ही लैला पर आरोपित होता है। या तो लैला न मिले, तो ठीक। रोता रहेगा मजनू। मगर रोने में भी एक मजा है। रोने में भी एक रस है। मजनू के रोने में भी एक माधुर्य है। विषाद तो है, लेकिन हताशा नहीं है। चिंता तो है, पीड़ा तो है, लेकिन उदासी नहीं है, वैराग्य नहीं है।
लेकिन एक बुद्ध--गौतम बुद्ध--जिनको सुंदरतम स्त्री मिली; जो उन्होंने चाही, वह स्त्री मिली। लेकिन उनतीस वर्ष के थे, तभी घर-द्वार छोड़ दिया। एरनाल्ड ने बुद्ध पर जो अदभुत किताब लिखी हैः लाइट ऑफ एशिया। उसमें
जो वर्णन है, रात्रि में बुद्ध का घर छोड़ने का, बहुत प्यारा है। देर तक पीना-पिलाना चलता रहा। देर तक नाच-गान चलता रहा। देर तक संगीत चला। फिर बुद्ध सो गए। लेकिन आधी रात अचानक नींद खुल गई। जो नर्तकियां नाचती रही थीं, वे भी थक कर अपने वाद्यों को वहीं पड़ा छोड़ कर फर्श पर ही सो गई हैं। पूरी चांद की रात है। खिड़कियों, द्वार-दरवाजों से चांद भीतर आ गया है। बुद्ध चांद की रोशनी में ठीक से उन स्त्रियों को देख रहे हैं, जिनको वे बहुत सुंदर मानते रहे हैं। किसी के मुंह से लार टपक रही है, क्योंकि नींद लगी है। किसी की आंख में कीचड़ भरा है। किसी का चेहरा कुरूप हो गया है। कोई नींद में बड़बड़ा रही है। जिसके सुमधुर स्वर सुने थे सांझ, वह इस तरह बड़बड़ा रही है जैसे पागल हो! बुद्ध ने उन सारी सुंदर स्त्रियों की यह कुरूपता देखी और एक बोध हुआ कि जो मैं सोचता हूं, वह मेरी कल्पना है। यथार्थ यह है। आज नहीं कल देह मिट्टी हो जाएगी। आज नहीं कल देह चिता पर चढ़ेगी। इस देह के पीछे मैं कब तक दौड़ता रहूंगा? इन देहों में मैं कब तक उलझा रहूंगा?
यह आघात इतना गहरा था कि वे उसी रात घर छोड़ दिए। उनतीस वर्ष की उम्र कोई उम्र होती है! अभी युवा थे। मगर जीवन का यथार्थ दिखाई पड़ गया। जीवन बड़ा थोथा है। जीवन बिल्कुल अस्थिपंजर है। हड्डी-मांस-मज्जा ऊपर से है, भीतर अस्थिपंजर है।

भाग निकले, जितने दूर जा सकते थे। जो सारथी उन्हें ले गया है छोड़ने स्वर्णरथ पर बिठा कर, वह बूढ़ा सारथी उन्हें समझाता है कि आप यह क्या कर रहे हैं? कहां जा रहे हैं? महल की याद करें! इतना सुंदर महल और कहां मिलेगा? यशोधरा की स्मृति करें! इतनी सुंदर स्त्री और कहां मिलेगी? इतना प्यारा राज्य, इतनी सुख-सुविधा, इतना वैभव-विलास--इस सब स्वर्ग को छोड़ कर कहां जाते हो?
बुद्ध ने लौट कर पीछे की तरफ देखा। पूर्णिमा की रात में उनका संगमरमर
का महल स्वप्न जैसा जगमगा रहा है। उस पर जले हुए दीये, जैसे आकाश में तारे टिमटिमाते हों। लेकिन उन्होंने सारथी को कहा, जाना होगा। मुझे जाना ही होगा। क्योंकि तुम जिसे कहते हो महल, मैं वहां सिवाय लपटों के और कुछ भी नहीं देखता हूं। मैं वहां चिंताएं जलती देख रहा हूं। आज नहीं कल, देर नहीं होगी, जल्दी ही सब राख हो जाएगा। इसके पहले कि सब राख हो जाए, इसके पहले कि मेरी देह गिरे, मुझे जान लेना है उसको, जो शाश्वत है। यदि कुछ शाश्वत है, तो उससे पहचान कर लेनी है। मुझे सत्य से परिचय कर लेना है; सत्य का साक्षात्कार कर लेना है।
धर्मेंद्र, तुम कहते होः जो भी मैंने चाहा, उसे पा न सका।
कौन पा सका है? कुछ पा सके, उन्होंने पाकर पाया कि व्यर्थ। कुछ नहीं पा सके, वे भरमते रहे, भटकते रहे। अच्छा ही है कि तुम्हें यह बात समझ में आ गई कि चाह में ही कुछ बुनियादी भूल है; कि चाहो, और पाना मुश्किल हो जाता है! और यह डर सार्थक है कि कहीं परमात्मा को चाहने लगूं, और ऐसा तो न होगा कि उसे भी न पा सकूं!
तुम चौंकोगे। तुमने अगर किसी और से पूछा होता, किन्हीं और तथाकथित संत-महात्माओं से पूछा होता, तो तुम्हें यह उत्तर न मिलता जो उत्तर तुम मुझसे पाओगे। तुम्हारे संत-महात्मा तो कहते, चाहो--परमात्मा को चाहो--जी भर कर चाहो; एकाग्र-चित्त होकर चाहो; जरूर पाओगे।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, अगर परमात्मा को भी चाहा, तो बस, चूकोगे। चाह चुकाती है। चाह को छोड़ो। चाह को जाने दो। परमात्मा को पाने की विधि हैः चाह से मुक्त हो जाना।
थोड़ी देर को, चौबीस घंटे में कम से कम इतना समय निकाल लो, जब कुछ भी न चाहो। उसी को मैं ध्यान कहता हूं। घंटे भर को, दो घंटे को, दिन में या रात, सुबह या सांझ, कभी वक्त निकाल लो। बंद करके द्वार-दरवाजे शांत बैठ जाओ। कुछ भी न चाहो। न कोई मांग, न कोई चाह। शून्यवत! जैसे हो ही नहीं। जैसे मर गए। जैसे मृत्यु घट गई।
ध्यान मृत्यु है--स्वेच्छा से बुलाई गई मृत्यु। ठीक है, श्वास चलती रहेगी, सो देखते रहना। और छाती धड़कती रहेगी, सो सुनते रहना। मगर और कुछ भी नहीं। श्वास चलती है, छाती धड़कती है, और तुम चुपचाप बैठे हो।
शुरू-शुरू में कठिन होगा। जन्मों-जन्मों से विचारों का तांता लगा रहा है, वह एकदम से बंद नहीं हो जाएगा। उसकी कतार बंधी है। क्यू बांधे खड़े हैं विचार। सच तो यह है, ऐसा मौका देख कर कि तुम अकेले बैठे हो, कोई भी नहीं, टूट पड़ेंगे तुम पर सारे विचार। ऐसा शुभ अवसर मुश्किल से ही मिलता है। तुम उलझे रहते हो--काम है, धाम है, हजार दुनिया के व्यवसाय हैं--विचार खड़े रहते हैं मौके की तलाश में कि कब मौका मिले, कब तुम पर झपटें!
लेकिन जब तुम शांत बैठोगे, ध्यान में बैठोगे, तो मिल जाएगा अवसर विचारों को। सारे विचार टूट पड़ेंगे, जैसे दुश्मनों ने हमला बोल दिया हो। कुरुक्षेत्र शुरू हो जाएगा। तरह-तरह के विचार, संगत-असंगत विचार, मूढ़तापूर्ण विचार, सब एकदम तुम पर दौड़ पड़ेंगे। चारों तरफ से हमला हो जाएगा। उसको भी देखते रहना। लड़ना मत, झगड़ना मत, विचारों को हटाने की चेष्टा मत करना। बैठे रहना चुपचाप। जैसे अपना कुछ लेना-देना नहीं-- निष्पक्ष, निरपेक्ष, असंग। जैसे राह के किनारे कोई राहगीर थक कर बैठ गया हो वृक्ष की छाया में, और रास्ते पर चलते लोगों को देखता हो। कभी कार गुजरती, कभी बस गुजरती, कभी ट्रक गुजरता, कभी लोग गुजरते, उसे क्या लेना- देना! कोई इस तरफ जा रहा, कोई उस तरफ जा रहा। जिसको जहां जाना है, जा रहा है। जिसको जो करना है, कर रहा है। राह के किनारे सुस्ताते हुए राहगीर को क्या प्रयोजन है! पापी जाए कि पुण्यात्मा; सफेद कपड़े पहने कोई जाए कि काले कपड़े

पहने; स्त्री जाए कि पुरुष; जाने दो जो जा रहा है। रास्ता चलता ही रहता है। चलते रास्ते से राहगीर जो थक कर बैठ गया है, उसे क्या लेना है!
ऐसे ही तुम अपने चित्त के चलते हुए रास्ते के किनारे बैठ जाना, देखते रहना। कोई निर्णय नहीं। कोई पक्ष-विपक्ष नहीं। कोई चुनाव न करना। इस विचार को पकड़ लूं, उसको छोड़ दूं; यह आ जाए, यह मेरा हो जाए; यह न आए, यह कभी न आए--ऐसी कोई भावनाएं न उठने देना। और धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन ऐसी घड़ी आएगी, जब रास्ता सूना होने लगेगा। कभी-कभी कोई भी न होगा रास्ते पर। सन्नाटा होगा। अंतराल आ जाएंगे। उन्हीं अंतरालों में पहली बार तुम्हें परमात्मा की झलक मिलेगी। क्योंकि न कोई चाह है, न कोई कल्पना, न कोई विचार।
परमात्मा की झलक मिलेगी--कहीं बाहर से नहीं; तुम्हारे भीतर ही बैठा है। विचारों की धुंध हट जाती है, तो दिखाई पड़ने लगता है।
जो तुमने प्रेम के अनुभव से जाना है, उस अनुभव को उपयोग कर लेना। जो तुमने अब तक संसार की प्रीति में सीखा है, उस पाठ को भूल मत जाना। चाहत करके तुमने जो देखा है, कि सदा हारे, वह एक बड़ी संपदा है। उस पाठ का अगर उपयोग कर लिया, तो परमात्मा के संबंध में असफल न होना पड़ेगा।
चाहो न--और परमात्मा पाया जा सकता है। लाओत्सू का प्रसिद्ध वचन हैः खोजो मत--पा लो। मांगो मत--पा लो। न कहीं जाना है, न खोजना है। वह परम धन तुम्हारे भीतर है। वह तुम्हारा स्वरूप है
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
आठवां प्रवचन

बुद्धत्व की धन्यता

पहला प्रश्नः आपको देखा तो लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ ही चला गया है। अब मैं क्या करूं, क्या न करूं?

हरीश! जीवन तो साधारणतः व्यर्थ ही जाता है। लाखों में एकाध व्यक्ति
का जीवन सार्थक होता है; जब कि सभी का सार्थक हो सकता था; जब कि सभी सार्थक होने की संभावना लेकर जन्मे थे।
प्रत्येक व्यक्ति बीज है परमात्मा का। लेकिन बीज फूल नहीं है; फूल हो सकता है। बीज संभावना है--सत्य नहीं। और संभावनाओं को सत्य में परिणत करने का नाम ही साधना है।
बीज को जमीन देनी होगी, खाद देनी होगी, जल देना होगा; सूरज की रोशनी उस
तक पहुंच सके, इसका आयोजन करना होगा। सूरज और उसके बीच की बाधाएं हटानी होंगी। और फिर प्रार्थनापूर्ण हृदय से प्रतीक्षा करनी होगी। जब आएगी ठीक-ठीक ऋतु बीज के टूटने की, तो अंकुरण होगा। फिर अंकुर की रक्षा करनी होगी। अंकुर नाजुक होता है--महत जीवन से भरा, पर बहुत कोमल। एक पत्थर गिर जाए उस पर, और सब नष्ट हो जाए। फिर बागुड़ लगानी होगी। पौधा जब तक इस योग्य न हो जाए कि अपने ही पैरों पर खड़ा हो सके; जड़ें जब तक इतनी मजबूत न हो जाएं कि आकाश में उड़ती हुई आंधियों और अंधड़ों को वृक्ष सह सके--आनंद से, उल्लास से, उमंग से; नाच सके अंधड़ में, तूफानों में; बादल गरजें और बिजलियां कड़कें, और वृक्ष पुलकित हो, रस-विभोर हो; उस घड़ी के आने तक सतत साधना है।
तुम मुझसे पूछते होः "मैं क्या करूं और क्या न करूं?"
पहले तो अपने को सम्यक भूमि दो, भूमिका दो। मैं उस भूमिका को ही संन्यास कहता हूं। संन्यास है सम्यक भूमि की तलाश। शायद अकेले तुम अंकुरित न हो सको। क्योंकि अंकुरित होने के लिए एक गहन आशा चाहिए। वह आशा कैसे जगेगी? और जहां आशा नहीं है, बीज के प्राण अंकुरित नहीं होते। आशा जगेगी और बीजों को अंकुरित होते देख कर। इसलिए समस्त बुद्धों ने संघों का निर्माण किया।
संघ एक ऊर्जा-क्षेत्र है, जहां और-और बीज, जो तुमसे थोड़ा आगे चल पड़े हैं, अंकुरित हो गए हैं। कुछ और थोड़े बीज, जो और आगे चले थे, पल्लवित हो गए हैं। कुछ और थोड़े बीज, जो और आगे चले थे, पुष्पित हो गए हैं। कुछ और बीज, जो और थोड़े आगे चले थे, फलों के भार से लद गए हैं। पृथ्वी पर झुक आई हैं उनकी शाखाएं।
जहां तुमसे आगे, तुमसे पीछे, बहुत अंकुरित होने वाले बीजों का जमाव हो--ऐसी कोई परिस्थिति खोज लो। ऐसा कोई संघ खोजो। जो तुमसे पीछे हैं, उनको सहारा दे सको तुम। और जो तुमसे आगे हैं, उनसे सहारा ले सको तुम। और कम से कम आश्वासन तो जगे कि मेरे भीतर भी कुछ हो सकता है, कि मैं कंकड़ नहीं हूं, बीज हूं। यह भरोसा तो होना ही चाहिए। और यह भरोसे की बात है। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं हो सकता। कोई तार्किक आधार नहीं हो सकता।
बीज के पास क्या तार्किक आधार है कि वह बीज है? बीज को तो बीज होने का पता ही तब चलेगा, जब वह अंकुरित हो जाए। अंकुरित हो जाए, तो पता चलेगा कि मैं बीज था। यह तो पीछे लौट कर देखेगा, तब पता चलेगा कि मैं बीज था। आगे तो कुछ दिखाई पड़ता नहीं। आगे तो गहन अंधकार है। आशा की कोई किरण नहीं। सिर्फ एक ही संभावना हैः मेरे जैसे बीज, मेरे जैसे मनुष्य अगर सत्य को उपलब्ध हुए हैं, मेरे जैसे दीये अगर ज्योतिर्मय हो उठे हैं--तो तुम्हारे भीतर भी उत्साह उठेगा। एक गहन आकांक्षा, अभीप्सा जगेगी, कि जो औरों को हो गया है, वह मुझे भी हो सकता है। इस अभीप्सा, इस आकांक्षा, इस भरोसे का नाम ही श्रद्धा है। श्रद्धा कोई सिद्धांतों में विश्वास नहीं है, और न शास्त्रों में विश्वास है--वरन जीवन-ऊर्जाओं में।

बुद्ध को देख कर अनेक लोगों को भरोसा हुआ कि यह हमारे भीतर भी हो सकता है। बुद्ध ने न मालूम कितने प्राणों में जन्मों-जन्मों से पड़ी हुई वीणा के तार छेड़ दिए; संगीत मुखरित हो उठा।
हरीश, शुभ है, मंगलदायी है, कि तुम्हें ऐसा लगा कि आपको देख कर लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ ही चला गया। अगर ऐसा लगा है, तो सार्थक होने की घड़ी आ गई। फिर जीवन व्यर्थ नहीं गया, तुम्हें यहां तक ले आया। और क्या सार्थकता हो सकती थी! तुम्हें मेरे पास ले आया। तुम मरुस्थल में भटक नहीं गए। तुम सागर के करीब आ गए हो। अब थोड़ी हिम्मत और, एक छलांग और। तटों का मोह छोड़ो; उतर जाओ सागर में। मिटने की तैयारी और।
पूछते होः "क्या करूं, क्या न करूं?"
मिटो! क्योंकि बीज मिटे नहीं, तो वृक्ष नहीं होगा। तुम मिटो नहीं, तो बुद्धत्व तुम्हारे भीतर जगेगा नहीं। और जागना तुम्हारी संभावना है।
मैं ठीक तुम जैसा हूं। वही हड्डी-मांस-मज्जा। लेकिन फिर भी कुछ घटा है
जो आकाश का है, पृथ्वी का नहीं है। मेरी आंखों में झांक कर तुम्हारे भीतर भी प्यास जग आए--जग आई है--तो दबा मत देना उस प्यास को, क्योंकि वही प्यास तुम्हारा भविष्य है। वही प्यास तुम्हें परमात्मा तक ले जाने का पथ है। लगता तो सभी को है जीवन के अंत में कि जीवन व्यर्थ गया। मृत्यु जब द्वार पर दस्तक देती है, तो किसको नहीं लगता कि जीवन व्यर्थ गया! लेकिन धन्यभागी हैं वे, कि मृत्यु के पूर्व किसी सदगुरु की दस्तक जिन्हें सुनाई पड़ जाती है।
पुराने शास्त्र तो कहते हैं कि सदगुरु मृत्यु है। एक अर्थ में ठीक कहते हैं। आचार्यो मृत्युः। ठीक कहते हैं कि गुरु मृत्यु है। क्योंकि जैसे मृत्यु आकर झकझोर देती है, जैसे मृत्यु आकर तुम्हें चौंका देती है-- कि सारा जीवन व्यर्थ गया; क्या कर रहे हो! वैसे ही सदगुरु भी झकझोर देता है।
लेकिन मृत्यु का झकझोरना व्यर्थ है, क्योंकि समय बचता नहीं। अब कुछ करोगे भी तो क्या करोगे! मृत्यु एक क्षण का भी अवकाश नहीं देती। आई--कि आई। मृत्यु आई--कि तुम गए। साधना के लिए समय नहीं मिल पाता। सदगुरु ऐसी मृत्यु है, जो तुम्हें झकझोरता है, लेकिन अभी जीवन शेष है। अच्छा हुआ कि तुम आ गए। और अच्छा हुआ कि तुम्हें व्यर्थता का बोध हुआ। यह शुभ लक्षण है।
सूखकर दलदल बना अपार
ओंठ पर चिपके सुख के गीत
पपड़ियां बन कर अति दयनीय
गए सपनों के पल भी बीत
नहीं कुछ भी बाकी कमनीय
श्वास-चक्र चलते हैं, मन का रथ पर ठहर गया भार के साथी! सच मानो
मेरे यौवन के युग में यह जीवन बिखर गया प्यार के साथी! सच मानो
रोज की घटना है यह बातवही होता है जो अनपेक्ष किंतु जो चाहा है दिन-रात
नहीं होने पाता वह एक
समय की गति पर मेरा जोर
नहीं है, यह था मुझको ज्ञान
समय की गति भी मुझको ज्ञात
नहीं है, अब पाया हूं जान
लहर-लहर का ढंग देख कर मैं भी लहर गया धार के साथी! सच मानो
मेरे यौवन के युग में यह जीवन बिखर गया प्यार के साथी! सच मानो
क्रांति के युग में पाकर होश
क्रांति की गति से होकर दूर
नहीं है संभव कोई जोश
इसी से हूं मैं भी मजबूर

किंतु मजबूरी का यह शोरबराबर होता जाता व्यर्थ एक दुनिया मिटती इस ओर
दूसरी बनने में असमर्थ
अगति और असफलता का यह अनुभव मिला नया
हार के साथी! सच मानो
मेरे यौवन के युग में यह जीवन बिखर गया
प्यार के साथी! सच मानो
लेकिन मौत के क्षण में यह याद भी आए तो बहुत देर हो गई--बहुत देर हो गई। चिड़िया चुग गई खेत, अब पछताए होत का। लेकिन मृत्यु के पहले--जीवन मेरा व्यर्थ जा रहा है--ऐसी प्रतीति, ऐसा साक्षात्कार, सत्य की यात्रा का प्रारंभ बनता है।
खोजो भूमि! और अगर यहां तुम्हें लगा है कि संभावना सत्य बन सकती है, तो ऐसे बाहर ही बाहर से मत लौट जाना। डूबो! निमंत्रण स्वीकार करो! नेह निमंत्रण स्वीकार करो!
संन्यास मेरा निमंत्रण है--जिनमें साहस है, उनके लिए; जिनमें अपनी छोटी सी नौका को तूफान से भरे सागर में छोड़ देने का भरोसा है, श्रद्धा है; जो जानते हैं कि तूफान भी अपना है, पराया नहीं; कि तूफान भी शत्रु नहीं है, मित्र है; कि तूफान ही ले जाएगा उस पार; कि तूफान ही बन जाएगा तारक। ऐसी श्रद्धा जहां है, वहां संन्यास संभव हो पाता है।
लेकिन कुछ मित्र आ जाते हैं--उत्सुकता से, कुतूहलवश, जैसे कोई खाज को खुजलाता है, ऐसे आ जाते हैं। आते हैं, जाते हैं; न कुछ ले जा सकते हैं यहां से; न कुछ कचरा छोड़ सकते हैं, न कुछ हीरे जोड़ सकते हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि मुझे न तो भगवान में उत्सुकता है, न धर्म में, न अध्यात्म में। मुझे तो राजनीति में उत्सुकता है। आप राजनीति पर कुछ कहें! मेरे मित्र! मुझे राजनीति में उत्सुकता नहीं है। तुम्हीं कुछ भगवान, धर्म और अध्यात्म के संबंध में सुनना चाहो सुनो। नहीं तो हमारा कोई तालमेल न हो सकेगा। मैं करता आकाश की बात, तुम पूछते पाताल की बात! संवाद कैसे हो?
राजनीति में उत्सुकता है, तो राजनीतिज्ञों के पास जाओ। राजनीति में उत्सुकता है, तो यह तुम्हारे लिए ठीक जगह नहीं है; खतरनाक जगह है। यहां कहीं ऐसा न हो जाने-अनजाने उलझ जाओ। भागो यहां से! जितने जल्दी भाग सको, उतना अच्छा। दिल्ली को गंतव्य बनाओ। वहां मिलेंगे तुम्हें गुरु! यहां तुम कहां आ गए? कैसे भूले-चूके आ गए?
यह तो जगह उनके लिए है, जो परम प्यास से भरे हैं। यह तो जगह उनके लिए है, जिन्होंने तय कर लिया है कि जीवन व्यर्थ है। यह जगह तो हरीश जैसे व्यक्तियों के लिए है।
पूछते हो हरीशः "क्या करूं, क्या न करूं?"
चुक गया जब नेह, बाती जर गई
मत करो चीत्कार
पगले!
शैल की चट्टान-सा हो
है डटा यह अंधकार अपार
इसको भेद पाएगा नहीं यह कंठ-स्वर
पहुंच पाएगी नहीं उस पार यह तेरी पुकार व्यर्थ है ललकार
अनुनय व्यर्थ है!
पर न हिम्मत हार;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा!
लौह-छेनी की तरह आलोक की किरणें
काट डालेंगी तिमिर को
ज्योति की भाषा नहीं बंधती कभी व्यवधान से! मुक्ति का बस है यही पथ एक!

न तो हाथ जोड़ो आकाश के समक्ष, क्योंकि आकाश हाथ जोड़ने को नहीं समझता।
न मंदिर-मस्जिदों में प्रार्थनाएं करो। वे प्रार्थनाएं शून्य में खो जाती हैं।
व्यर्थ है ललकार
अनुनय व्यर्थ है!
पहुंच पाएगी नहीं उस पार यह तेरी पुकार
इसको भेद पाएगा नहीं यह कंठ-स्वर
है डटा यह अंधकार अपार
चुक गया जब नेह, बाती जर गई
मत करो चीत्कार
पगले!
फिर क्या करें?
पर न हिम्मत हार;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
व्यर्थता दिखाई पड़ रही न; यह काफी शुभ लक्षण है। व्यथा का दीप अभी भी जला है।
पर न हिम्मत हार;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा!
लौह-छेनी की तरह आलोक की किरणें
काट डालेंगी तिमिर को
ज्योति की भाषा नहीं बंधती कभी व्यवधान से!
मुक्ति का बस है यही पथ एक!
ज्योति जलाओ। भीतर के दीये की ज्योति को उकसाओ। बुझ नहीं गई है। क्योंकि तुम्हें बोध हो रहा है कि जीवन व्यर्थ गया। किसे यह बोध हो रहा है? उस बोध का नाम ही ज्योति है। यह कौन तिलमिला गया है? यह कौन नींद से जाग उठा है? यह कौन--जिसका स्वप्न टूट गया है? इसी को पकड़ो। इसी को सम्हालो। इसी धीमी सी उठती हुई आवाज को अपना सारा जीवन दो। इसी धीमी सी जगमगाती लौ को अपनी पूरी ऊर्जा दो। और तुम्हारे भीतर जलेगी प्रज्वलित अग्नि, जो न केवल प्रकाश देगी, वरन शीतल भी करेगी। जलेगी प्रज्वलित अग्नि, जो तुम्हारे अहंकार को गलाएगी, जो तुम्हारे अंधकार को काटेगी, और जो तुम्हारे लिए परम प्रकाश का पथ बन जाएगी।
मैं इस दीये के जलाने की प्रक्रिया को ध्यान कहता हूं। भूमिका है संन्यास। संन्यास है तैयारी ध्यान की--आयोजन, व्यवस्था। और ध्यान है संन्यास के मध्य में टूट गया बीज--अंकुरण। संन्यास है मिट्टी का दीया। और ध्यान है उसमें जगती चिन्मय ज्योति। संन्यास है मृण्मय; ध्यान है चिन्मय। और इन दोनों का जोड़ हो जाए हरीश, तो जो मुझे हुआ, वही तुम्हें होगा। वही होना है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कितनी ही देर करो, मगर वही होना है। और जितना जल्दी कर लो, उतना शुभ। क्योंकि जितना समय नहीं होगा, उतना समय दुख-स्वप्नों में बीतेगा। उतना समय व्यर्थ कूड़ा-करकट बटोरने में बीतेगा। उतना समय व्यर्थ ही गया।
अभी भी देर नहीं हो गई। कहते हैंः सुबह का भूला सांझ घर आ जाए, तो भूला नहीं कहलाता।
हरीश, सांझ हो रही है। सुबह के भूले हो, अभी भी घर आ जाओ, तो भूले नहीं कहलाओगे।

दूसरा प्रश्नः क्या मनुष्य देह मात्र ही है या कुछ और भी?

रंजन! मनुष्य देह भी है--और देह नहीं भी। मनुष्य देह में अदेह है; शरीर में छिपा अशरीरी है; पदार्थ में प्रच्छन्न परमात्मा है।
दुनिया में दो तरह की विचारधाराएं प्रभावी रही हैं। दोनों अधूरी हैं।
एक है भौतिकवादी की परंपरा--चार्वाक, दिदरो, मार्क्स, फ्रायड, एपिकुरस और इस तरह के लोग; जिन्होंने कहा कि मनुष्य केवल देह मात्र है, और रत्तीमात्र

भी ज्यादा नहीं, भिन्न नहीं, अन्य नहीं। बस देह है; सिर्फ मिट्टी का दीया है, इसमें कोई और ज्योति नहीं। यंत्र मात्र है। जब तक चल रहा है, चल रहा है; जब गिर गया, गिर गया। जैसे तुम्हारी घड़ी बंद हो जाए, तो फिर तुम यह थोड़े ही पूछते हो घड़ीसाज से कि इसकी आत्मा कहां गई?
मुल्ला नसरुद्दीन घड़ी खरीद कर लाया था। सस्ती मिल गई थी मेले में। अब मेले की घड़ी, और खूब सस्ती मिल गई थी, तो बहुत प्रसन्न घर तक आया था। लेकिन घर तक आते-आते घड़ी बंद हो गई! तो मुल्ला ने घड़ी खोली।
पत्नी ने बहुत कहा कि तुम्हें पता नहीं घड़ी सुधारना। क्या खोल कर बैठे हो? किसी घड़ीसाज के पास जाओ।
मुल्ला ने कहा, इतनी सस्ती घड़ी! अब घड़ीसाज लूटेगा! जरा मैं ही खोल कर देखूं कि मामला क्या है? घड़ी खोली, तो उसमें एक मरा हुआ मच्छर निकला। मुल्ला ने कहा, तब तो मैं कहूं; जब ड्राइवर ही मर गया, तो घड़ी कैसे चलेगी।
चार्वाक से लेकर मार्क्स तक, तुम्हारे भीतर कोई ड्राइवर है--मच्छर जितना भी--इतना भी वे नहीं मानते! तुम बस यंत्र मात्र हो। घड़ी बंद हो गई, तो तुम यह नहीं पूछ सकते कि घड़ी में जो चलता था, वह कहां गया! पूछोगे, तो लोग पागल कहेंगे। घड़ी में कोई नहीं था जो चलता था। घड़ी तो एक संयोजन थी। कोई घड़ी की आत्मा नहीं थी जो उड़ गई--पंख पसार कर। चली गई अपने लोक! छोड़ गई देह को यहां।
यह भौतिकवादी की परंपरा। इस परंपरा में आधा सत्य है। और ध्यान रखना, आधे सत्य पूरे असत्यों से भी बदतर होते हैं। वह जो उनमें आधा सत्य होता है, वही उनका खतरा है, क्योंकि वे सत्य जैसे मालूम होते हैं--और सत्य होते नहीं। आवरण सत्य का होता है; भीतर असत्य होता है।
इस आधे सत्य या आधे असत्य के विपरीत दूसरी परंपरा है-- अध्यात्मवादियों की। उसके पीछे बड़ी भीड़ है। भौतिकवादियों के पीछे बहुत बड़ी भीड़ नहीं थी। लेकिन अब उनके पीछे भी भीड़ है, क्योंकि रूस और चीन, दो बड़े देश भौतिकवादी हो गए हैं। भौतिकवाद पहली दफा धर्म बना है। इसके पहले धर्म नहीं था। इक्के-दुक्के लोग, तर्कनिष्ठ लोग, बुद्धि से ही जीने वाले लोग, बुद्धिजीवी, कभी-कभार उस तरह की बातें कर देते थे। समाज उनका ज्यादा ध्यान भी नहीं रखता था। उनसे कुछ बनता-बिगड़ता भी न था। नक्कारखाने में तूती की आवाज थी। कौन चिंता लेता था!
लेकिन अब भौतिकवाद भी एक धर्म है; उसके भी पंडित-पुरोहित हैं; उसकी भी त्रिमूर्ति है! कार्ल मार्क्स, फ्रेड्रिक एंजिल्स और लेनिन--ये तीन की त्रिमूर्ति है। जोसेफ स्टैलिन ने बहुत कोशिश की कि इसको चार बना दें, चतुर्भुज बना दें; अपने को बहुत लगाने की कोशिश की; जब तक जिंदा रहा, तब तक उसने तीन को चार में बदल दिया था। मरते ही हटा लिया गया। उसी तीन को चार बनाने की कोशिश माओत्से तुंग की थी। लेकिन वह त्रिमूर्ति थिर हो गई है। जैसे ईसाइयों में ट्रिनिटी का सिद्धांत है, वैसा कम्युनिस्टों में त्रिमूर्ति का।
और जैसे हिंदुओं की काशी है, और मुसलमानों का काबा, और जैनों का गिरनार, और यहूदियों का जेरुसलम, वैसे ही कम्युनिस्टों का क्रेमलिन। काशी, काबा, क्रेमलिन! ये सब एक ही ढंग की चीजें हैं; इनमें कुछ भेद नहीं। जैसे अधिकारी पंडित-पुरोहित हैं, पोप हैं, पादरी हैं, शंकराचार्य हैं, वैसे ही अधिकृत कम्युनिस्ट पार्टी है, कम्युनिस्ट पार्टी का पोलिट ब्यूरो है, कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकृत विद्वान हैं, स्वीकृत विद्वान हैं। उसके भी अधिकारी हैं! उनसे अन्यथा जो जाए, वह पापी है। उनसे अन्यथा जो जाए, उसे यहीं नरक भेज दिया जाता है। क्योंकि कम्युनिस्ट भविष्य में तो भरोसा नहीं करते! मृत्यु के बाद तो उनका कोई नरक है नहीं। इसलिए उनको साइबेरिया यहीं भेज देना पड़ता है, जीते जी, या कारागृहों में डाल देना पड़ता है।
दूसरी परंपरा है अध्यात्मवादियों की। वे कहते हैं, आदमी देह नहीं है, आत्मा है। देह तो मात्र सपना है, माया है।
यह भी आधा सत्य है। देह सपना नहीं है, और देह माया नहीं।

शंकराचार्य स्नान करके काशी के घाट पर सुबह-सुबह ब्रह्ममुहूर्त में सीढ़ियां चढ़ रहे हैं और एक शूद्र ने उन्हें छू लिया। बहुत नाराज हुए और कहा कि हे मूढ़ शूद्र! तुझे इतनी भी समझ नहीं कि ब्राह्मण स्नान करके पवित्र होकर पूजा की तैयारी में जा रहा हो, उसे छुआ जाता है!
लेकिन वह शूद्र भी अदभुत था। कोई साधारण शूद्र न रहा होगा। उसने कहा,
एक बात का जवाब दे दें। जान कर ही मैंने छुआ है। इसी जवाब को जानने के लिए छुआ है। कल रात आपका प्रवचन सुना, आपके तर्क सुने। आप सिद्ध करते हैं संसार माया है। देह स्वप्न मात्र है। तो मेरे स्वप्न ने आपके स्वप्न को छुआ। एक स्वप्न दूसरे स्वप्न को छू ले, तो इसमें अपवित्र क्या हो जाएगा! न मैं हूं, न आप हैं। देह की तरह तो मैं भी असत्य, आप भी असत्य। असत्य में भी पवित्र असत्य और अपवित्र असत्य होते हैं? असत्य में भी ब्राह्मण असत्य और शूद्र असत्य होते हैं? मैं तो समझता हूं असत्य सिर्फ असत्य होता है। यदि मेरी देह ने आपको छुआ और आपकी देह अपवित्र हो गई, तो फिर देह है। फिर रात के तर्कों का क्या हुआ?
शंकराचार्य को इस तरह किसी ने न झकझोरा था। तार्किक वे बड़े थे। तर्क में उनसे कोई जीता न था। सारे देश में उन्होंने दुंदुभी पीट दी थी। शास्त्रार्थ कर-कर के लोगों को हराते चले गए थे। लेकिन इस शूद्र के सामने नत हो जाना पड़ा। और उस शूद्र ने कहा, यह भी हो सकता है आप कहें कि नहीं, देह तो माया है, लेकिन तुम्हारी आत्मा ने मेरी आत्मा को अपवित्र कर दिया। तो मैं यह कहना चाहता हूं कि रात आपने यह भी कहा था कि आत्मा अपवित्र होती ही नहीं। आत्मा तो पवित्र ही है। आत्मा के अपवित्र होने का कोई उपाय नहीं। देह असत्य है। आत्मा अपवित्र होती नहीं, क्योंकि आत्मा ब्रह्म-स्वभावी है। और ब्रह्म और अपवित्र हो जाए! तो मेरे ब्रह्म ने आपके ब्रह्म को अपवित्र कर दिया? और गंगा में स्नान ब्रह्म को करवाया था या शरीर को? गंगा का जल ब्रह्म को भी धोता है? बाहर का जल भीतर के अंतस्तल को धोने लगा?
यह पहला मौका था कि शंकराचार्य को किसी ने बेजुबान कर दिया। जैसे जीभ काट ली हो। झुक गए थे उस शूद्र के चरणों में। क्षमा मांगी थी, और कहा था, मुझे माफ कर दो। जो मैं कहता था, वह अब तक सिद्धांत था, दर्शनशास्त्र था। अब से उसे जीवन बनाऊंगा।
फिर दिन में बहुत खोज की उस शूद्र की, लेकिन वह शूद्र पाया नहीं जा सका। वह शूद्र निश्चित ही कोई अदभुत रहस्यवादी संत रहा होगा। रहा होगा किसी बुद्ध, किसी कबीर, किसी क्राइस्ट की हैसियत का आदमी, जो शंकराचार्य को भी झकझोर दिया!
यह आधी परंपरा है--जो देह को माया कहती है।
रंजन, मैं दोनों परंपराओं में से किसी को भी स्वीकार नहीं करता हूं। दोनों को एक साथ स्वीकार करता हूं। मनुष्य देह है। देह सत्य है। और मनुष्य सिर्फ देह ही नहीं है, देह के भीतर आत्मा है। और आत्मा परम सत्य है। मनुष्य दोनों का जोड़ है। मनुष्य एक अदभुत संयोग है, जहां आकाश और पृथ्वी मिलते हैं। मनुष्य एक क्षितिज है।
हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के
वरन जीवन से भरे निर्मल सरोवर!
भले मिट्टी से हुआ निर्माण,
किंतु मिट्टी है परिधि ही
नहीं हैं मिट्टी हमारे प्राण!
सूर्य की दीपित किरण से
नीर के भावुक मिलन की हम विमल संतान! सुनो फिर से!
हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के वरन जीवन से भरे निर्मल सरोवर!
भले मिट्टी से हुआ निर्माण,
किंतु मिट्टी है परिधि ही
नहीं हैं मिट्टी हमारे प्राण! सूर्य की दीपित किरण से
नीर के भावुक मिलन की हम विमल संतान!

ठीक है, हम आज चारों ओर सीमा से घिरे हैं किंतु हममें जी रही गति की असीमित धार हममें जी रहा है
सिंधु की गहराइयों का
मेघ की ऊंचाइयों का प्यार!
हम प्रखर आलोक, गतिमय भावना के पुत्र हैं हम नहीं हैं रेत के रूखे, अशुभ अंबार! पर हमें बेचैन करता यह व्यथा का भावः कट चुके हम धार से,
गति से हमारा हो चुका अलगाव!
हम सरोवर हैं
नहीं हैं धार!
यह नहीं है शाप अथवा नियति अपनी,
किंतु यह तो बस समय की बात
क्षणभंगुर परिस्थिति!
हम नदी के पुत्र हैं, पाषाण-कारा से घिरे! दूर उसके क्रोड़ से, हम दूर उस स्रोतस्विनी से, तदपि उसके अंश, हम वंशज उसी के!
हो गए हों हम भले म्रियमाण
पर समवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण!
तुम अगर हो द्वीप
रूखी रेत के बेडौल टीले!
धार की ही गोद में बैठे विषम व्यवधान,
तो भले ही तुम रहो ऊंचे, महान
पर कृपा कर यह न सोचोः
धार की हर लहर जो आती तुम्हारे पास
ठोंकती है वह तुम्हारी पीठ
या तुम्हारी कीर्ति में वह छेड़ती है तान! वह तो है विकल, बेचैन तुमको लांघ जाने के लिए सहज गति अनिरुद्ध पाने के लिए
धारा बढ़ाने के लिए!
और हम यद्यपि नहीं हैं धार
यद्यपि हैं सरोवर मात्र
किंतु यह केवल समय की बात!
लौट कर टुक ग्रीष्म आने दो, किरण का हमको तनिक वरदान पाने दो, उफन जाने दो!
हम अहम को भूल
मेट कर अपनी बनावट
तोड़ सीमाएं सभी
एक दिन फिर से मिलेंगे धार में
समवेत जीवन के अपरिमित ज्वार में!
हम उस अनंत आकाश के हिस्से हैं। और अगर आज पृथ्वी पर सीमाबद्ध हैं, तो
यह केवल परिस्थिति है। यह हमारा सत्य नहीं। जैसे कि नदी की धार नदी से कट कर सरोवर बन जाए, चट्टानों में घिर जाए; है तो धार का ही अंश, लेकिन आज चट्टानों में घिरा है। आने दो ग्रीष्म की ऋतु। उतरने दो किरण आकाश से। ले जाएगी उड़ा कर सरोवर को पुनः मेघों में। फिर बरसेगी जलधार हिमालय पर। फिर धारा बनेगी। फिर सागर से मिलन होगा।
ऐसे ही जब कोई शिष्य किसी गुरु की किरण के पास आ जाता है, तो उड़ान शुरू
हो जाती है। रहता पृथ्वी पर है, लेकिन पैर फिर उसके पृथ्वी पर नहीं पड़ते। रहता देह में है, और फिर भी देह से मुक्त हो जाता है। होता देह में है, फिर भी देह ही नहीं होता।

मैं चाहता हूं कि तुम इस सत्य को ठीक-ठीक अपने अंतस्तल की गहराई में उतार लो। देह का सम्मान करो, अपमान न करना। देह को गर्हित न कहना; निंदा न करना। देह तुम्हारा मंदिर है। मंदिर के भीतर देवता भी विराजमान है। मगर मंदिर के बिना देवता भी अधूरा होगा। देवता के बिना मंदिर भी सूना होगा। दोनों साथ हैं; दोनों समवेत, एक स्वर में आबद्ध, एक लय में लीन। यह अपूर्व आनंद का अवसर है। इस अवसर को तुम खंड सत्यों में मत तोड़ो।
रंजन, तू पूछती हैः "क्या मनुष्य देह मात्र ही है या कुछ और भी?"
देह भी है--और कुछ और भी। देह के पार भी है। पदार्थ भी है--और परमात्मा भी। और अंतिम विश्लेषण में पदार्थ परमात्मा का ही सघन रूप है, व्यक्त रूप है, प्रकट रूप है। और परमात्मा पदार्थ का ही अप्रकट, अदृश्य रूप है। अगर पदार्थ फूल है, तो परमात्मा सुगंध है। सुगंध ही घनी होकर फूल बनती है; और फूल ही विरल होकर, अदृश्य होकर सुगंध बनता है।
मैं तुम्हें न तो भौतिकवादी बनाना चाहता हूं, न अध्यात्मवादी। मैं तुम्हें सत्यवादी बनाना चाहता हूं। और सत्य दोनों है--एक साथ। वीणा भी सत्य है और वीणा से उठा संगीत भी सत्य है। हालांकि वीणा को हाथ में ले सकते हो, संगीत पर मुट्ठी न बांध सकोगे। लेकिन संगीत कम सत्य नहीं है वीणा से। संगीत असत्य होगा, तो वीणा में क्या खाक सत्य रह जाएगा! वीणा में बचेगा क्या? और अगर वीणा असत्य होगी, तो संगीत जन्मेगा कैसे?
यह अस्तित्व परमात्मा का अनिवार्य अंग है। और परमात्मा इस अस्तित्व
का अनिवार्य प्राण है। दोनों एक साथ मुझे स्वीकार है। मैं भौतिकवादी हूं-- और अध्यात्मवादी हूं। मुझे चार्वाक उतना ही प्रिय है, जितने गौतम बुद्ध। मुझे शंकराचार्य उतने ही प्रिय हैं, जितना एपिकुरस। और यहां मैं तुम्हारे संन्यास के माध्यम से एक अपूर्व समन्वय निर्मित कर रहा हूं, एक सेतु निर्मित कर रहा हूं, एक इंद्रधनुष बना रहा हूं--जो जोड़ दे इन दोनों परंपराओं को। क्योंकि इनके दोनों के जोड़ से पूरे मनुष्य का जन्म होगा। अब तक मनुष्य अधूरा-अधूरा रहा है। जो नास्तिक हुआ, वह देह में आबद्ध हो गया। जो आस्तिक हुआ, वह देह का दुश्मन हो गया। मैं चाहता हूं, क्यों न दोनों तुम्हारे हों! यह किनारा भी तुम्हारा, वह किनारा भी तुम्हारा।
उपनिषद कहते हैं, नेति-नेति। न यह, न वह। मैं कहता हूं, इति-इति। यह भी,
वह भी। मैं तुम्हें सब देना चाहता हूं जो है। इसमें से कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं है। क्योंकि कुछ भी तुम छोड़ोगे, तो कुछ न कुछ अधूरे रह जाओगे। तुम्हारी पूर्णता में थोड़ी कमी रह जाएगी। तुम्हारा गीत खंडित होगा; उसमें कुछ कड़ियां खोई होंगी। तुम्हारी वीणा के कुछ तार टूटे होंगे। तुम लंगड़े; तुम अपंग। और पूर्णता में आनंद है। पूर्ण होना सच्चिदानंद होना है। इसलिए आस्तिक भी मेरा विरोध करेगा, नास्तिक भी मेरा विरोध करेगा। नास्तिक विरोध करेगा, क्योंकि मैं आत्मा की बात करता हूं। और आस्तिक विरोध करेगा, क्योंकि मैं तुम्हारी देह को सम्मान देता हूं, समादर देता हूं। लेकिन ये आस्तिक और नास्तिक दोनों मूढ़ हैं। अगर आस्तिक मूढ़ न हो और नास्तिक मूढ़ न हो, तो दोनों, जो मैं कह रहा हूं, उसका सत्कार करेंगे। दोनों आनंदमग्न होकर नाचेंगे, कि पृथ्वी पर पहली बार हम मनुष्य की समग्रता को स्वीकार करने के योग्य हो सके; हमारी इतनी पात्रता हुई कि हम पूरे मनुष्य को स्वीकार कर लें। एक अंग को अस्वीकार न करना पड़े--दूसरे को स्वीकार करने के लिए।
आंशिक मनुष्य का समय जा चुका। अखंड मनुष्य का समय आ गया है। यह पृथ्वी
भी हमारी है, और आकाश से भरा हुआ अनंत विस्तार, तारों से भरा हुआ अनंत आकाश, वह भी हमारा है। हम पृथ्वी के फूलों को भी नहीं छोड़ेंगे, और आकाश के तारों को भी नहीं। हम दोनों को ही जोड़ कर अपना घर बनाएंगे। मेरे संन्यास में पृथ्वी के फूल और आकाश के तारों को जोड़ना है। दोनों का सेतु बनाना है। मेरा संन्यासी पुराने ढब का संन्यासी नहीं है, न पुराने ढब का संसारी है। मेरा संन्यासी एक अनूठा प्रयोग है, अति नूतन प्रयोग है, एक क्रांतिकारी प्रयोग है। क्योंकि जो भी श्रेष्ठ है--चाहे वह नास्तिक में हो, चाहे आस्तिक में--उस श्रेष्ठ को हम स्वीकार कर रहे हैं। और जो निकृष्ट है, उसको भी हम सीढ़ी बनाएंगे; उसे भी हम अस्वीकार नहीं करेंगे। अस्वीकार करना मेरी दृष्टि नहीं है। समग्र स्वीकार मेरा दर्शन है।

तीसरा प्रश्नः मैं संन्यास लेने के लिए आतुर हूं, लेकिन फिर भी वर्ष
भर से झिझक रहा हूं। यह भी शंका मन में है कि संन्यास लेने से भी क्या होगा?

कृष्णराज! यह शंका स्वाभाविक है। यह शंका बुद्धिमानी का लक्षण है--कि संन्यास लेने से क्या होगा?
लेकिन बिना लिए कैसे जानोगे? बीज टूटेगा तो क्या होगा, यह बीज बिना टूटे कैसे जाने? ओस की बूंद सागर में ढलकेगी तो क्या होगा, यह ओस की बूंद सागर में ढलके बिना कैसे जाने?
विचार तो ठीक है--कि क्या होगा संन्यास लेने से? मगर बिना संन्यस्त हुए कैसे जानोगे? किसी ने जाना है कभी कुछ बिना अनुभव के? प्रेम करके प्रेम जाना जाता है। कंठ प्यासा हो--जल पीओगे तो तृप्ति जानोगे। और भूख लगी हो--भोजन करोगे तो ही स्वाद का अनुभव होगा; और परितोष का, जो भूख के बाद भोजन के मिलने पर ही संभव है।
अगर बैठ कर सोचते ही रहे कि प्यास तो लगी है, लेकिन पानी पीने से क्या होगा? कहां प्यास और कहां पानी! दोनों में कुछ तालमेल भी तो नहीं दिखाई पड़ता। पानी कोई प्यास तो नहीं है! प्यास कोई पानी तो नहीं है! ऐसा गणित अगर बिठालते रहे, तो गणित बिठालते-बिठालते ही मर जाओगे। और जलधार बहती थी; जरा अंजुलि भरने की बात थी। जरा झुकने की बात थी।
छोटा बच्चा जब पैदा होता है, उसे भूख लगती है, तो वह यह नहीं सोचता कि मां का स्तन मुंह में लेने से क्या होगा। कृष्णराज, तुमने भी नहीं सोचा होगा कि मां का स्तन मुंह में लेने से क्या होगा। मुझे लगी भूख, स्तन लेने से क्या फायदा!
नहीं, एक अनिवार्य अंतर्बोध बच्चे को बिना किसी पूर्व-अनुभव के मां
का स्तन मुंह में लेने को मजबूर कर देता है। उसके हाथ टटोल लेते हैं मां के स्तन को। कभी पहले स्तन मुंह में नहीं लिया, और अचानक स्तन से दूध पीना शुरू कर देता है! जैसे जानता ही है।
ऐसे ही तो तुम पानी पीते हो। ऐसे ही तुम भोजन करते हो। ऐसा ही संन्यास है। यह आत्मा का भोजन है। बिना अनुभव के न जानोगे। तुम्हारे प्राण तो कह रहे हैं कि ले लो; लो छलांग; करो साहस। तुम्हारी बुद्धि झिझक रही है। बुद्धि के झिझकने के पीछे एक महत कारण है। बुद्धि संन्यास से डरती है, क्योंकि संन्यास दीवानापन है। संन्यास तो ऐसा है, जैसे शमा की ओर दौड़ता हुआ परवाना। संन्यास तो ऐसा है, जैसे प्रेम। एक पागलपन है संन्यास! एक मदहोशी है। जैसे कोई शराब पी ले। संन्यास एक शराब है।
उमर खय्याम ने जिस शराब की बात की है, वह संन्यास ही है। उमर खय्याम कोई शराबी नहीं है। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है। उमर खय्याम के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। फिटजराल्ड ने अंग्रेजी में उमर खय्याम का अनुवाद करके बड़ी कृपा भी की दुनिया पर, और बड़ी हानि भी की।
कृपा की, क्योंकि बिना फिटजराल्ड के अनुवाद के उमर खय्याम को शायद कोई कभी जानता ही न। उसकी रुबाइयात अपरिचित ही रह जाती। फिटजराल्ड ने उसकी रुबाइयात को विश्व-साहित्य बना दिया। उसके द्वारा ही उमर खय्याम का नाम दूर-दूर तक फैला, दिग-दिगंत तक फैला। उमर खय्याम की गणना कालीदास, भवभूति, शेक्सपियर, बायरन, शैली, रवींद्रनाथ--उस कोटि में हो गई। और कुछ है उमर खय्याम में, जो इनमें से किसी में भी नहीं। कुछ रस है, कुछ जीवंतता है। लेकिन एक नुकसान भी हुआ। फिटजराल्ड ने... चूंकि फिटजराल्ड कोई सूफी नहीं है, कोई रहस्यवादी संत नहीं है। कोई संन्यासी नहीं है, कोई ध्यानी नहीं है, कोई भक्त नहीं है। न कभी पूजा की, न प्रार्थना, न अर्चना। पैरों में घुंघरू बांध कर किसी मंदिर में नाचा नहीं। किसी मस्जिद में जाकर प्रभु को पुकारा नहीं। उसने तो शाब्दिक अर्थ लिया--शराब यानी शराब। उसने उमर खय्याम को एक बड़ा गलत अर्थ दे दिया। लोग समझने लगे उमर खय्याम शराबी है।
तुम जान कर हैरान होओगे, उमर खय्याम ने जीवन में कभी शराब छुई भी नहीं। फिर किस शराब की बात कर रहा है उमर खय्याम? उसी शराब की, जिसे मैं

संन्यास कहता हूं। दे रहा है पुकार--कि पी लो! कि दिन बीते जाते हैं--पी लो! कि सुबह हो गई और सांझ होने में देर न लगेगी। यह देखो, सूरज ने जाल फेंक दिया सुबह का। अब बस सांझ होने में देर न लगेगी। जन्म हो गया, तो मृत्यु होने में देर कितनी लगेगी!
कृष्णराज, मरते वक्त सोचोगे कि मरने से क्या होगा? मरते वक्त कोई पूछेगा ही नहीं तुमसे कि मरने से कुछ होगा या नहीं। मौत आ जाती है जबरदस्ती।
संन्यास स्वेच्छा से वरण की गई मौत है। और जो स्वेच्छा से मृत्यु को वरण कर लेता है, उसकी मृत्यु फिर कभी नहीं आती। जो खुद ही मर गया, अब उसे मारेगी कौन मौत! संन्यासी को छोड़ कर सभी मरते हैं।
जरा समझ लेना मेरी बात को! ऐसे तो संन्यासी भी मरता है। एक दिन देह तो गिर जाती है। एक दिन अरथी तो उठती है। लेकिन बस देह ही मरती है; भीतर तो संन्यासी जागता ही रहता है। मृत्यु में भी जागता रहता है। मृत्यु में भी देखता रहता है--कि देह जा रही। और मैं? मैं शाश्वत हूं। मैं सदा हूं। उस नित्यता का बोध बना ही रहता है। उस अमृत की प्रतीति होती ही रहती है।
तुम पूछते होः "संन्यास लेने से क्या होगा?"
मृत्यु होगी। ऐसी मृत्यु, जो तुम्हें सारी मृत्युओं से छुटकारा दिला देगी। लेकिन यह होगा लेने से ही।
और मौत आती होगी कृष्णराज! चल ही पड़ी है उसी दिन, जिस दिन तुम पैदा हुए। तुम्हारा वारंट लेकर चल ही रही है। और वारंट भी ऐसा है, जिसकी जमानत नहीं होती। मौत आई--कि आई। एक क्षण ठहरती भी नहीं कि तुम कहो कि जरा मैं अपना बोरिया-बिस्तरा बांध लूं! कि पथ के लिए कुछ पाथेय सजा लूं! कि थोड़ा कलेवा रख लूं! कि जरा ठहर कि दो क्षण अपनों से मिल लूं! विदा ले लूं! कम से कम अलविदा कह दूं! अलविदा कहने का भी क्षण नहीं आता।
गमन के क्षण
अब रुको मत ओ अप्रस्तुत मन!
चल दो
राह में लगी है आग
चलना है खेल नहीं
पर क्या सकोगे भाग
कर्म से बचोगे कहीं?
बच्चों की भांति यों मचलो मत भीरु मन! चल दो
कि आ पहुंचा है चलने का क्षण!
चल दो--
क्षुद्र इस जी की यह कमजोरी कुचल दो! दौड़ती इस धड़कन से पैरों में बल दो! रुको मत, चल दो!
प्रात उठ देखा थाः
हवा के झकझोरे से
पेड़ के पत्ते टूट
बिखर गए आंगन में
शाम तक पीले भी पड़ गए!
तुम भी अब चल पड़ो
झाड़ कर सुख के क्षण
हवा रुकती नहीं, रुकोगे भला क्यों तुम?
तुम से ही खिलेंगे दूर एक दिन नये कुसुम
द्रुम से यह मोह क्यों अबूझ मन!
चल दो--
चल दो कि आ पहुंचा है चलने का क्षण!
मौत आएगी, चलना पड़ेगा। न सोच सकोगे, न विचार कर सकोगे, न निर्णय ले सकोगे।
और तुम कह रहे हो कि "मैं संन्यास लेने के लिए आतुर हूं।"
कैसी यह आतुरता?

"लेकिन फिर भी वर्ष भर से झिझक रहा हूं।"
आतुरता और झिझक? आतुरता में कुछ कमी होगी। आतुरता हार्दिक न होगी, बौद्धिक होगी। बुद्धि झिझकती है, हृदय झिझकना जानता ही नहीं। हृदय तो चल देता है--अनजानी, अपरिचित राहों पर। नक्शा भी साथ नहीं, मार्गदर्शक भी साथ नहीं--तो भी हृदय चल देता है।
और फिर एक दिन तो मौत में जाना ही पड़ेगा। वहां मैं भी साथ नहीं। वहां संन्यासी भी साथ नहीं। वहां बिल्कुल अकेले होओगे। उसके पहले थोड़ी देर साथ-साथ चलने का मजा ले लो। उसके पहले थोड़ी देर मरने की प्रक्रिया सीख लो, मरने की कीमिया सीख लो।
झिझको मत। झिझकना कमजोरी है, कायरता है।
और पूछते होः "संन्यास लेने से क्या होगा?"
अभी तक कुछ भी तो नहीं हुआ तुम्हारे जीवन में, फिर भी जीए! यही जीवन दोहराते रहोगे आगे भी? अब तक जिस जीवन से कुछ भी नहीं हुआ, इसी को आगे भी दोहराए जाना है? तो क्या तुम सोचते हो कुछ होगा? यह कोल्हू के बैल जैसा जीवन!
अब तक तुमने जो कुछ किया है, उससे अन्यथा कुछ करो। संन्यास वही है। संसार करके देख लिया है; अब जरा अन्यथा भी करके देखो। होशपूर्वक, चालाकी से, सोच-विचार से, बुद्धि से, तर्क से भी चल कर देख लिया है; अब जरा प्रेम से भी चल कर देखो, भक्ति से भी चल कर देखो। डगमगा कर भी देखो, कि पैर रखो यहां और पड़ें वहां। आंखों में अब जरा खुमार लेकर भी देखो। पीकर भी देखो।
यह तो मधुशाला है। सामने जाम भरा रखा है। मैं सुराही लिए बैठा हूं--कि
और उंडेलूं। तुम पीओ तो और उंडेलूं। और तुम बैठे-बैठे सोच रहे हो कि पीने से क्या होगा? और प्यास से तड़पे भी जा रहे हो, और पूछते हो पीने से क्या होगा?
शांत हो जा मन! कि जीना है अभी--
अभी जीवन में अनागत हैं न जाने और कितने ज्वार
जाने और कितने अभावित, अति अकल्पित संघर्ष
कितनी व्यथा, कितना हर्ष!
छूट जाएं साथ के संगी पुराने--
अरे! धुंधली भले ही पड़ जाए
तेरे इन रुआंसे लोचनों में
यह कंटीली राह,
और इतना ही नहीं,
अचरज नहीं जो कुछ क्षणों को
हृदय का अति यत्न से संचित, सधा उत्साह
भी सो जाए
हो जाए विवश, बेकार
किंतु मन मेरे! न भूल
अभी पथ का नहीं आया कूल
अभी यात्रा का नहीं है अंत
इस विषम संघर्ष में तू अभी भी हारा नहीं है! व्यर्थ शंकाएं न कर
व्यर्थ की दुष्कल्पनाओं से न हो कातर
शांत हो जा,
अभी जीवन में बहुत कुछ है अनागत
बहुत बाकी है!
तुम पूछते होः "संन्यास लेने से क्या होगा?"
अभी जीवन में बहुत कुछ है अनागत
बहुत बाकी है!
अभी पथ का नहीं आया कूल
अभी यात्रा का नहीं है अंत
इस विषम संघर्ष में तू अभी भी हारा नहीं है!
अभी जी रहे हो। अभी श्वास चल रही है। हृदय में धड़कन है। अभी लहू दौड़ रहा है। कितने ही दिन चले गए हों व्यर्थ, अभी बहुत कुछ बाकी है। अभी अनागत

है; अभी भविष्य शेष है। इस भविष्य को नये ढंग से जी लो कृष्णराज! पुरानी लीक ही पीटते रहोगे?
जैसे सोचते हो--संन्यास लेने से क्या होगा? ऐसे अब यह सोचो कि संन्यास
न लेने से क्या होगा? अब तक संन्यासी नहीं रहे थे। अब तक क्या हो गया है? एक बात तो पक्की है कि कम से कम संन्यास एक नया प्रयोग होगा। कुछ हो या न हो। नई राह तोड़ी जाएगी। कौन जाने, पुरानी राह से जो नहीं हुआ, नई राह से हो जाए! इतनी जिज्ञासा से भी चलो। कौन जाने, पुराना पथ तो परिचित है; उसी-उसी पर चक्कर काटते रहोगे? और सोचते नहीं एक भी बार कि इतने चक्कर काट कर कुछ न हुआ, तो अब क्या होगा!
धन इकट्ठा किया। करते रहोगे धन ही इकट्ठा? प्रतिष्ठा, पद--दौड़ते रहोगे उन्हीं के पीछे? हजार बार सिद्ध हो गया है कि सब मृग-मरीचिका है। लेकिन फिर नई मृग-मरीचिकाएं बना लोगे? नये सपने संजो लोगे? फिर चल पड़ोगे वही चाल, वही बेढंगी चाल?
संन्यास कम से कम नया तो है, अभिनव तो है। कौन जाने कुछ हो ही जाए!
एक बात ख्याल रखो, जब भी पुराने और नये में चुनना हो, तो नये को चुनना, क्योंकि पुराने से तो परिचित हो ही। अगर नये से कुछ भी न होगा, तो भी इतना तो होगा कि चलो, इस राह पर भी मिलता नहीं। अब कोई तीसरी राह खोजें। यह भी क्या कम है! सत्य के थोड़े करीब आए। दो राहों से देख लिया, नहीं पाया; अब तीसरी राह खोजें। तीन राह से खोज लिया, नहीं पाया; अब चौथी राह खोजें। ऐसे धीरे-धीरे राहें कटती जाएंगी। एक न एक राह पर तो होगा। क्योंकि भीतर अपेक्षा है, आकांक्षा है, अभीप्सा है--तो कहीं न कहीं जरूर होगा।
भोजन के पहले भूख नहीं बनाई जाती; भूख के पहले भोजन बना दिया जाता है।
जल के पहले प्यास नहीं; प्यास के पहले जल निर्मित हो जाता है। बच्चा पैदा होता है, उसके पहले मां के स्तन दूध से भर जाते हैं। यह जीवन अराजकता नहीं है। यहां एक सुसंबद्ध सूत्र चल रहा है। जीवन एक परम व्यवस्था है।
बुद्ध ने संन्यास से जाना, महावीर ने जाना, कृष्ण ने जाना, जनक ने जाना। इन सब के संन्यासों के अपने-अपने ढंग थे। लेकिन सब ने संन्यास से जाना। संन्यास का अर्थ क्या है? संन्यास का इतना ही अर्थ हैः बाहर से अपने जीवन को ऐसा बना लेना कि भीतर ध्यान घटित हो सके। बाहर जीवन में ऐसी परिस्थिति खड़ी कर लेनी, ताकि भीतर मनःस्थिति बदल सके। संन्यास ध्यान का बाहरी रूप है; ध्यान संन्यास का अंतरंग। संन्यास देह है; ध्यान आत्मा।

चौथा प्रश्नः मैं भी रूपांतरित होना चाहती हूं। स्वप्नों में बहुत जीवन गंवाया। लेकिन अब मुझे बचाओ। मेरे लिए क्या आदेश है?

लीला! पहली बात, मैं आदेश नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हारा मालिक नहीं हूं, तुम मेरे गुलाम नहीं हो। आदेश शब्द तो भद्दा है। आदेश तो सैनिकों को दिए जाते हैं, संन्यासियों को नहीं।
आदेश और उपदेश का भेद समझ लो। आदेश का अर्थ होता हैः ऐसा करना ही होगा।
मैं उपदेश देता हूं। उपदेश का अर्थ होता हैः सुन लो, समझ लो; फिर करना
या न करना, वह तुम्हारे निर्णय की बात है। करोगे, तो भी मैं खुश हूं। नहीं करोगे, तो भी मैं खुश हूं।
आदेश का अर्थ होता हैः करोगे, तो मैं खुश; नहीं करोगे, तो मैं नाराज। आदेश का अर्थ होता हैः मान कर चलोगे, तो स्वर्ग; नहीं मान कर चलोगे, तो नर्क। आदेश में पुरस्कार और दंड छिपे होते हैं।
उपदेश में न कोई पुरस्कार है, न कोई दंड। उपदेश में न कोई स्वर्ग है, न कोई नर्क। उपदेश का अर्थ होता हैः मैंने कुछ जाना है, मैं तुम्हें उस जानने में साझीदार बनाता हूं; आज्ञा नहीं देता। आज्ञा तो दी ही नहीं जा सकती। क्योंकि मैं मैं हूं, तुम तुम हो। जो मुझे सही था, ठीक वैसा ही तुम्हें सही नहीं होगा। मेरे कपड़े तुम्हें नहीं आएंगे; तुम्हारे कपड़े मुझे नहीं आएंगे।
यूनान में एक पुरानी कहानी है। एक सम्राट था; झक्की था। उसने एक सोने
का पलंग बनवाया था। हीरे-जवाहरात जड़वाए थे। वह खासकर मेहमानों के लिए

बनवाया था। लेकिन उसके घर मेहमान वर्षों तक नहीं आते थे। डरते थे। क्योंकि खबर फैल गई थी कि उस पलंग पर सोना पड़ेगा। आखिर उस पलंग पर सोने में ऐसी क्या अड़चन थी? लेकिन कभी कोई भूला-चूका मेहमान फंस जाता, जिसको पलंग का पता नहीं था। फंसा कि मुश्किल में पड़ा। उस पलंग पर सोना पड़ता।
पलंग तो बड़ा सुंदर था। पलंग तो बड़ा ही सुविधापूर्ण था। ऐसा सुंदर पलंग पृथ्वी पर दूसरा नहीं था। मगर खतरा एक था--सम्राट के साथ, पलंग के साथ नहीं। अगर मेहमान लंबा होता, तो वह उसके पैर कटवा देता; पलंग के बराबर करवा देता! अगर मेहमान छोटा होता, तो उसने दो बड़े पहलवान रख छोड़े थे, जो उसको दोनों तरफ से खींचते और उसको पलंग के बराबर करते। और ऐसा तो बहुत मुश्किल ही था कि कोई आदमी ठीक-ठीक पलंग की साइज का मिल जाए! हालांकि उसने पलंग औसत बनवाया था। लेकिन औसत के साथ एक खतरा है। औसत आदमी कहीं होते ही नहीं। औसत का सिद्धांत गणित में ठीक है, जिंदगी में बिल्कुल गलत है।
जैसे समझो, हम यहां बैठे हुए हैं, पांच सौ लोग बैठे हुए हैं। इनकी औसत ऊंचाई क्या है? इन सबकी ऊंचाई नाप लो। इसमें कोई दो फीट का बच्चा है। कोई पांच फीट का जवान है। कोई छह फीट लंबा है। कोई डच साढ़े छह फीट होगा। सात फीट का भी आदमी मिल जाएगा। इन सबकी ऊंचाई जोड़ लो, फिर उसमें पांच सौ का भाग दे दो। फिर जो ऊंचाई आएगी वह औसत! हो सकता है तीन फीट साढ़े तीन इंच!
ऐसे उसने अपनी राजधानी की ऊंचाई, औसत ऊंचाई निकलवा ली थी और उस आधार
पर पलंग बनवाया था।
अब औसत ऊंचाई का आदमी मिलना मुश्किल है। यहां पांच सौ आदमियों में शायद ही कोई हो जो तीन फीट साढ़े तीन इंच हो! शायद, संयोगवशात! औसत आदमी कहीं नहीं होता।
पश्चिम का बहुत बड़ा गणितज्ञ हुआ। उस गणितज्ञ ने ही सबसे पहले औसत ऊंचाई का सिद्धांत निकाला था। हैरेडोटस उसका नाम था। और जब कोई किसी सिद्धांत को खोजता है, तो उसके आनंद का पारावार नहीं होता। जैसे छोटे बच्चे जब पहली दफा कोई शब्द बोलते हैं, तो दिन भर उसी-उसी को दोहराते हैं। अगर उनको मम्मी शब्द कहना आ गया तो वे दिन भर मम्मी-मम्मी कारण-अकारण मम्मी लगाए रखते हैं। उनको इतना मजा आता है कहने में! इस बात की संभावना कि मैं भी बोल सकता हूं! ऐसे ही जब किसी वैज्ञानिक को कोई पहला सिद्धांत मिल जाता है, तो दीवाना हो जाता है। वह पहला मनुष्य है जिसने खोजा!
हैरेडोटस अपने बच्चों को लेकर रविवार के दिन पिकनिक को गया है। एक छोटी सी नदी को पार करना पड़ता है। पांच-छह बच्चे हैं, पत्नी है। पत्नी पीछे है, बच्चे बीच में हैं, हैरेडोटस आगे है। पत्नी ने बहुत कहा कि बच्चों को सम्हाल लो, नदी की धार तेज है! हैरेडोटस ने कहा, तू घबड़ा मत। मैंने नदी की औसत गहराई और बच्चों की औसत ऊंचाई नाप ली है। अपने बच्चों की औसत ऊंचाई नदी की औसत गहराई से बड़ी है। बेफिक्र रह। कोई डूब नहीं सकता। मेरा सिद्धांत अखंड है।
लेकिन बच्चे डुबकी खाने लगे। क्योंकि औसत ऊंचाई एक बात है। नदी कहीं
एक फीट गहरी थी और कहीं तीन फीट गहरी थी। कहीं छह इंच गहरी थी और कहीं पांच फीट गहरी थी। और कहीं बिल्कुल छिछली थी। कोई बच्चा बड़ा था, कोई छोटा था। औसत ऊंचाई तो औसत गहराई से ज्यादा थी, मगर औसत सत्य नहीं होता! बच्चे डुबकी खाने लगे। पत्नी चिल्लाई कि बच्चे डुबकी खा रहे हैं!
लेकिन तुम्हें पता है, वैज्ञानिक ने क्या किया? वैज्ञानिक ने बच्चों
की फिक्र नहीं की। भागा नदी के उस तट पर, जहां उसने रेत में हिसाब लगाया था औसत का। कहा कि देखूं, कोई गलती सिद्धांत में हो गई क्या? या मेरे हिसाब में कोई भूल हो गई? बच्चे डुबकी खा रहे हैं; वह अपना सिद्धांत और हिसाब बिठा रहा है!
ऐसे ही सम्राट ने औसत ऊंचाई नाप कर लोगों की, पलंग की औसत लंबाई तय की थी। बड़ी मुश्किल में पड़ जाता था जो मेहमान आ जाता। मर ही जाता। न मालूम कितने मेहमान मर गए। मगर उसको समझ न आई, सो न आई। वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। अब पलंगों के साथ अगर मेहमानों की ऊंचाई बढ़ानी पड़ेगी, तो मेहमान मरेंगे।
आदेश का वही अर्थ होता है कि जो मैं कहता हूं, वह करना। हो सकता है, जो मैं कहता हूं वह मेरे लिए सत्य रहा हो। लेकिन मेरे जैसा दूसरा आदमी नहीं

है कहीं--ठीक मेरे जैसा। इसलिए जो मेरे लिए सत्य है, वह ठीक तुम्हारे लिए सत्य नहीं होगा--बिल्कुल वैसा का वैसा सत्य नहीं होगा। और आदमी की यही दुर्घटना हुई आदमी के साथ, दुर्भाग्य हुआ।
सदियों-सदियों से तुम्हें आदेश दिए गए। और जिन्होंने आदेश दिए, उन्होंने सोचा, जब हमारे जीवन में इस सिद्धांत से इतना आनंद हुआ है, तो औरों के जीवन में भी खूब आनंद होगा।
हुआ नहीं। उलटी ही हालत हुई। सारी पृथ्वी दुख से भर गई है। यह तुम्हारे साधु-संतों के आदेशों के कारण। यह तुम्हारे तथाकथित ज्ञानियों के आदेशों के कारण। इनके लिए सिद्धांत मूल्यवान हैं, तुम मूल्यवान नहीं हो। ये सिद्धांत के हिसाब से तुम्हारी काट-छांट कर देते हैं। ये सिद्धांत की काट-छांट नहीं करते। ये सिद्धांत में बदल नहीं लाते। ये किताब को नहीं बदलते। ये तुम्हें बदलते हैं।
मेरी पकड़ और है। मेरी दृष्टि और है। कोई सिद्धांत किसी मनुष्य से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। कोई शास्त्र मनुष्य से ज्यादा कीमत का नहीं है। शास्त्रों के लिए मनुष्य नहीं बने हैं, मनुष्यों के लिए शास्त्र बने हैं। इसलिए मैं आदेश नहीं देता; उपदेश जरूर देता हूं।
उपदेश का अर्थ हैः जो मैंने जाना, निवेदन करता हूं। इसमें तुम छांटना, खोजना; जो तुम्हें रुच जाए, जो तुम्हें प्रीतिकर लगे, वह चुन लेना। जो तुम्हें उल्लास दे, उमंग दे, उत्साह दे, वह चुन लेना। वह तुम्हीं चुन सकते हो। उसका आदेश मैं नहीं दे सकता।
महात्मा गांधी के आश्रम में और न मालूम कितने तरह की व्यर्थ बातें चलती थीं, उनमें एक व्यर्थ बात थी नीम की चटनी! सैद्धांतिक बात है वैसे। अगर तुम आयुर्वेद के ज्ञाताओं से पूछो, तो वे कहेंगे, नीम से ज्यादा औषधि! नीम से ज्यादा सुंदर रसायन! सब दोषों से मुक्त--नीम है।
तुमने कहानी सुनी ही है कि तीन पंडित काशी से घर की तरफ चले सारी शिक्षाएं लेकर। रास्ते में रुके। भूख लगी। भोजन बनाना था। तो कौन क्या काम ले! उनमें एक था जो वनस्पति-शास्त्री था। लोगों ने कहा, वनस्पति- शास्त्री पास हो, तो इसी को भेजो सब्जी लेने। क्योंकि इससे ज्यादा ठीक सब्जी और कौन लाएगा!
वनस्पति-शास्त्री सब्जी लेने गया। उसने सारे शास्त्र ख्याल में लाए
कि श्रेष्ठतम वनस्पति क्या है? अंततः उसने यही निर्णय लिया--नीम की पत्ती! क्योंकि नीम की पत्तियों से हानि होती ही नहीं। लाभ ही लाभ है। खून की शुद्धि होती है। बीमारियों का रेचन होता है। नीम में कोई दोष है ही नहीं। अड़चन है तो एक कि नीम कड़वी है। मगर कड़वी होने से क्या होता है! जहां इतने सुंदर लक्षण और गुण हों, वहां थोड़ी सी कड़वाहट के पीछे... ! अगर अमृत कड़वा भी हो, तो छोड़ दोगे क्या? और जहर अगर मीठा भी हो, तो पी लोगे क्या?
वह बाजार गया ही नहीं। उसने जंगल में ही नीम के झाड़ पर चढ़ कर नीम की पत्तियां तोड़ीं और बड़ा प्रसन्न लौटा कि अपना वनस्पति-शास्त्र का ज्ञान आज काम आया।
दूसरा उनमें था व्याकरणाचार्य, ध्वनि-शास्त्र का ज्ञाता। उसने ध्वनि
पर बड़ा अध्ययन किया था। तो कहा कि यह क्या करेगा? इसके लिए क्या काम दें? उन्होंने कहा, इसे काम दें कि जब तक सब्जी आए, घी आए--आटा तो उनके पास था, चावल उनके पास था--तब तक यह चूल्हा जलाए। क्योंकि लकड़ियां आवाज करेंगी-- चरमरर चूमरर; फिर जलेंगी, तो चिटकने की आवाज आएगी। और यह ध्वनि-शास्त्र का ज्ञाता है, तो यह इस तरह चूल्हा जलाएगा, जैसा चूल्हा कभी नहीं जलाया गया। और उसमें से मधुर संगीत पैदा होगा! और मधुर संगीत जिस चूल्हे में पैदा होता हो, उसमें सब्जी पके, कहना क्या! वनस्पति-शास्त्री, काशी का सबसे बड़ा वनस्पति-शास्त्री सब्जी लाए; और काशी का सबसे बड़ा ध्वनि-शास्त्री चूल्हा जलाए--इससे और सुंदर संयोग क्या हो सकता है!
और तीसरा था दार्शनिक। उससे कहा कि तुम बाजार जाओ। क्योंकि तुम्हारी किताबों में हमेशा यह आता है... तर्क की किताबों में, पुरानी किताबों में यह सिद्धांत आता है कि जब हम घी को पात्र में रखते हैं, तो पात्र घी को सम्हालता कि घी पात्र को सम्हालता? तो तुम घी खरीद लाओ। क्योंकि तुम्हें

तो अब तक पक्का हो ही गया होगा कि कौन किसको सम्हालता है! तुम महापंडित हो, महा-महा उपाध्याय! तुम जाओ!
वह चला। उसने घी खरीदा। शास्त्र में तो बहुत बार पढ़ा था, लेकिन घी कभी खरीदने गया नहीं था। शास्त्र में तो पढ़ा था, किताब में तो लिखा था कि पात्र ही घी को सम्हालता है। लेकिन उसने कहा कि प्रयोग तो करके देखना चाहिए--यह सच भी है या झूठ? इसके लिए कोई प्रायोगिक आधार भी है या नहीं?
पात्र में घी लेकर चला। रास्ते में उसको बहुत जिज्ञासा जगी। दार्शनिक
तो था ही। उसने पात्र उलट कर देखा। सारा घी गिर गया। उसने कहा कि शास्त्र ठीक कहते हैं। शास्त्र हमेशा ठीक कहते हैं। अब यह सिद्ध हो गया कि पात्र ही घी को सम्हालता है; घी पात्र को नहीं सम्हालता।
वह बड़ा प्रसन्न लौटा; हालांकि घी वगैरह कुछ लाया नहीं। और पास के पैसे थे, वे भी गए! खाली पात्र लिए चला आया! लोगों ने पूछा, इतने प्रसन्न क्यों हो? पात्र खाली! उसने कहा, तुम्हें पता नहीं कि सिद्धांत सही सिद्ध हुआ।
यह इतनी बड़ी उपलब्धि है! शायद किसी दार्शनिक ने कभी प्रयोग करके देखा ही न हो; किताब में ही लिखा हो। मैं शायद पहला आदमी हूं जिसने प्रयोग किया।
पात्र ही सम्हालता है--मैं तुमसे कहता हूं--घी नहीं सम्हालता पात्र को।
उन दोनों ने सिर ठोंक लिया। मगर उनकी भी हालत ठीक नहीं थी।
दार्शनिक ने पूछा, और सब्जी कहां है? नीम की पत्तियों का ढेर लगा था। दार्शनिक ने कहा, यह सब्जी! वनस्पति-शास्त्री ने कहा, हमारे शास्त्र में नीम से ज्यादा और सुंदर कोई औषधि नहीं है। और सभी सब्जियों में रोग होता है। किसी सब्जी से बादी बढ़ती है। किसी सब्जी से पित्त खराब होता है। किसी सब्जी से ऐसा, किसी सब्जी से वैसा। लेकिन नीम कीटाणु-नाशक है। नीम के लेने से लाभ ही लाभ है।
लेकिन चूल्हा भी जला नहीं था। सब्जी आई नहीं। घी आया नहीं। चूल्हा जला नहीं। उलटे, जो हंडी पास में थी, वह फूटी पड़ी थी! आग बुझी थी। और ध्वनि- शास्त्री बड़ा आनंदमग्न बैठा था। उससे पूछा कि हुआ क्या?
उसने कहा, हुआ यह कि शास्त्र में कहा है कि कभी भी अपशब्द को पैदा न होने दें। अपशब्द का विरोध है। और जब मैंने यह पानी चढ़ाया और आग जलाई, तो हंडी खुदुर-बुदुर, खुदुर-बुदुर करने लगी। खुदुर-बुदुर ध्वनि है ही नहीं। किसी शास्त्र में इस ध्वनि का उल्लेख नहीं--खुदुर-बुदुर। इसका मतलब क्या? अर्थहीन! अपशब्द! मुझसे न रहा गया। मैंने उठाया लट्ठ। क्योंकि किसी भी चीज को मिटाना हो तो जड़ से ही मिटा देना चाहिए। मारा लट्ठ; खुदुर-बुदुर खतम कर दिया। खतम करके मस्त बैठा हूं। आज जीवन में एक सुकृत्य हुआ--अपशब्द न फैलने दिया दुनिया में। क्योंकि ध्वनि में बड़ी शक्ति होती है। खुदुर-बुदुर फैलता जाए, फैलता जाए, फैलता जाए--सारा आकाश खुदुर-बुदुर हो जाए। इस तरह की तरंगें मनुष्य के लिए घातक हैं। इससे महायुद्ध तक हो सकता है! महायुद्ध और क्या है सिवाय खुदुर-बुदुर! मैंने इसको नष्ट कर दिया।
ऐसे वे तीन पंडित! महात्मा गांधी उनसे कुछ पीछे नहीं। उनके आश्रम में नीम की चटनी बनती थी। आश्रमवासियों को तो लेनी ही पड़ती थी, आदेश था।
लुई फिशर, अमरीका का एक पत्रकार महात्मा गांधी को मिलने आया--बड़ा लेखक, विचारक। महात्मा गांधी ने उसे अपने साथ ही भोजन पर बिठाया। और आई चटनी! छोटी-मोटी नहीं आती थी। जैसा कि तुमने देखा हो कि भंग खाने वाले भंग का गोला चढ़ाते हैं, ऐसे भंग के गोले की तरह चटनी आती थी। हरी चटनी! और गांधी ने इतनी प्रशंसा की लुई फिशर से कि इस चटनी के लाभ ही लाभ हैं। इसके गुणों का खूब गुणगान किया। उसने सोचा, पहले इसी को चखूं। चखी, मुंह में जहर ही जहर फैल गया! उसने कहा, मारे गए! अगर यह चटनी खानी है--और सात दिन मुझे रहना है इस आश्रम में! चौदह बार अगर यह चटनी खानी पड़ी, तो मेरी पत्नी का सौभाग्य अब परमात्मा के हाथ में है। और सारे आश्रमवासियों को देखा, वे तो मजे से खा रहे हैं चटनी! वे तो अभ्यासी हो गए थे। उसने सोचा कि एक ही रास्ता ठीक है कि पहले इस गोले को पूरा गटक जाऊं पानी के साथ। कम से कम पूरा भोजन तो खराब होने से बचेगा। नहीं तो रोटी बार-बार इसमें लगाओ। सब्जी में मिलाओ। तो सभी खराब हो जाएगा। तो वह पूरा गोला गटक गया। महात्मा गांधी ने कहा कि देखो मैंने कहा था न कि लुई फिशर समझदार आदमी है, सबसे पहले उसने चटनी ली। और लाओ चटनी! यह आदमी समझदार है और यह जानता है राज कि नीम के क्या गुण हैं!

लुई फिशर ने तो अपने माथे से हाथ मार लिया। उसने तो किसी तरह गटका था गोला, कि इससे झंझट मिटे। एक दफा गले से नीचे उतर गया, फिर जो होगा होगा। दूसरा गोला आ गया। सात दिन उसकी जो सबसे ज्यादा मुसीबत थी, वह चटनी थी। मगर गांधी का आदेश तो मानना पड़े!
चाय नहीं पी सकते थे लोग--गांधी का आदेश! जितने वक्त गांधी कहें सोओ, उतने वक्त सोना पड़े--नींद चाहे आए, चाहे न आए। जितने वक्त कहें उठो, उतने वक्त उठना पड़े।
अब हर आदमी की नींद अलग-अलग होती है। कुछ रात के पक्षी होते हैं, उनको दिन भर उतनी ताजगी नहीं होती। उनकी ताजगी आती ही सूरज के डूबने के बाद है! इसी तरह के लोग होटलों में, क्लबघरों में दिखाई पड़ेंगे। दिन भर तुम उनको उदास पाओगे, मगर सांझ एकदम उनमें रौनक आ जाती है। इसमें उनका कसूर नहीं है। उनके शरीर की वैज्ञानिक प्रक्रिया, सूरज के ढलने के बाद ही उनके भीतर उत्साह को जन्माती है। अगर ये जल्दी सो जाएं तो सिर्फ करवट बदलेंगे, सो नहीं सकते। और अगर जल्दी सो जाएं तो करवट बदलने में इतनी नींद खराब कर लेंगे कि फिर बारह और एक भी बज जाए, तो भी नहीं सो सकते। ये तो बारह-एक बजे सोएं, तभी इनको सुखद निद्रा आएगी। और इनको तुम सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठा दो--ब्रह्ममुहूर्त यानी तीन बजे रात--तीन बजे रात इनको उठा दो, ये दिन भर सुस्त रहेंगे। इनकी दिन भर हालत खराब रहेगी।
बर्नार्ड शॉ ने लिखा है कि मैं सिर्फ एक बार ब्रह्ममुहूर्त में उठा जीवन में और उस दिन के बाद फिर कभी नहीं उठा। क्योंकि उस दिन जितनी मुझसे भूलें हुईं, जीवन में कभी हुई नहीं थीं। ब्रह्ममुहूर्त में उठ गया, तो सुबह से ही एकदम उदासी। आंखें झपकी खाएं। जम्हाई आए। किसी काम में मन न लगे। चौके में पहुंच गया, अभी चाय तैयार ही नहीं है। अब बैठा हूं; राह देख रहा हूं! पहली बार बस स्टैंड पर पहुंच कर जाकर खड़ा रहा आधा घंटे, क्योंकि बस जब आए तब दफ्तर जाऊं। दफ्तर पहुंच गया, चपरासी ही नहीं आया था, तो दफ्तर के बाहर ही खड़ा रहा। दफ्तर के भीतर पहुंच गया। दफ्तर को झाड़ने-बुहारने वाला आदमी पीछे आया। सारी धूल खानी पड़ी। दिन भर किसी तरह गुजारा। महात्मा गांधी के आश्रम में तीन बजे प्रत्येक को उठ जाना पड़ेगा! वैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी की नींद के क्षण अलग हैं। प्रत्येक व्यक्ति को रात में दो घंटे गहन निद्रा आती है। वे दो घंटे अगर तुम नहीं सो पाए, तो तुम्हारे चौबीस घंटे खराब हो जाएंगे, निस्तेज हो जाएंगे। किसी को दो से और चार के बीच में आती है। किसी को तीन और पांच के बीच में। किसी को चार और छह के बीच में। किसी को पांच और सात के बीच में। और ऐसे भी लोग हैं जिनको छह और आठ के बीच में। और ऐसे भी लोग हैं जिनको सात और नौ के बीच में। अलग-अलग लोग हैं। बहुविध लोग हैं।
मैं आदेश नहीं देता। इसलिए मेरे आश्रम में जिसको जब सोना हो, तब सोए.।
जब जागना हो, तब जागे। अपने ही अंतर-अनुशासन से चले। अपने को समझे और अपना जीवन निर्धारित करे। हां, जो मैंने जाना है, जो मैंने जीया है, उसे खोल कर तुम्हारे सामने रख देता हूं। उसमें से जो भी रुच जाए, जो भी पच जाए, जिसके साथ भी तुम्हारा तालमेल हो जाए, वह तुम्हारा। वह मेरा नहीं फिर। क्योंकि तालमेल हो गया, तो तुम्हारा। तुम मुझे दोष न दे सकोगे। क्योंकि मैंने तुम्हें कभी कोई आदेश नहीं दिए।
लीला, इसलिए पहली बात कि मैं आदेश नहीं देता। तू कहती हैः "मैं रूपांतरित होना चाहती हूं। स्वप्नों में बहुत जीवन गंवाया। लेकिन अब मुझे बचाओ।"
पहली बात, इस बात को खूब गहराई से उतर जाने दो कि स्वप्नों में मैंने जीवन गंवाया। कहीं ऐसा न हो कि प्रश्न पूछने के लिए ही तुमने पूछ लिया हो। कहीं ऐसा न हो कि जीवन को स्वप्न कहना अध्यात्मवादियों की पुरानी आदत है, और लीक है, इसलिए तुमने भी कह दिया हो। जीवन सच में ही स्वप्न हो गया है--इस बात की परिपूर्ण स्वीकृति रूपांतरण का पहला कदम है। सोचना! खोजना! सच में ही जीवन स्वप्न सिद्ध हुआ है? या अभी और भी कुछ सपने बाकी हैं जो पूरे करने हैं?
भूल मेरी थी
इसी से कर रहा हूं, लो, सहज स्वीकार

इसमें लाज काहे की
पर हंसो मत यों भरे विद्रूप!
इस क्षणिक जय में न भूलो शक्ति मेरी जो अभी तक साथ है,
शक्ति है तो पैर सीधे भी पड़ेंगे एक दिन और उस दिन कहीं पछताना न पड़ जाए तुम्हें सोचो जरा!
भूल का स्वीकार मुझको है सहज
क्योंकि अब भी अडिग हूं
क्योंकि अब भी आत्मबल हारा नहीं हूं
दृष्टि मेरी सधी है अब भी भविष्योन्मुख!
स्वप्न मेरे थे असंभवः भूल थी यह--मानता हूं
किंतु मत भूलो कि यद्यपि स्वप्न मेरे थे
मैं नहीं था स्वप्न का!
तो पहली तो बात स्वीकार करो सहज भाव से, सचाई से--औपचारिकता से नहीं--
कि मेरा जीवन एक स्वप्न था। और तब दूसरी बात समझो कि जीवन स्वप्न था, लेकिन तुम स्वप्न नहीं हो; स्वप्न देखने वाला स्वप्न नहीं है।
स्वप्न मेरे थे असंभवः भूल थी यह--मानता हूं
किंतु मत भूलो कि यद्यपि स्वप्न मेरे थे
मैं नहीं था स्वप्न का!
तो पहले तो यह जानो कि सारा जीवन स्वप्नों में उलझा रहा। दूसरी बात यह जानो कि मेरे भीतर एक द्रष्टा था, जो सारे जीवन-स्वप्नों को देखता रहा, लेकिन कभी स्वप्न नहीं बना। द्रष्टा कभी स्वप्न नहीं बनता।
पहली बात तुम्हारे जीवन में एक अदभुत वैराग्य को जन्म देगी। और दूसरी बात तुम्हारे जीवन में उससे भी अदभुत ध्यान को जन्म देगी, साक्षी-भाव को जन्म देगी।
और अच्छा है लीला, कि जल्दी यह बात समझ में आ गई। यह बात तो लोगों को मरते-मरते मरणशय्या पर समझ में आती है! शायद तब भी समझ में नहीं आती। लोग बेहोशी में मर जाते हैं। लोगों के समाधि-लेख पर लिख दी जाती है यह समझ की बात। उनको तो कभी समझ में नहीं आई!
रस तो अनंत था, अंजुरी भर ही पियाजी में वसंत था, एक फूल ही दियामिटने
के दिन आज मुझको यह सोच हैःकैसे बड़े युग में कैसा छोटा जीवन जिया!
कितना विस्तीर्ण आकाश! कैसा विराट वसंत!
रस तो अनंत था, अंजुरी भर ही पिया
पीने में भी लोग कंजूसी कर जाते हैं!
रस तो अनंत था, अंजुरी भर ही पियाजी में वसंत था, एक फूल ही दिया
और दे सकते थे तुम वसंत। तुम्हारे चारों तरफ वसंत बरस सकता था। मधुमास ला सकते थे तुम जगत में।
जी में वसंत था, एक फूल ही दियारस तो अनंत था, अंजुरी भर ही पियामिटने
के दिन आज मुझको यह सोच हैःकैसे बड़े युग में कैसा छोटा जीवन जिया!
अधिकतर लोग इस विराट अस्तित्व में बड़ा क्षुद्र जीवन जीते हैं। सिक्के इकट्ठे करते रहते हैं झूठे। ऐसे पागल भी हैं, जो डाक की टिकटें इकट्ठी करते रहते हैं! अजीब-अजीब लोग हैं!
मैं एक घर में गया। उन सज्जन ने मुझे कहा कि मेरा संग्रह देखिएगा? मैंने कहा, जरूर। उनका संग्रह बड़ा अदभुत था। उसमें बीड़ी के बंडलों पर जो लेबल लगाए जाते हैं, वे उन्होंने संग्रह किए थे। बीड़ी के बंडलों के लेबल! मैंने उनसे कहा, तुम्हारा जीवन बंडल हुआ! तुम गए काम से! तुम बीड़ी के बंडल हो? उन्होंने कहा, मैं बीड़ी कभी नहीं पीता। मैंने कहा, बीड़ी नहीं पीते, यह कोई बड़ा गुण नहीं है। बीड़ी पी लेते, चलता। मगर यह जिंदगी भर क्या करते रहे! पूरा घर तरह-तरह के लेबलों से भरा हुआ है! और वे इसको अपनी बड़ी संपदा मानते हैं, बड़े गौरव से दिखलाते हैं।
एक और घर में मैं मेहमान था। उनका घर पूरा का पूरा पुस्तकों से भरा है। मैंने पूछा, इन पुस्तकों में क्या है? उन्होंने कहा, आइए, दिखाऊं। हर पुस्तक में उन्होंने राम-राम, राम-राम, राम-राम लिख छोड़ा है! बही-खाते भर

दिए हैं--राम-राम, राम-राम, राम-राम! वे कहते हैं, मैंने इतने करोड़ बार राम नाम लिख छोड़ा है। सुबह से शाम तक वे एक ही काम करते हैं।
मैंने कहा, अगर कभी राम से तुम्हारा मिलना हुआ, तो तुम्हारी खूब गति होगी!
उन्होंने कहा, क्यों?
मैंने कहा कि इतनी किताबें बच्चों के काम आतीं। इतनी कापियां न मालूम कितने बच्चों के काम आतीं! तुमने खराब कर दीं। और करोड़ बार राम-राम लिखते हो, तुमको अक्ल नहीं है कि संस्कृत में बहुवचन होता है--रामः। एक दफे लिख दिया, खतम! बहुवचन में कह दिया। क्या राम-राम लगा रखा है!
लीला, तुझे याद आ गया कि जीवन स्वप्न में चला गया, तो फिर जीवन स्वप्न में नहीं गया। इसी याद के साथ जीवन सत्य बनने लगा। किसको याद आया? यह कौन जागा? यह किसको बोध बैठा? तेरे भीतर कुछ पकने लगा; कुछ द्रष्टा जन्मने लगा।
नाचने लगे हैं मोर
गहराने लगी है आसमान की सजीली कोर
अब वर्षा आएगी
स्वाति की एक बूंद मोती बन जाएगी
छोटी-सी सीपी यह हमको सिखाएगीः
रस का सही ग्रहण कितनी बड़ी बात है!
मोरों का रोर यह, मेढ़कों का यह शोर
केवल उत्पात है!
एक बूंद सीपी में पड़ जाती है और मोती बन जाती है।
अब वर्षा आएगी
स्वाति की एक बूंद मोती बन जाएगी
यह जो द्रष्टा का थोड़ा सा भाव पैदा हुआ है, भान पैदा हुआ है, यही बूंद
है स्वाति की। यही मोती बनेगी।
छोटी-सी सीपी यह हमको सिखाएगीः
रस का सही ग्रहण कितनी बड़ी बात है!
जीवन स्वप्न है--ऐसा जान लेना रूपांतरण है। फिर आंख भीतर की तरफ मुड़ने लगती है। फिर रस का सही ग्रहण होता है।
और तब क्या चिंता कि वर्षा में मेढ़कों का शोर हो रहा है। होता रहे!
मोरों का रोर यह, मेढ़कों का यह शोर
केवल उत्पात है!
फिर सारे जीवन के स्वप्न, आपाधापी, भाग-दौड़, सिर्फ उत्पात है। आंख भीतर मुड़े। अपने रस से जुड़े। फिर तुम सीपी बने। फिर तुम्हारे भीतर मोती पकेगा। शुभ घड़ी आ गई।
लेकिन स्वप्न की यह बात सिर्फ औपचारिकता न हो; यह तुम्हारा निज अनुभव हो। मेरे कहने से नहीं। शंकराचार्य के कहने से नहीं। बुद्ध के कहने से नहीं। कबीर और नानक के कहने से नहीं। तुम्हारा अपना बोध हो। क्योंकि दूसरी सीपियों में पड़ी हुई बूंदें तुम्हारे मोती नहीं हैं। तुम्हारी सीपी में पड़ी हुई बूंद ही तुम्हारा मोती है।
तोड़ो मौन की चट्टानफोड़ो अहम का व्यवधानआकुल प्राण के रस गान, भीतर ही
न जाएं मर! बोलो, जोर से बोलोव्यथा की ग्रंथियां खोलोसंजो लो मन, कि फूटेंकंठ से फिर गीत के निर्झर! तोड़ो मौन की चट्टानफोड़ो अहम का व्यवधानआकुल प्राण के रस गान, भीतर ही न जाएं मर!
बस अब एक काम करोः जीवन स्वप्न दिखा; अब अहंकार भी स्वप्न है, यह मैं- भाव भी स्वप्न है--यह और देख लो। बस दो ही कदम में तो यात्रा पूरी हो जाती है।
संसार की भाग-दौड़ व्यर्थ; और अहंकार की, नाम की, यश की, पद की, प्रतिष्ठा की आकांक्षा व्यर्थ। बस ये दो व्यर्थताएं दिखाई पड़ जाएं कि तुम्हारे भीतर सार का बीज टूटता है। आ गया वसंत। फूल ही फूल भर जाएंगे। तुम्हारे जाम में शराब ही शराब भर जाएगी। शराब में आनंद के फूल ही फूल तैर जाएंगे। गीत जन्मेगा तुमसे। रस बहेगा तुमसे। तुम्हारा दीया जलेगा। और तुम्हारा ही नहीं, तुम्हारे दीये से और बुझे दीये भी जल सकते हैं।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
नौवां प्रवचन

नये मनुष्य का आगमन

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि भावी मनुष्य, नया मनुष्य--जिसके निर्माण में आप संलग्न हैं--एक साथ विज्ञानी, कवि और संत तीनों होगा। इस दृष्टि को विस्तार से समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय! मैं अखंड मनुष्य को स्वीकार करता हूं। खंडित मनुष्य सुविधापूर्ण हो सकता है, लेकिन न तो शांत होगा, न आनंदित होगा। खंडित मनुष्य उपयोगी हो सकता है, लेकिन उल्लासपूर्ण नहीं। और अतीत में मनुष्य के खंडों को ही स्वीकार किया गया है।
मनुष्य बहु-आयामी है। हम उसके एक आयाम को स्वीकार कर सकते हैं और दूसरे आयामों को इनकार कर सकते हैं। सच तो यह है कि यह तर्क के अनुकूल पड़ता है, क्योंकि उसके खंड एक-दूसरे के विपरीत मालूम होते हैं। जैसे मस्तिष्क है, वह तर्क से जीता है; और हृदय है, वह भाव से। जिन्होंने मस्तिष्क को स्वीकार किया उन्हें अनिवार्यरूपेण, उनके ही तर्क की निष्पत्ति के अनुसार, भाव को अस्वीकार कर देना पड़ा।
लेकिन मनुष्य अगर मस्तिष्क ही रह जाए, जिसमें भाव के फूल न खिलते हों, केवल गणित और तर्क और हिसाब ही लगता हो, तो वैसा मनुष्य यंत्रवत होगा। वैसे मनुष्य के जीवन में नृत्य नहीं हो सकता, काव्य नहीं हो सकता, संगीत नहीं हो सकता। वैसा मनुष्य धन कमाएगा, पद-प्रतिष्ठा कमाएगा, बहुत कुशल होगा; क्योंकि भाव से उसकी कुशलता में जो बाधा पड़ सकती थी, वह बाधा भी नहीं पड़ेगी। लेकिन उसकी आंखें सूखी होंगी; उसकी आंखों में कभी आह्लाद का या विषाद का कोई आर्द्र भाव प्रकट नहीं होगा। और उसका हृदय एक मरुस्थल होगा, जिसमें हरियाली नहीं होगी और जिसमें पक्षी गीत नहीं गाएंगे।
और ऐसे व्यक्ति की दृष्टि बड़ी संकुचित, बड़ी संकीर्ण होगी। वह पदार्थ
के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार न कर सकेगा, क्योंकि पदार्थ ही उसकी पकड़ में आएगा। मस्तिष्क के तराजू पर जो तौला जा सकता है, उसका नाम ही पदार्थ है। वह बाह्य को तो देख लेगा, लेकिन अंदर झांकने की क्षमता खो देगा। और सब जान लेगा, अपने को जानने की बात ही भूल जाएगा। उसकी गति वैसी होगी, जैसे प्राचीन पंचतंत्र की कथा में है।
दस अंधों ने नदी पार की। नदी पूर पर थी। सोचा गिनती कर लें, कोई नदी में बह न गया हो। और उन्होंने गिनती की, और फिर वे दसों ही रोने लगे, क्योंकि गिनती नौ तक जाती और खत्म हो जाती। प्रत्येक गिनने वाला अपने को छोड़ देता।
पास से कोई राहगीर गुजरता था, उसने पूछा कि क्यों रोते हो, क्या हुआ? कारण जान कर उसे हंसी आई। एक नजर डाली, देखा कि दस हैं। कहा कि जरा मेरे सामने गिनो। गिनती भी देखी, तो भूल भी समझ में आ गई कि प्रत्येक दूसरों को गिन लेता है, अपने को छोड़ जाता है।
तो उस राहगीर ने कहा, ऐसा करो... मैं तुम्हें गिनती का ठीक ढंग सिखाता हूं। मैं प्रत्येक व्यक्ति को एक चांटा मारूंगा। जिसको चांटा पड़े, वह बोले--एक! फिर जिसको दूसरा चांटा पड़े, वह बोले--दो! ऐसे मैं मारता चलूंगा, और तुम संख्या बोलते चलना।
स्वभावतः जब दसवें आदमी को चोट पड़ी, उसने कहा, दस! उस राहगीर ने कहा, मिल गया न व्यक्ति, जिसको तुम सोचते थे खो दिया! जिसको खोने के कारण तुम रोते थे, मातम मना रहे थे जिसकी मृत्यु पर, वह कहीं खोया नहीं था, सिर्फ तुम्हारे हिसाब लगाने में थोड़ी सी भूल थी। गिनने वाला अपने को गिनना भूल जाता था।
मस्तिष्क की वही भूल है; सब को गिन लेता है, अपने को भूल जाता है। जैसे चश्मा सब को देख लेता है, अपने को नहीं देख पाता। आंख जैसे सब को देख लेती है, अपने को नहीं देख पाती। आंख के लिए दर्पण चाहिए, तो अपने को देखे। उसी दर्पण का नाम काव्य है।

काव्य तुम्हें अपनी झलक दिखाता है। काव्य तुम्हें अपनी सुगंध देता है। काव्य तुम्हारे भीतर भाव का उद्रेक है, भाव की तरंग है। काव्य तुम्हारी अपने से पहली प्रतीति, पहला साक्षात्कार है। काव्य से रहित व्यक्ति ठीक अर्थों में मनुष्य नहीं है। उसकी मनुष्य होने की संभावना थी, लेकिन वह चूक गया।
और आज यह दुर्भाग्य बहुत गहन हो गया है। क्योंकि हम विज्ञान की तो शिक्षा देते हैं। हम प्रत्येक व्यक्ति को संदेह में कुशल बनाते हैं; सोच और विचार में निष्णात करते हैं। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक पच्चीस वर्ष, जीवन का एक तिहाई हिस्सा, हम गणित और तर्क के शिक्षण में व्यतीत करवाते हैं। स्वभावतः फिर अगर पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई पड़ता हो, तो आश्चर्य नहीं है। फिर देह ही दिखाई पड़ती है, आत्मा का कोई दर्शन नहीं होता। संसार दिखाई पड़ता है, और परमात्मा की कोई प्रतीति नहीं मालूम होती। फिर लगता है कि परमात्मा पागलों की बात है, या छोटे बच्चों की कल्पना है, या कि सपना है, लेकिन सत्य नहीं।
काव्य के बिना तुम्हारे जीवन में, वह जो दृश्य और अदृश्य के बीच का सेतु है, निर्मित नहीं होगा। काव्य से मेरा अर्थ हैः दृश्य और अदृश्य के बीच एक सेतु। एक इंद्रधनुष, जो पृथ्वी को आकाश से जोड़ देता है; जो द्वंद्व को मिटा देता है, जो दो किनारों को दो नहीं रहने देता, एक कर देता है। काव्य से मेरा इतना ही अर्थ नहीं है, जितना साधारणतः समझा जाता है। काव्य में वह सब सम्मिलित है, जो तर्क से नहीं जन्मता--फिर चाहे संगीत हो, फिर चाहे नृत्य हो, चाहे मूर्तिकला हो, चाहे स्थापत्य हो। जो भी सिर्फ तर्क के अनुसार नहीं पैदा होता है, जिसमें तर्क से कुछ ज्यादा है, वही काव्य है। और जब तक काव्य नहीं है, तब तक धर्म की कोई संभावना नहीं है।
यह आकस्मिक नहीं है कि संसार के सारे धर्मग्रंथ काव्य के अनूठे उदाहरण हैं--फिर वह कुरान हो या गीता या उपनिषद। ऐसे धर्मग्रंथ भी जो पद्य में नहीं लिखे गए हैं वे भी गद्य मात्र नहीं हैं। जैसे जीसस के वचन काव्य में नहीं लिखे गए हैं। लेकिन उनमें महत काव्य है; उनके पोर-पोर में काव्य है; एक-एक वचन रससिक्त है! शायद इतने काव्यपूर्ण उदगार न कभी पहले बोले गए, न कभी बाद में बोले गए। कविता नहीं है, लेकिन तर्क के जो ऊपर है, उसकी स्पष्ट झलक है। फिर बुद्ध बोलें कि महावीर, उनके वचन चाहे गद्य हों चाहे पद्य, गहराई में काव्य झलकें मारता हुआ मिलेगा।
इसलिए काव्य को मैं विज्ञान के ऊपर की सीढ़ी मानता हूं। विज्ञान निम्नतम है; अधिकतम उपयोगी है इसीलिए। और विज्ञान सभी की समझ में आ जाता है, क्योंकि निम्नतम है। विज्ञान से कोई इनकार नहीं करता, कर भी नहीं सकता, क्योंकि विज्ञान पत्थर की तरह है। काव्य तो फूल है, चाहो तो इनकार कर सकते हो। सौंदर्य है; अस्वीकार करने में कठिनाई नहीं है। और अगर जिद्द बांध कर बैठ जाओ, तो कोई भी सौंदर्य को सिद्ध नहीं कर सकता।
यह छप्पर पर हो रही वर्षा, यह बूंदाबांदी; जो सुन सकता है, उसे इसमें ओंकार का नाद सुनाई पड़ेगा; जो सुन सकता है, उसे अनाहत की झलक मिलेगी। अन्यथा सिर्फ शोरगुल है। अन्यथा सिर्फ आवाज है। शायद विघ्न भी पड़े। शायद तुम्हारे सोच-विचार में व्यवधान भी आए। शायद तुम चाहो कि यह उपद्रव, यह उत्पात न होता तो अच्छा था।
वृक्षों से गुजरती हवाएं सिर्फ अंधड़ हो सकती हैं। लेकिन जिसके पास देखने की क्षमता है, उसके लिए वृक्षों से गुजरती हवाओं में महासंगीत छिपा है। जिसके पास भाव की आंख है, उसके लिए फूल सिर्फ फूल नहीं है; फूल पर कुछ उतरा है--पार से, दूर आकाश से! फूल उसके लिए परमात्मा का मंदिर है, क्योंकि फूल की सुकुमारता में इस अस्तित्व की सुकुमारता प्रकट हुई है। और फूल के रंगों में इस अस्तित्व का आह्लाद प्रगाढ़ होकर प्रकट हुआ है। और फूल की गंध में इस अस्तित्व की अर्थवत्ता, गरिमा, गौरव--उसकी पगध्वनियां उसे सुनाई पड़ेंगी।
काव्य के लिए हृदय को नाचने की कला आनी चाहिए। काव्य के लिए मस्तिष्क
को कभी-कभी दूर हटा कर रख देने की क्षमता आनी चाहिए। मस्तिष्क उपयोगी यंत्र है, लेकिन चौबीस घंटे उसे पकड़ कर बैठे रहना मूढ़ता है। तुम मस्तिष्क

के मालिक हो। तुम्हें मस्तिष्क को कारागार बनाने की आवश्यकता नहीं है। तुम मस्तिष्क से अपने को कभी-कभी मुक्त भी करो।
कभी जब आकाश में बादल घिर जाएं और मोर नाचने लगें, तो तुम भी उस नृत्य में सम्मिलित हो जाओ। और जब कभी दूर से रात के अंधेरे में कोयल की आवाज आए, तो अपने हृदय को खोलना, अपने हृदय के भीतर उसे आमंत्रित करना। और जब पपीहा पुकारे--पी कहां! तो तुम्हारे भीतर भी उसकी पुकार को गूंजने देना, तुम्हारे रोएं-रोएं को भी पुलकित होने देना। और जब सूरज उगे या सूरज डूबे, तो ऐसे ही मत बीत जाने देना ये अदभुत क्षण; तुम्हारे भीतर भी कुछ उगे, तुम्हारे भीतर भी कुछ डूबे! और जब आकाश तारों से भर जाए, तो तुम खाली मत बैठे रहना; भीतर के आकाश में भी तारों को प्रतिबिंबित होने देना। एक झील बन जाना चैतन्य की, कि तुम्हारे भीतर सारा आकाश उतर आए। तब धीरे-धीरे तुम्हें काव्य का स्वाद लगेगा।
जो व्यक्ति नाच नहीं सकता, गा नहीं सकता, बांसुरी नहीं बजा सकता, इकतारा नहीं छेड़ सकता, अलगोजे से जिसका कोई संबंध नहीं रहा है--उस व्यक्ति ने अपने को अपने से ही तोड़ लिया। उस व्यक्ति ने अपने को अपने से ही अजनबी कर लिया। वह खुद से ही अपरिचित हो गया है। उसे पता नहीं वह कौन है। उसे पता हो भी नहीं सकता।
काव्य को मैं दूसरी सीढ़ी मानता हूं--विज्ञान से ऊपर, विज्ञान से श्रेष्ठतर। उपयोगी कम, सार्थक ज्यादा। विज्ञान उपयोगी है। बीमार होओगे, तो विज्ञान के पास जाना पड़ेगा। कारखाना चलाओगे, तो विज्ञान से पूछताछ करनी होगी। कार खराब हो जाएगी, तो वैज्ञानिक को निमंत्रण देना होगा। विज्ञान की उपयोगिता है, उपादेयता है। इसलिए मैं विज्ञान का विरोधी नहीं हूं। लेकिन यह तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं--उसकी उपयोगिता चरम मूल्य नहीं है। उसकी उपयोगिता किसके लिए है? तुम्हारे लिए है। तुमसे ऊपर नहीं है। तुम उसके ऊपर हो।
और विज्ञान की उपयोगिता इसीलिए है कि तुम काव्य के जगत में प्रवेश कर सको। काश हम यह समझ सकें, तो विज्ञान वरदान है। अब तक तो अभिशाप सिद्ध हुआ। विज्ञान तुम्हें ज्यादा समय देगा, क्योंकि जिस काम में घंटों लगते थे, क्षणों में कर देगा। विज्ञान तुम्हारे जीवन को लंबा देगा। विज्ञान तुम्हारे पास इतनी क्षमता जुटा देगा कि तुम चाहो तो नाचो, चाहो तो गाओ, चाहो तो विश्राम करो, ध्यान करो। विज्ञान समृद्धि देगा, लेकिन समृद्धि की एक ही महत्ता हो सकती है कि अंतर्यात्रा शुरू हो सके।
इसलिए विज्ञान का मैं विरोधी नहीं हूं। चाहता हूं विज्ञान आत्मसात हो। मगर विज्ञान पर मत रुक जाना। विज्ञान के ऊपर मैं काव्य का रंग देना चाहता हूं। विज्ञान अगर मंदिर बना सके, तो अच्छा। लेकिन इस मंदिर का जो अंतरगर्भ होगा, जो गर्भगृह होगा, वह तो काव्य का ही हो सकता है। अगर यह मंदिर ही मंदिर हो और इसमें कोई गर्भगृह न हो--जहां परम अतिथि को आमंत्रित किया जा सके, जहां परम देवता को विराजमान किया जा सके--तो यह मंदिर खाली है; यह मंदिर अर्थहीन है। इस मंदिर का कोई प्रयोजन नहीं। इसे बनाना व्यर्थ है। काव्य में इसकी सार्थकता होगी।
लेकिन काव्य पर ही नहीं रुक जाना है। कुछ लोग काव्य पर रुक जाते हैं। मस्तिष्क बाह्य यात्रा का साधन है; भाव अंतर्यात्रा का साधन है।
दोनों का उपयोग करो; लेकिन तुम दोनों के पार हो, यह कभी न भूले, एक क्षण को विस्मरण न हो।
न तो तुम मस्तिष्क हो, न तुम हृदय हो। जब तुम मस्तिष्क के पीछे खड़े हो जाते हो, तो तर्क निर्मित होता है, विज्ञान का जन्म होता है, गणित बनता है। और जब तुम भाव के पीछे खड़े हो जाते हो, तो काव्य की तरंगें उठती हैं, संगीत जन्मता है। और जब तुम दोनों से मुक्त होकर स्वयं को जानते हो, तो धर्म का जन्म होता है। तब तुम्हारे भीतर सत्य की प्रतीति होती है।
सत्य की प्रतीति ही तुम्हें संत बनाती है। नियम, व्रत, उपवास से कोई संत नहीं होता। सत्य को जो जान लेता है अपने भीतर विराजमान, पहचान लेता है अपने भीतर के देवता को, अंतर-देवता से जिसका परिचय हो जाता है--वही संत है।

संतत्व जीवन में बहुत से रूपांतरण लाता है। तुम्हारा आचरण बदलेगा, तुम्हारा व्यवहार बदलेगा, तुम्हारी दृष्टि बदलेगी। लेकिन वे सब पीछे आएंगे; संतत्व पहले घटित होगा।
लेकिन इन तीनों सीढ़ियों में एक क्रमिकता है। जो वैज्ञानिक भी नहीं हो सकता, वह कवि नहीं हो सकेगा। जो विज्ञान को भी समझने में असमर्थ है, वह काव्य की ऊंचाइयां कैसे भरेगा? और जो काव्य को नहीं समझ सकता, वह रहस्यवाद, संतत्व को कैसे समझेगा?
संतत्व तो है साक्षी का अनुभव। न मैं मन हूं; न मैं हृदय हूं; न मैं देह हूं। न मैं बाहर हूं, न मैं भीतर हूं। मैं सारे द्वंद्व और द्वैत के अतीत हूं! जहां दोनों का अतिक्रमण हो गया है। जहां तुमने सिर्फ शुद्ध चैतन्य को जाना है। जिस पर कोई बंधन नहीं हैं--न विचार के, न भाव के। जहां गणित भी खो गया, और जहां काव्य भी सो गया। जहां सब परम शांत है। जहां परम मौन घटित हुआ है; उस परम मौन के कारण ही हमने संतों को मुनि कहा है। जहां सत्य की प्रतीति हुई है; सत्य की प्रतीति के कारण उन्हें संत कहा है। और जहां जीवन के रहस्य ने अपने द्वार खोल दिए हैं। जहां जीवन तुमसे कुछ भी छिपाता नहीं है। क्योंकि तुम इतने पात्र हुए हो कि तुम्हारे पात्र में अमृत बरसे। तुम इस योग्य हुए हो कि तुम्हारे भीतर दीया जले ज्योति का। तुम्हारे भीतर उपनिषद के ऋषि की प्रार्थना पूरी हो गई--तमसो मा ज्योतिर्गमय! असतो मा सदगमय! मृत्योर्मा अमृतं गमय! तुम आ गए घर। जिसकी तलाश थी, वह मिल गया। अब और पाने को इसके आगे कुछ भी नहीं है।
यह मनुष्य की त्रिमूर्ति है--विज्ञान, काव्य, धर्म। ये मनुष्य के तीन चेहरे हैं। इन किसी एक चेहरे से मत बंध जाना। इन तीनों को जानना; और तीनों से मुक्त भी अपने को जानना। इन तीनों को जानना; और जानने वाला सदा ही अतिक्रमण कर जाता है, जानने वाला कभी भी दृश्य नहीं बनता, द्रष्टा ही रहता है, उसे दृश्य बनाने का कोई उपाय नहीं है--ऐसा भी जानना। तब तुम्हारी मंजिल पूरी हुई। तब यह जीवन की यात्रा अपने अंतिम पड़ाव पर आ गई। अब तुम रुक सकते हो। अब कहीं और जाने को नहीं, कहीं कुछ और पाने को नहीं। पाने योग्य पा लिया गया, जानने योग्य जान लिया गया। तब गहन परितोष पैदा होता है।
और उसी परितोष में परमात्मा के प्रति धन्यवाद उठता है। जैसे फूलों से गंध उठे! जैसे धूप जले और धुआं, सुगंधित धुआं आकाश की तरफ उठे! कि दीये की ज्योति आकाश की तरफ उठे! ऐसे ही तुम्हारे भीतर एक अनिर्वचनीय रूप में, कही न जा सके, शब्द में न बांधी जा सके, ऐसी अभिव्यंजना होती है धन्यवाद की। शब्द भी नहीं बनते; बस कृतज्ञता में सिर झुक जाता है!
मैं इसे मनुष्य का अखंड रूप मानता हूं। मेरी दृष्टि में यह भविष्य का मनुष्य है, जिसके आगमन की जोर से प्रतीक्षा की जा रही है। क्योंकि अगर वह नहीं आया, तो पुराना मनुष्य तो सड़ गया है। पुराना मनुष्य खंडित मनुष्य है।
एक-एक हिस्से को लोगों ने पकड़ लिया है। पश्चिम ने पकड़ लिया विज्ञान को, पूरब ने पकड़ लिया धर्म को; दोनों अधमुर्दा हालत में हैं, अर्धजीवित। पश्चिम मर रहा है, क्योंकि शरीर तो है, धन है, पद है, लेकिन आत्मा नहीं है। और पूरब मर रहा है, क्योंकि आत्मा की बातचीत तो है, लेकिन देह खो गई है। दीनता है, दरिद्रता है, भुखमरी है। पेट भूखा है; आत्मा की बात भी करो, तो कब तक करो! और कितनी ही समृद्धि तुम्हारे पास हो, अगर आत्मा ही नहीं है, तुम ही नहीं हो, तो तुम्हारी समृद्धि केवल तुम्हें अपनी दरिद्रता की याद दिलाएगी, और कुछ भी नहीं। पश्चिम बाहर से समृद्ध, भीतर से दरिद्र हो गया; पूरब ने भीतर की समृद्धि में बाहर की दरिद्रता मोल ले ली।
यह खंड-खंड का चुनाव था। यह चुनाव अशुभ हुआ।
नास्तिकों ने मान लिया कि पदार्थ सब कुछ है, परमात्मा कुछ भी नहीं। और आस्तिकों ने मान लिया कि परमात्मा सब कुछ है, पदार्थ तो माया है, झूठ है, असत्य है। दोनों ने भूल की है। और दोनों की भूल का दुष्परिणाम सारी मनुष्य-जाति भोग रही है।
मैं नास्तिक की नास्तिकता लेता हूं, आस्तिक की आस्तिकता लेता हूं। मैं नास्तिक और आस्तिक को तुम्हारे भीतर जोड़ देना चाहता हूं। मैं पूरब को और पश्चिम को एक कर देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, यह पृथ्वी एक हो। और इस पृथ्वी के एक होने की संभावना तभी है, जब मनुष्य भीतर अखंड हो। मनुष्य

अखंड हो सकता है; होना चाहिए; होना उसकी नियति है। और जब तक न होगा, तब तक पीड़ा है, तब तक विषाद है, तब तक दुख है।
मेरा संन्यासी संसार में रहेगा और परमात्मा में भी। और दोनों के मध्य
जो सेतु है--काव्य का, सौंदर्य का, प्रेम का--उसे भी सजाएगा, उसे भी संवारेगा। निश्चित ही, यह अखंड मनुष्य किसी को भी स्वीकृत नहीं होगा। नास्तिक इसका विरोध करेंगे, आस्तिक इसका विरोध करेंगे। धार्मिक इसका विरोध करेंगे, अधार्मिक इसका विरोध करेंगे। पूरब में इसकी निंदा होगी, पश्चिम में इसकी निंदा होगी। मगर इन सारी निंदाओं के बावजूद भी इस अखंड मनुष्य के आने का क्षण आ गया है, इसे अब रोका नहीं जा सकता।
पुराना मनुष्य सड़ गया है। उसके दिन लद गए। पुराने धर्म, पुराने सिद्धांत, पुराने शास्त्र, पुरानी परंपराओं और लीकों पर अब और आगे नहीं चला जा सकता। हमने अपने को बहुत घसीट लिया और हमने अपने हाथ अपने लिए बहुत नर्क निर्मित कर लिया। मैं पुकार देता हूंः अब उस अतीत के बाहर आ जाओ! जैसे सांप अपनी पुरानी चमड़ी को छोड़ कर सरक जाता है और पीछे लौट कर भी नहीं देखता, ऐसे ही तुम भी पुराने को छोड़ कर सरक आओ।
नई सुबह हो रही है! नया दिन आ रहा है! नये मनुष्य का दिन आ रहा है! मैं नये मनुष्य की घोषणा करता हूं! और तुम्हें बनना है वह नया मनुष्य। तुम्हें होना है उस नये मनुष्य की पहली किरण। तुम्हें उस नये मनुष्य को रूप देना है, आकृति देनी है, यथार्थ देना है।
इसलिए मेरे संन्यासी के ऊपर बड़ा दायित्व है। पुराना संन्यासी भगोड़ा था, सारे दायित्व छोड़ कर भाग जाता था। मेरे संन्यासी के ऊपर परम दायित्व है। इससे बड़ा और दायित्व क्या हो सकता है कि तुम्हें गर्भ बनना है कि तुम्हारे भीतर से एक नये अभिनव मनुष्य का जन्म हो सके! एक अभिनव संसार, एक नई दुनिया हम बना सकें! यह पृथ्वी स्वर्ग हो सकती है, यदि मनुष्य अखंड हो। और मनुष्य अखंड हो सकता है। तुम्हारे भीतर तीनों मौजूद हैं, तीनों को जरा जोड़ना है।
सूफी कहानी है कि घर में आटा है, चावल है, दाल है, लकड़ी है, चूल्हा है,
आग है--और तुम भूखे बैठे हो! आग को जलाओ। चूल्हे पर बर्तन चढ़ाओ। चावल पकाओ। आटे पर पानी मिलाओ, घी मिलाओ, नमक डालो; गूंथो; रोटी बनाओ; रोटी को पकाओ। तुम्हारे भूखे होने का कोई कारण नहीं है। सब मौजूद है, मगर तुम बैठे हो! न तुम चूल्हा जलाते, न तुम चावल चढ़ाते, न तुम आटा गूंथते; बस तुम बैठे हो और रो रहे हो! तुम बैठे हो और कोस रहे हो संसार को। तुम बैठे हो और परमात्मा की शिकायत कर रहे हो। तुम बैठे हो और अपने कर्मों के लिए जिम्मेवार ठहरा रहे हो।
बहुत हो चुकी यह बकवास। न तुम्हारे कर्मों की कोई जिम्मेवारी है, न कोई परमात्मा तुम्हें परेशान कर रहा है, न तुम्हारे भाग्य में दुख लिखा है, न विधाता ने तुम्हारा भविष्य सुनिश्चित किया है। उठो! आंख खोलो! सब तुम्हें दिया गया है।
लेकिन थोड़ा संयोजन करना होगा। वीणा के तार ढीले हों, तो थोड़े कसो; ज्यादा कस गए हों, तो थोड़े ढीले करो। उन्हें मध्य में लाओ--न कसे हों, न ढीले हों--संगीत पैदा हो सकता है।
तुम्हारे इन तीनों रूपों को एक साथ जगाने की चेष्टा करो।
जब पदार्थ के संबंध में सोचो, तो वैज्ञानिक हो जाओ। इसलिए मैं बाइबिल
की इस बात से राजी नहीं हूं कि पृथ्वी चपटी है। क्योंकि जब पदार्थ के संबंध में सोचना हो, तो हमें बाइबिल में देखना ही नहीं चाहिए। बाइबिल को कोई हक ही नहीं है। वैज्ञानिक से पूछना चाहिए। वहां क्राइस्ट के पास मत जाओ; गैलीलियो से पूछो।
लेकिन जिन लोगों ने खोजा कि पृथ्वी गोल है, इससे यह सिद्ध नहीं होता
कि उनको पता चल गया कि वे कौन हैं। गैलीलियो से मत पूछना कि आत्मा है या नहीं। पृथ्वी की गोलाई जान लेने से आत्मा के जानने का क्या संबंध है? वह तो जीसस से ही पूछो। उसका पता तो जीसस को ही है।
और जीसस और गैलीलियो के बीच में भी लोग हैं--कालिदास है, भवभूति है, खलील जिब्रान है, रवींद्रनाथ हैं। जब इन दोनों के मध्य लोक के संबंध में कुछ जानना हो--न दिन, न रात, जब संध्या के संबंध में कुछ जानना हो, जब गोधूलि

की बेला के संबंध में कुछ जानना हो--तो फिर रवींद्रनाथ से पूछो, खलील जिब्रान से पूछो, माइखेल नेमी से पूछो। फिर उनसे पूछो, काव्य जिनका लोक है।
और ये तीनों तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। धीरे-धीरे पूछते-पूछते अपने भीतर पहचानो कि गैलीलियो कहां है, रवींद्रनाथ कहां हैं, जीसस कहां हैं! और तुम तीनों को अपने भीतर पाओगे। और जिस दिन ये तीनों हाथ में हाथ डाल कर आलिंगनबद्ध हो जाएंगे, तुम्हारे भीतर अभिनव मनुष्य का आविर्भाव होगा, तुम पहली दफा अपनी परिपूर्णता से परिचित होओगे। और पूर्ण को जानना ही परमात्मा को जानना है।

दूसरा प्रश्नः धर्म के लिए सबसे बड़ा खतरा किससे है?

निरंजन! नास्तिक से खतरा है, ऐसा लोग सोचते रहे हैं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, नास्तिक से धर्म के लिए कोई खतरा नहीं है। नास्तिक तो वस्तुतः धर्म की तलाश में लगा है। नास्तिक तो इतना ही कह रहा है कि अभी मैंने देखा नहीं, जाना नहीं, तो मानूं कैसे? नास्तिक तो सिर्फ अपनी ईमानदारी जाहिर कर रहा है। इसलिए सदियों-सदियों में जो तुमसे कहा गया है कि नास्तिक से धर्म को खतरा है, वह गलत बात है।
खतरा झूठे आस्तिक से है। सच्चा नास्तिक तो आज नहीं कल सच्चा आस्तिक
हो जाएगा, क्योंकि सचाई हमेशा सचाई में ले जाती है। एक सत्य दूसरे सत्य के लिए साधन बन जाता है, उपकरण बन जाता है। अगर तुम्हारी "नहीं" सच्ची है, ईमान से भरी है, तो आज नहीं कल तुम्हारी "हां" भी आएगी--और इतने ही ईमान से भरी हुई "हां" आएगी।
लेकिन एक दुर्घटना घट गई है, लोग झूठे आस्तिक हो गए हैं। उन्होंने नहीं तो कही ही नहीं, और हां कह दिया है। उनकी हां नपुंसक है। उनकी हां में कोई बल नहीं है। उनकी हां में किसी प्रकार का सत्य नहीं है। भय है--सत्य नहीं। समाज ने उन्हें डरवा दिया है। नर्क से वे कंप रहे हैं। स्वर्ग का लोभ है। भय है, लोभ है; लेकिन खोज नहीं है। उनकी आस्तिकता केवल संस्कार मात्र है। चूंकि मां-बाप, पंडित-पुरोहित, समाज-परिवार एक खास तरह की धारणा में आबद्ध थे, वही धारणा उनके ऊपर भी आरोपित कर दी गई है।
किसी को बचपन से मंदिर ले जाओगे... । छोटे बच्चे पहले मंदिर की मूर्तियों के सामने झुकने से इनकार करते हैं। लेकिन तुम झुकाए ही चले जाते हो। तुम कहते हो, यह धार्मिक शिक्षण है। तुम उन्हें प्रार्थना सिखाए चले जाते हो। जैसे तोतों को कोई राम-राम सिखा दे, ऐसे तुम इन बच्चों को तोते बना देते हो। फिर ये भूल ही जाएंगे कि इन्होंने जो राम-राम कहना सीखा था, वह सिर्फ तोता-रटंत था। पचास साल बाद इन्हें याद भी न आएगा। आदमी की स्मृति बड़ी कमजोर है। पचास साल बाद ये राम-राम ऐसे जपेंगे, जैसे इन्हें राम का पता हो। और इन्हें पता बिल्कुल नहीं है। इनके आधार में ही पता नहीं है। बच्चों को तुम जबरदस्ती मंदिर की मूर्ति के सामने झुका देते हो, बाद में झुकना उनकी आदत हो जाएगी।
रूस के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक, पावलोव ने एक सिद्धांत का आविष्कार किया, जिसको वह कंडीशंड रिफ्लेक्स कहता है--संस्कार के द्वारा क्रियमान होना। वह एक छोटा सा प्रयोग करता था, जिसने उसको इस सिद्धांत की सूझ दी। वह अपने कुत्ते को एक दिन रोटी खिला रहा था। दुनिया के बहुत से आविष्कार आकस्मिक रूप से होते हैं, यह भी आकस्मिक रूप से हुआ। रोटी उसने कुत्ते के सामने रखी कि कुत्ते की जीभ लटकी और जीभ से लार टपकने लगी। अचानक एक ख्याल कौंध गया पावलोव के मन में कि रोटी को देख कर लार का टपकना तो ठीक है, लेकिन क्या किसी ऐसी चीज से भी लार टपकाई जा सकती है, जिससे लार का कोई संबंध न हो?
उसने एक उपाय किया। वह जब भी रोटी कुत्ते को देता, घंटी बजाता। वह घंटी बजाता रहता; कुत्ते की लार टपकती रहती। कुत्ता रोटी खाता, वह घंटी बजाता। पंद्रह दिन नियम से उसने यह किया। सोलहवें दिन रोटी नहीं दी, सिर्फ लाकर घंटी बजाई, और लार टपकने लगी।

अब घंटी से लार के टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। रोटी देख कर लार टपकती है, यह तो समझ में आता है। भूखा होगा कुत्ता, रोटी की वास उसके नासापुटों में भर रही होगी। रोटी इतने पास है; अब मिली, अब मिली--इस आतुरता में लार टपक आती होगी। तुम भी नीबू के संबंध में विचार करो, तो मुंह में लार सरकने लगती है। नीबू शब्द लार ले आता है। अब नीबू शब्द में तो कोई लार लाने की क्षमता नहीं है। लेकिन बस घंटी बजी!
पावलोव ने घंटी बजाई, कुत्ते ने लार टपकाई। इस प्रयोग को उसने बहुत तरह से दोहराया और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि हम किन्हीं भी चीजों को जोड़ दे सकते हैं।
अगर एक बच्चे को रोज मंदिर ले जाओ और मंदिर की प्रतिमा के सामने झुकाओ; आज झुकने में इनकार करेगा, कल थोड़ा झुकेगा, परसों थोड़ा और झुकेगा, पिता को भी झुकते देखेगा, गांव के गणमान्य लोगों को भी झुकते देखेगा; भाव से झुकते देखेगा; खुद भी अनुकरण करने लगेगा, खुद भी झुकने लगेगा।
लोग मानते हैं ईश्वर में, इसलिए बच्चे भी मान लेंगे। इसलिए मुसलमान
का बच्चा मुसलमान हो जाएगा। मस्जिद के सामने जाकर उसको सम्मान पैदा होगा; मंदिर के सामने नहीं। यह पावलोव का सिद्धांत ही है। हिंदू के बच्चे को हिंदू मंदिर के सामने बड़ा समादर पैदा होता है। यह समादर झूठा है। जैन को महावीर की प्रतिमा देख कर एकदम झुकने का भाव पैदा होता है। यह भाव बिल्कुल झूठा है।
निरंजन, इन झूठे आस्तिकों से धर्म को खतरा है। इन्हीं झूठे आस्तिकों
ने धर्म को बरबाद किया है। और यही झूठे आस्तिक धर्म को बरबाद करने में संलग्न हैं। ये ही चर्च में हैं, ये ही मंदिर में, ये ही गुरुद्वारा में, ये ही गिरजे में--सब जगह तुम इनको पाओगे। सारी पृथ्वी इनसे भरी है।
सच्चा आस्तिक बड़ी मुश्किल बात है। सच्चा नास्तिक ही मुश्किल है, तो सच्चा आस्तिक तो और मुश्किल है। अब तो झूठे नास्तिक भी पैदा हो गए हैं--रूस और चीन में। कम से कम पुराने दिनों में असली आस्तिक न भी होते थे तो असली नास्तिक होते थे। अब असली नास्तिक भी नहीं होता! रूस और चीन में तो नास्तिकता भी पावलोव के सिद्धांत से ही समझाई जाती है। बचपन से पढ़ाया जाता है--ईश्वर नहीं है, न कभी था; झूठी धारणा है। बच्चे वही दोहराने लगते हैं।
बच्चे वही दोहराते हैं, जो मां-बाप दोहराते हैं। जैसे बच्चे वही भाषा सीख लेते हैं, जो मां-बाप बोलते हैं। अगर मां-बाप दो भाषाएं बोलते हैं, तो बच्चे दो भाषाएं सीख लेते हैं। अगर मां-बाप तीन भाषाएं बोलते हैं, तो बच्चे तीन भाषाएं सीख लेते हैं। बच्चों का आचरण मां-बाप का प्रतिफलन होता है। और मां-बाप ने अपने मां-बाप से सीखा था! और उन्होंने उनके मां-बाप से सीखा था। ऐसे सदियां एक-दूसरे को सिखाए चली जाती हैं। झूठ परंपरागत हो जाते हैं।
धर्म को बचाना हो, तो दुनिया में सच्चे नास्तिक चाहिए--पहली बात। फिर सच्चे नास्तिकों में से सच्ची आस्तिकता पैदा होती है। तुम थोड़ा चौंकोगे मेरी बात सुन कर, क्योंकि तुम्हें इतनी बार यह कहा गया है कि नास्तिक-आस्तिक दुश्मन हैं, कि तुमने इस बात को सोचना ही बंद कर दिया; यह तुम्हारे लिए सहज स्वीकार हो गई।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि आस्तिक-नास्तिक दुश्मन नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जो कभी सच्चे अर्थों में नास्तिक नहीं हुआ, सच्चे अर्थों में आस्तिक भी नहीं हो सकता।
पहले नहीं कहने की क्षमता आनी चाहिए। नहीं में विद्रोह है, बगावत है, क्रांति है। नहीं में अपने व्यक्तित्व की घोषणा है, अपने स्वातंष्य का उदघोष है। पहले नहीं कहना आना चाहिए। नहीं के द्वारा हम समाज के द्वारा डाले गए संस्कारों को नष्ट कर देते हैं। नहीं के द्वारा हम पावलोव के सिद्धांत से मुक्त हो जाते हैं। जैसे कि पावलोव घंटी बजाए और कुत्ता कह दे--नहीं! लार नहीं टपकेगी! तुमने मुझे समझा क्या है? बजाने लगे घंटी और समझा कि मैं लार टपकाता रहूंगा! हो चुका बहुत। बजाते रहो घंटी, लार नहीं टपकेगी!

अगर पावलोव का कुत्ता इतना कह दे कि लार नहीं टपकेगी, बजाते रहो घंटी,
तो समझना कि कुत्ते के भीतर चैतन्य का जन्म हुआ। समझना कि कुत्ता मनुष्य होने लगा। समझना कि कुत्ते ने ऊंचाइयां लेनी शुरू कीं; कि कुत्ते को पंख लगे, कि कुत्ता अब उड़ सकता है। पावलोव भी बहुत चौंकेगा, अगर कुत्ता कह दे कि नहीं, बहुत हो गया। घंटी बजा-बजा कर मेरी लार टपकवाना, अब नहीं होगा। अब तुम मुझे धोखा न दे सकोगे!
पहला सत्य हैः नहीं। क्योंकि नहीं से हम मुक्त होते हैं व्यर्थता से। नहीं से हम कूड़ा-करकट काटते हैं। नहीं तलवार है, जिससे हम सारे बंधन काट देते हैं। जो हमारे चारों तरफ रचा गया है सिद्धांतों का जाल, नहीं से हम उस सबको खंडित कर देते हैं।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं, पहले नहीं की गरिमा सीखो, पहले नकार का आनंद सीखो। डरो मत। घबड़ाओ मत। क्योंकि जो नहीं कह सकता है, आज नहीं कल हां भी कहेगा। नहीं के पीछे हां भी आती है। और तब उसका सौंदर्य और, तब उसकी प्राणवत्ता और, तब उसकी महिमा और। जब नहीं कहने वाला हां कहता है, तो उसकी हां में आत्मा होती है, उसकी हां में निष्ठा होती है, आस्था होती है। उसकी हां में ही धर्म के लिए बचाव है।
मैं चाहूंगा कि दुनिया को नास्तिकता--रूस और चीन वाली नास्तिकता नहीं, सिखाई गई नास्तिकता नहीं--अनसीखी नास्तिकता का मौका मिलना चाहिए। किसी बच्चे को कोई बात जबरदस्ती सिखाने की आवश्यकता नहीं है। भरोसा रखो। बच्चे में आत्मा है, जिज्ञासा है, प्रतिभा है; वह खोजेगा। खोज दो; सिद्धांत मत दो। जिज्ञासा को जगाओ; शास्त्र मत दो। झकझोरो उसे, प्रश्नचिह्न उठाओ, लेकिन उत्तर मत दो। उससे कहो कि पूछना, खूब पूछना। जीवन भर खोजना। अपने सारे जीवन को दांव पर लगा देना खोजने में। तो भी कभी संभव है कि तुम धन्यभागी होओ और सत्य का साक्षात्कार हो सके।
इस पृथ्वी को एक सहज नास्तिकता की आवश्यकता है। बच्चों को धर्म नहीं दिया जाना चाहिए। मैं धर्म की शिक्षा के बिल्कुल खिलाफ हूं। बच्चों को मंदिरों में मत ले जाओ, मस्जिदों में मत ले जाओ। और अगर ले जाने का ही बहुत रस है, तो फिर मंदिरों में भी ले जाओ, मस्जिदों में भी ले जाओ, गिरजाघरों में भी, गुरुद्वारों में भी। ताकि बच्चा किसी एक धारणा से न बंधे। उसे सब जगह ले जाओ। और कहना, इतने-इतने तरह के लोग हैं; इतने-इतने तरह की प्रार्थनाएं हैं; इतने-इतने तरह के मंदिर हैं; इतनी-इतनी अर्चनाएं हैं। तू सब देख; सब से परिचित हो। और अभी जल्दी नहीं है चुन लेने की।
आदमी बाजार में दो पैसे का घड़ा खरीदने जाता है, तो भी ठोंक-पीट कर लेता है। और तुमने परमात्मा भी बिना ठोंके-पीटे ले लिया है! तुमने जीवन के परम सिद्धांत भी बिना सोचे, बिना परखे ले लिए हैं। जैसे सुनार सोने को कसता है कसौटी पर, ऐसे एक-एक चीज कसौटी पर कसी जानी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के पास कसौटी होनी चाहिए। सोचे-विचारे, भाव करे, ध्यान करे, निरीक्षण करे। जल्दी क्या है! जल्दी किसी सिद्धांत को पकड़ लेना, फिर तुम्हारे हाथ कूड़ा- करकट लगेगा।
इसलिए निरंजन, नास्तिक से खतरा नहीं है, खतरा है झूठे आस्तिक से। और खतरा है अब झूठे नास्तिक से भी। खतरा झूठ से है; वह आस्तिक का हो कि नास्तिक का, इससे क्या फर्क पड़ता है! और बचाव धर्म का सत्य में है। और सत्य--जिज्ञासा, खोज, अन्वेषण से मिलता है, अभियान से मिलता है।
मैं तुम्हें यहां कोई सिद्धांत नहीं देता, न कोई शास्त्र देता हूं। सिर्फ तुम्हारी जिज्ञासा को प्रज्वलित कर रहा हूं। तुम्हारे भीतर एक आग धधका रहा हूं। तुम्हारी आग में ईंधन डाल रहा हूं। जो भी तुमसे बोल रहा हूं, बस ईंधन है--कि तुम्हारे भीतर आग और भभके, ऐसी भभके कि धुआं न रह जाए, आग ही आग हो, अंगारे ही अंगारे हों! उन्हीं अंगारों को एक दिन फूलों में बदलते हुए पाओगे, वे ही अंगारे--जगमगाते अंगारे--एक दिन जगमगाते फूल हो जाते हैं। जिसके भीतर प्रगाढ़ जिज्ञासा है और जो अपनी जिज्ञासा पर सब कुछ समर्पित कर देने को राजी है, अर्थात जिसकी जिज्ञासा मुमुक्षा बन गई है--धर्म उसकी ही आभा है, धर्म उसकी ही अनुभूति है।
धर्म के लिए खतरा झूठे आस्तिकों से है, झूठे नास्तिकों से है। और यहां झूठे नास्तिक नहीं हैं इस देश में, इसलिए मैं कहता हूं झूठे आस्तिकों से।

रूस और चीन में बोलूं--जहां कि बोलना असंभव; जहां कि मुझे प्रवेश नहीं मिल सकता; जहां मेरी किताबें भी चोरी से जा रही हैं। किताबें चल पड़ी हैं! लोग रूस में किताबें पढ़ रहे हैं; लेकिन चोरी से। शायद कार्ल मार्क्स और लेनिन की किताब के भीतर छिपा कर पढ़ते हों! पत्र मेरे पास आते हैं, लोग आने को उत्सुक हैं।
एक महिला ने तो मुझे लिखा है कि मैं किसी भी भारतीय से विवाह करने को राजी हूं, अगर मुझे आश्रम में रहने का मौका मिल सके और मैं किसी तरह रूस से छुटकारा पा सकूं।
ये पत्र भी वे सीधे नहीं भेज सकते, क्योंकि पत्रों की रूस में छानबीन होती है। और रूस में होती है वह तो ठीक ही ठीक है, मेरे नाम जो पत्र आते हैं उनकी छानबीन भारत में भी होती है। दिल्ली से कोई पत्र आता है, पूना तक उसको पहुंचने में तीस दिन लग जाते हैं, पैंतीस दिन लग जाते हैं। क्योंकि कई दफ्तरों में उसकी छानबीन चलती है! पोस्ट आफिस के अधिकारियों ने यह स्वीकार भी किया है कि हां, यह बात सच है कि पत्र खोले जाते हैं, पढ़े जाते हैं। फिर सारे पत्र यहां पहुंचते भी हैं, यह भी संदिग्ध है। क्योंकि बहुत से लोगों के पत्र आते हैं कि हमने पत्र लिखे थे, उनका क्या हुआ? उनके पत्र कभी पहुंचे नहीं।
और रूस से तो पत्रों का आना बहुत मुश्किल मामला है। लेकिन फिर भी लोग रास्ता खोज लेते हैं। रूस से जिनको पत्र लिखने हैं, वे उन यात्रियों को पत्र देते हैं, जो लंदन जा रहे हैं या न्यूयार्क जा रहे हैं, ताकि वहां से पत्र डाल दिए जाएं। तो मेरे पास तो पत्र आ जाते हैं, लेकिन यहां से उनको पत्र वापस पहुंचाने का कोई उपाय समझ में नहीं आता, कि उनको कैसे खबर पहुंचाई जाए।
रूस और चीन में अगर मुझे बोलना हो, तो कहूंगा--झूठी नास्तिकता। लेकिन भारत में बोल रहा हूं और उन देशों के लोगों के सामने बोल रहा हूं जहां सभी जगह झूठी आस्तिकता फैली हुई है, इसलिए तुमसे कहता हूं--झूठी आस्तिकता सबसे बड़ी बाधा है। और झूठी आस्तिकता को फैलाने वाले पंडित-पुरोहित, पुजारी, तुम्हारे तथाकथित थोथे संत, वे सब धर्म के दुश्मन हैं।
जब तुम्हें मैंने पहले-पहल देखा
तो भक्ति से झुक कर मैंने तुम्हारे चरणों पर
अपना भविष्य चढ़ा दिया।
तुमने मुझे आशीर्वाद दिया
और मेरा भविष्य रख लिया।
फिर तुम्हें मैंने अपनी प्रतिभा दी।
तुमने मुझे वरदान दिया
और मेरी प्रतिभा ले ली।
फिर तुम्हें मैंने अपनी शक्ति सौंपी।
तुम चुप रहे
पर मेरी शक्ति तुमने स्वीकार की। सिद्धि की प्रतीक्षा में
जब आंखें मूंदे मुझे एक युग बीत गया तब मैंने तुम्हें फिर देखाः
तुम अचल थे, मूर्तिवत,
नहीं,
तुम मूर्ति ही थे!
फिर मुझे आशीष और वरदान किसने दिए?
और तब मैंने पहली बार
तुम्हारे पुजारियों पर नजर डाली
जो तुम्हारी ओट में,
मेरा भविष्य, मेरी प्रतिभा, मेरी शक्ति भोग रहे थे!
मैं तो अब मुक्त हूं
क्योंकि अपनी स्थिति का ज्ञान ही मुक्ति है, पर देवता!

यदि तुम निरे पत्थर ही नहीं हो
तो अपने इन पुजारियों से अपनी रक्षा करो!
मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजे--ये अड्डे बन गए हैं पंडे-पुजारियों के, पादरियों-पोपों के। ये सबसे बड़ा खतरा हैं, क्योंकि ये जहर फैलाते हैं! ये न केवल झूठी धारणाएं फैलाते हैं, ये न केवल लोगों को जबरदस्ती मिथ्या धार्मिक बनने के लिए प्रचार करते हैं--वरन साथ ही साथ ये लोगों को लड़ाते भी हैं, वैमनस्य भी फैलाते हैं, द्वेष-दंगा-फसाद भी फैलाते हैं। मंदिर-मस्जिद एक-दूसरे को लड़वाते हैं। इनसे धर्म को बचाना जरूरी है।
धर्म इस पृथ्वी पर अपूर्व निर्माण कर सकता है। सृजन की बड़ी क्षमता धर्म में है। क्योंकि धर्म है तुम्हारा स्वभाव। धर्म है इस जगत को चलाने वाला नियम। धर्म कोई व्यक्ति नहीं है, और धर्म कोई परमात्मा से बंधा नहीं है। परमात्मा को मानो, न मानो--चलेगा। क्योंकि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं; अनुस्यूत जीवन की इस माला के भीतर छिपा हुआ धागा है--जो चांद-तारों को बांधे है, जो घास की पत्ती में हरा है और गुलाब के फूल में सुर्ख है, और सुबह के सूरज में उगता है और रात के चांद में चांदी बरसाता है। वह जीवन का परम नियम! एस धम्मो सनंतनो! वह सनातन धर्म बच सकता है। उससे हमारे संबंध हो सकते हैं। उसके साथ हम जुड़ जाएं, तो हमारा जीवन अपूर्व आनंद से भर जाए, ज्योतिर्मय हो उठे। अंधकार कटे, दुख कटे, पीड़ा कटे, मृत्यु मिटे, चिंता जाए, संताप गले।
लेकिन पंडे-पुजारियों की बड़ी जमात, उसके और हमारे बीच खड़ी है। उनका हित इसमें ही है कि लोग धार्मिक न हो पाएं।
तुम चौंकोगे मेरी बात सुन कर, क्योंकि तुम सोचते हो कि वे बेचारे लोगों को धार्मिक बनाने की ही तो कोशिश कर रहे हैं। और मैं तुमसे कहता हूं फिर-फिरः वे नहीं चाहते कि तुम धार्मिक हो जाओ। तुम्हारा धार्मिक होना उनके सारे व्यवसाय का नष्ट हो जाना है। उनका व्यवसाय तभी तक है, जब तक तुम धार्मिक नहीं हो। उनका व्यवसाय बड़ा खतरनाक व्यवसाय है। तुम्हारी अधार्मिकता पर जिनका व्यवसाय चलता हो, निश्चित ही वे बड़े घातक लोग हैं। मैंने सुना है, एक मधुशाला में एक रात कुछ लोग आए। उन्होंने खूब पी, डट
कर पी, नाचे-कूदे, गीत गाए। जब आधी रात वे जाने लगे तो मधुशाला के मालिक ने अपनी पत्नी से कहा, ऐसे ग्राहक अगर रोज आएं, तो हमारे भाग्य खुल जाएं! कैसे दिलफेंक लोग थे! कैसा दिल खोल कर खर्च किया! ऐसे ग्राहक पहली दफा देखे! जिसने पैसे चुकाए थे, उससे भी उस मधुशाला के मालिक ने कहा, भाई, कभी-कभी आया करो।
उसने कहा, दुआ करो परमात्मा से हमारे लिए, प्रार्थना करो कि हमारा धंधा ठीक चलता रहे, तो हम तो रोज आएं! कभी-कभी क्या, अरे हम तो सुबह भी आएं और शाम भी आएं। मगर हमारा धंधा ठीक चलता रहे। प्रार्थना करना।
उस मधुशाला के मालिक ने कहा, जरूर करेंगे प्रार्थना। तभी उसे ख्याल आया कि पूछ तो लूं कि तुम्हारा धंधा क्या है। उसने पूछा, प्रार्थना तो हम करेंगे ही, मगर तुम्हारा धंधा क्या है?
उस आदमी ने कहा, वह तुम न पूछो तो अच्छा। क्योंकि मैं मरघट पर लकड़ियां बेचने का धंधा करता हूं। लोग मरते रहें, तो हमारा धंधा चलता है। जितने ज्यादा लोग मरें, उतना हमारा धंधा चलता है। अभी सीजन चल रहा है! गांव भर में तरह-तरह की बीमारियां फैली हैं, लोग रोज मर रहे हैं। लोग मरते रहें, लकड़ी बिकती रहे, चिताएं जलती रहें, हम तो रोज आएं--सुबह भी आएं, सांझ भी आएं!
अब कुछ लोगों का धंधा है, जो लोगों के मरने से चलता है! उनका धंधा खतरनाक धंधा है। पंडित-पुजारियों का धंधा है, जो तुम्हारे अधार्मिक होने से चलता है। क्योंकि तुम धार्मिक हो जाओ तो तुम मंदिर जाओ क्यों!
सूफी फकीर बायजीद जिंदगी भर मस्जिद जाता रहा। एक दिन भी नहीं चूका। बुखार हो कि बीमारी हो, मगर वह जाए ही जाए। पांचों नमाज पूरी पढ़े। गांव तो आदी हो गया था उसका। एक दिन जब वह मस्जिद नहीं आया तो मस्जिद में आए लोगों ने सोचा कि जरूर रात मर गया होगा। बूढ़ा भी हो गया था। एक ही बात सोच सके कि मर गया होगा, क्योंकि और तो हर हालत में वह आता ही। सांस चलती रहती, तो आता ही। तो मस्जिद से जल्दी से नमाज पूरी करके वे सारे लोग बायजीद के झोपड़े की

तरफ गए। वह गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे झोपड़ा बना कर रहता था। वह वृक्ष के नीचे बैठा था, अपना इकतारा बजा रहा था। बड़ा मस्त था!
गांव के लोगों ने कहा, बायजीद, दिमाग खराब हो गया या कि बुढ़ापे में नास्तिक हो गए? अब काफिर हो रहे हो--जिंदगी भर की प्रार्थनाओं के बाद? आज मस्जिद क्यों नहीं आए? हम तो समझे कि तुम मर ही गए।
बायजीद ने कहा, मैं मस्जिद आता था, क्योंकि मुझे परमात्मा का कोई पता नहीं था। अब मुझे उसका पता मिल गया है। अब मैं क्यों मस्जिद आऊं? अब तो मैं जहां हूं, वहीं परमात्मा है। अब मैं क्यों नमाज पढूं? यह मेरा इकतारा बज रहा है, यह मेरी नमाज है। और ये पक्षी गीत गा रहे हैं वृक्ष पर, यह मेरी नमाज है। और देखते हो यह हवा सुबह की ताजी-ताजी और ये नई-नई किरणें सूरज की, यह मेरी नमाज है। अब मैं नहीं आऊंगा। अब रखो तुम अपनी मस्जिद। पांच बार पढ़ता था नमाज, क्योंकि मुझे पता नहीं था कि चौबीस घंटे नमाज में हुआ जा सकता है। अब मुझे पता हो गया है। अब मेरी आंख खुल गई है।
सत्यनारायण की कथा कौन करवाएगा? अगर तुम्हारे जीवन में सत्य हो, तो तुम सत्यनारायण की कथा करवाओगे? जिसमें न सत्य है, न नारायण; कुछ भी नहीं! तुम्हारे जीवन में सत्य हो, तो तुम सत्यनारायण हो। तुम्हारे भीतर राम का अनुभव हो, तो तुम रामलीला देखने जाओगे? ये बचकाने खेल! राम की बारात में सम्मिलित होओगे? खेल-खिलौनों में उलझोगे? पत्थर की मूर्ति पर फूल चढ़ाओगे? पत्थर की मूर्ति, जो तुम्हीं ने बना ली है या बनवा ली है, उसके सामने हाथ जोड़ कर झुकोगे?
नहीं, यह सब असंभव हो जाएगा। पंडित-पुरोहित का धंधा चल सकता है तभी तक,
जब तक पृथ्वी अधार्मिक है। यह उनके हित में है, यह उनका न्यस्त स्वार्थ है।
निरंजन, सबसे बड़ा खतरा धर्म के लिए हैं पुरोहित। पुरोहित नहीं चाहिए, पंडित नहीं चाहिए। चाहिए जिज्ञासु, खोजी, अन्वेषक। चाहिए प्रेमी। चाहिए जीवन को अनुभव करने की क्षमता रखने वाले साहसी लोग। चाहिए ऐसे लोग जो किसी काल्पनिक सिद्धांत में न उलझ जाएं, बल्कि जीवन के यथार्थ में परमात्मा को तलाशें।
खोदोगे जीवन के यथार्थ को, तो जैसे कुआं कोई खोदता है, जल मिल जाता है देर-अबेर, ऐसे ही जीवन के यथार्थ को खोजोगे तो परमात्मा भी मिल जाता है देर-अबेर। तुम्हारी खोज में जितनी त्वरा होती है, तीव्रता होती है, समग्रता होती है, उतने ही जल्दी परमात्मा मिल जाता है। और जब परमात्मा मिलता है, तो तुम बहुत हंसोगे, क्योंकि तुम चकित होओगे--जिसे तुम दूर खोजते थे, वह पास था! और जिसे तुम बाहर खोजते थे, वह सदा से तुम्हारे भीतर विराजमान है!

तीसरा प्रश्नः अस्सलाम आलेकुम! सलाम तो बचपन से किया, लेकिन यहां जब संगीत-ध्यान में इसे गाया, तो एक सरूर सा आया। रोना भी आया और हंसना भी। खिल गए मेरे प्राण! दिल किया कि आपके पैरों को चूमूं; झुकूं--झुकूं--और झुकता ही रहूं। शुक्रिया आपका!

प्रेमानंद! यही तो मैं कह रहा हूं--एक सलाम है जो सिखावट से आती है, और
एक सलाम है जो अनुभव से निर्मित होती है। तुमने बचपन से किया होगा सलाम, नमस्कार--परमात्मा को; मगर वह औपचारिक था, शिष्टाचार था। और लोग कर रहे थे, इसलिए तुम भी कर रहे थे। उसमें तुम्हारे प्राणों की ध्वनि नहीं थी। उसमें तुम्हारे हृदय की धड़कन नहीं थी। वह मुर्दा थी।
संन्यस्त होकर अब तुम चौंके हो। वही सलाम--लेकिन वही सलाम नहीं है। शब्द वही है, लेकिन तुम बदल गए। तुम बदले कि शब्द बदल गए। अब तुम्हारी सलाम में एक रस है।
तुम कहतेः एक सरूर! हां, अब तुम्हारी सलाम एक शराब है। अब तुम्हारी सलाम एक रसधार है। अब तुम्हारी सलाम में वही सत्य है, जो मोहम्मद की सलाम में रहा होगा, जो मंसूर की सलाम में रहा होगा, जो बहाउद्दीन, जलालुद्दीन की सलाम में रहा होगा। वही सरूर, वही शराब, वही खुमार, वही मस्ती! अब तुम पहली

बार मस्जिद में आए हो। वे मस्जिदें जिनमें तुम गए थे, पंडित-पुरोहितों के द्वारा निर्मित थीं। अब तुम पहली बार तीर्थ पर आए हो--एक जीवंत तीर्थ! काबा अब तो पत्थर है। मुहम्मद थे, तो उस पत्थर में भी प्राण थे। मुहम्मद की मौजूदगी ने उस पत्थर को भी प्राण दे दिए थे। वह मुहम्मद की मौजूदगी थी कि पत्थर भी जीवंत हो उठा था। यहां अभी जो काबा है, जीवंत है। सरूर आएगा, और खूब आएगा! बाढ़ आएगी! अभी तो शुरुआत है।
तुम कहते होः सलाम तो बचपन से किया, लेकिन जब यहां किया, तो एक सरूर सा आया। रोना भी आया और हंसना भी!
वह बात महत्वपूर्ण है। अगर रोना ही आए, तो दुख से आता है। अगर हंसना ही आए, तो सुख से आता है। लेकिन रोना और हंसना जब दोनों साथ-साथ आते हैं, तो साक्षी-भाव का जन्म होता है। क्योंकि फिर न तो तुम कह सकते कि मैं रो रहा, और न कह सकते कि मैं हंस रहा। तब तो तुम दोनों को देखते हो; तुम किसी एक से तादात्म्य नहीं कर सकते।
यह तो ध्यान की गहराइयों में घटता है, जब रोना और हंसना साथ-साथ आता है। और क्यों साथ-साथ आता है? इसलिए साथ-साथ आता है कि रोना इस बात का कि अब तक भटके रहे; और हंसना इस बात का कि जिससे भटके रहे, उससे भटकने की एक क्षण भी कोई जरूरत न थी। रोना इस बात का कि इतने दिन जिसको तलाशते थे, वह मिला नहीं; और हंसना इस बात का कि बिना तलाशे मिला हुआ है। मिला ही था, पहले से ही मिला था; भीतर ही बैठा है।
और रोना और हंसना जब साथ-साथ आता है, तो एक साक्षी-भाव अपने आप पैदा होता है। इसीलिए तो लोग परमहंसों को पागल कहते हैं। क्योंकि पागल और परमहंस दो ही तरह के व्यक्ति हैं जो एक साथ हंसते और रोते हैं। पागल हंसता है, रोता है साथ-साथ, या परमहंस।
पागल मन से नीचे गिर गया; अब उसे कुछ हिसाब-किताब नहीं रहा कि वह क्या
कर रहा है। सब अस्तव्यस्त हो गया। हंस रहा है तो रोना नहीं चाहिए, इतनी तर्क-बुद्धि नहीं रही। रो रहा है तो हंसना नहीं चाहिए, इतना हिसाब नहीं रहा। सब गड्ड-मड्ड हो गया। सब एक-दूसरे में मिल-जुल गया। चीजें बिखर गईं, एक-दूसरे पर फैल गईं। भेद न रहे, क्योंकि भेद करने वाली बुद्धि से नीचे गिर गया। और परमहंस भी हंसता है और रोता है।
प्रेमानंद, परमहंस में कुछ-कुछ पागल जैसा होता है। कुछ-कुछ! एक बात में समानता होती है कि दोनों बुद्धि से मुक्त हो गए होते हैं। परमहंस ऊपर उठ गया होता है बुद्धि के और पागल नीचे गिर गया होता है। पागल के पास इतनी बुद्धि नहीं बची कि अब फर्क कर सके कि कब रोऊं और कब हंसूं! कि हंसने-रोने में विरोधाभास है, एक साथ नहीं करना चाहिए--इतना होश नहीं रहा। और परमहंस में इतना होश आ गया है कि उसका तादात्म्य टूट गया; न हंसने के साथ अपने को एक कर पाता है, न रोने के साथ; दोनों को देखता है; दोनों का साक्षी मात्र है।
प्रेमानंद, शुभ हुआ। इसे होने देना। रोकना मत। इस तरह का सरूर जब आता है, तो घबड़ाहट भी होने लगती है कि कोई क्या कहेगा! डर भी लगता है कि कोई देख लेगा रोते-हंसते एक साथ, तो पागल समझेगा!
नहीं, चिंता छोड़ो! यह तो पागलों की ही जमात है। यहां कोई किसी की चिंता नहीं ले रहा है। यहां प्रत्येक अपने में डूब रहा है। इसलिए कभी-कभी कुछ संन्यासी मुझे आकर कहते हैं कि हमें एक बात बहुत अजीब सी लगती है इस आश्रम में कि लोग अपने-अपने में मस्त हैं! जैसे किसी को किसी दूसरे की पड़ी ही नहीं! ऐसा तो नहीं होना चाहिए।
उन्हें अभी पता नहीं है। मैं उनसे कहता हूं, थोड़ी देर रुको, तुम्हें
भी यही हो जाएगा। यह रोग तुम्हें भी लगेगा।
अपने-अपने में मस्त होना पर्याप्त है। लोग एक-दूसरे में जो रस लेते हैं, वह वस्तुतः एक-दूसरे में हस्तक्षेप करने के लिए रस लेते हैं। कौन हंस रहा है, कौन रो रहा है, कौन क्या कर रहा है--लोग बड़े आतुर होकर इसमें लगे रहते हैं! खुद की खबर नहीं, सारी दुनिया की खबर करते फिरते हैं।
तुम चिंता न लेना। सरूर को बढ़ने दो। खुमार को गहराने दो। शराब को गहरा उतरने दो। रोओ भी, हंसो भी। नाचो भी, मौन भी बैठो। ध्यान और प्रेम, दोनों साथ-साथ घटते रहें।

तुमने लिखाः "खिल गए मेरे प्राण!"
खिलेंगे ही। यही तो ढंग है प्राण के फूल के खिलने का।
"दिल किया कि आपके पैरों को चूमूं; झुकूं--झुकूं--और झुकता ही रहूं।" प्रेमानंद, मैं देख ही रहा हूं, वह झुकना चल रहा है। तुम रोज झुकते जा रहे हो। तुम रोज मिटते जा रहे हो। अभी थोड़े ही दिन पहले आए थे। लेकिन अब वही आदमी नहीं है तुम्हारे भीतर, जो आया था। नये का आविर्भाव शुरू हो गया है। नई कोंपलें निकलती देख रहा हूं। तुम्हारे जीवन में वसंत आ गया है। कहते होः "शुक्रिया आपका!"
शुक्रिया जब भी करो, परमात्मा का करना। सब शुक्रिया उसका। अगर मेरी सन्निधि में, मेरे सान्निध्य में, मेरे सामीप्य में कुछ घटे, तो स्मरण रखना सदा--मैं केवल उपकरण हूं, वाहन मात्र हूं। डाकिया मात्र हूं। तुम्हारी चिट्ठी उस तक पहुंचा देता हूं, उसकी चिट्ठी तुम तक पहुंचा देता हूं। शुक्रिया उसका! लेकिन तुम्हारे भाव को मैं समझा। आखिर तुम शुक्रिया भी उसको पहुंचाओगे, तो मेरे ही द्वारा पहुंचाओगे न! प्रेमानंद, पहुंचा दूंगा।

चौथा प्रश्नः शादी घरवालों की मर्जी से करें या स्वयं के चुनाव से?

ज्ञान रंजन! शादी जैसी खतरनाक चीज हमेशा दूसरों की मर्जी से करनी चाहिए। उसमें एक लाभ है कि कल तुम कम से कम दोष तो सदा दूसरों को दे सकोगे! जो खुद की मर्जी से करता है, बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है; दोष देने को भी कोई नहीं मिलता!
इसीलिए तो समझदार लोगों ने तय किया था कि मां-बाप विवाह कर दें। क्योंकि दोष तो आखिर देना ही पड़ेगा। एक तो शादी की मुसीबत, और जिम्मा भी अपना! भार बहुत हो जाएगा। मां-बाप भार को बांट लेते हैं। वे कहते हैं, गाली तुम हमको दे देना। जब क्रोध आए और जब जीवन बहुत बोझिल होने लगे, तो कम से कम इतनी तो राहत होगी कि खुद इस झंझट में हम नहीं पड़े थे; ये मां-बाप बांध गए पीछे।
शादी है तो उपद्रव!
मुल्ला नसरुद्दीन को तार मिला। उसकी पत्नी हज-यात्रा पर गई थी। रास्ते में ही मर गई, तो वहां से तार आया कि नसरुद्दीन, क्या करना है? पत्नी को मुसलमानी ढंग और रिवाज से गड़ा दें? लेकिन हमने सुना है कि तुमने गैरिक वस्त्र पहन लिए हैं और तुम संन्यासी हो गए हो, तो ऐसा तो नहीं कि तुम चाहते हो कि पत्नी को अग्नि में जलाया जाए? या कुछ हिंदू नदियों में भी बहा देते हैं लाशों को। तो तुम क्या चाहते हो--पत्नी गड़ाई जाए, जलाई जाए, कि बहाई जाए?
मुल्ला नसरुद्दीन ने तार दियाः डू आल दि थ्री। डोंट टेक एनी चांस! तीनों करो, क्योंकि कोई भी अवसर बचने का देना ठीक नहीं!
ज्ञान रंजन, ऐसे खतरे में उतर रहे हो, समझदारों की सलाह से उतरना अच्छा। खतरा तो सुनिश्चित है।
ढब्बूजी चंदूलाल से बोले, मुबारक हो चंदूलाल, आज तुम्हारी जिंदगी का सबसे खुशकिस्मत दिन है।
मगर मेरी शादी तो कल होने वाली है, चंदूलाल ने कहा।
इसीलिए तो आज कहा न, ढब्बूजी बोले। बस आज तुम्हारे जीवन का सबसे खुशकिस्मत दिन है! फिर तड़फोगे, फिर रोओगे, फिर याद करोगे!
चंदूलाल की पत्नी बीमार थी, चंदूलाल भी बीमार था। दोनों ठीक होते नजर
न आते थे। डाक्टर चंदूलाल को देखने आया था। डाक्टर ने चंदूलाल की जांच-पड़ताल के बाद कहा, चंदूलाल, तुम्हारे पीछे कोई पुरानी बीमारी पड़ी हुई है, जो तुम्हारे स्वास्थ्य व मानसिक शांति को नष्ट किए दे रही है!
चंदूलाल ने कहा, डाक्टर साहब, जरा धीरे! क्योंकि जिसकी आप बात कर रहे हैं, वह बगल के कमरे में बिस्तर पर सो रही है!
शादी करनी ही क्यों? विवाह भी एक जराजीर्ण धारणा है। ज्ञान रंजन, प्रेम हो किसी से, उसके साथ जीओ। अगर प्रेम न हो किसी से, तो अकेले जीओ। प्रतीक्षा करो।

अकेले लोग जी नहीं सकते; और किसी के साथ भी नहीं जी सकते! अकेले में अकेलापन काटता है। किसी के साथ दूसरे की मौजूदगी झंझट बन जाती है। जो विवाहित हैं, वे सोचते हैं कि धन्य हैं अविवाहित! और जो अविवाहित हैं, वे सोचते हैं, धन्य हैं विवाहित!
यह दुनिया बड़ी अदभुत है। यहां जिसके पास जो है, उसी से दुखी है! और जो नहीं है, जो किसी और के पास है, उससे उसकी आशा अटकी है।
तुम्हारे मन में शादी का सवाल उठा, यह सवाल ही अर्थहीन है। प्रेम करो!
और प्रेम ही अगर विवाह बन जाए, तो ठीक। अगर प्रेम ही तुम्हें ऐसी प्रतीति दे कि किसी के साथ जीवन भर रहना सुखद होगा, तो जीवन भर किसी के साथ रहो। विवाह का तो अर्थ होता हैः प्रेम नहीं है; तो किसकी मर्जी से शादी करें? स्वयं के चुनाव से या घरवालों की इच्छा से? चुनाव का तो मतलब ही यह हुआ कि तुमने शादी को भी कोई नुमाइश समझ रखा है। और करीब-करीब इस देश में ऐसी ही हालत हो गई है। लड़कियों की नुमाइश होती है! क्या चुनाव करोगे? किसी लड़की को जाकर देख लिया; उसने खाना परोस दिया। और अगर बहुत सुशिक्षित हुए तो दो क्षण बैठ कर बात कर ली। इससे क्या पहचान लोगे? हो सकता है नाक-नक्श देख लो; हो सकता है शरीर का थोड़ा अनुपात देख लो, रंग-रूप देख लो। मगर जीवन में इन बातों से कुछ भी तय नहीं होता। रंग-रूप, नाक-नक्श, सब दो दिन में पुराने पड़ जाते हैं। जिंदगी तय होती है, वह जो भीतर छिपा हुआ व्यक्तित्व है, उससे। और कभी-कभी साधारण चेहरों के भीतर बड़ी असाधारण आत्माएं छिपी होती हैं। और बड़े सुंदर चेहरों के भीतर कभी-कभी बड़ी कुरूप आत्माएं छिपी होती हैं। चुनाव कैसे करोगे?
चुनाव नहीं किया जा सकता। विवाह के पूर्व परिचय चाहिए, चुनाव नहीं। गहरा परिचय चाहिए! अगर तुम्हारा वर्ष, दो वर्ष, चार वर्ष का परिचय तुम्हें इस जगह ले आए कि लगे कि हां, किसी के साथ जीवन भर रहना सुखद होगा, आनंदपूर्ण होगा, तो न तो यह चुनाव है और न घरवालों की मर्जी का सवाल है। फिर विवाह केवल एक औपचारिकता है जो निभा लेनी है, क्योंकि समाज में जीना है, औरों के साथ रहना है।
अगर मेरे कम्यून में रहना हो, तब तो विवाह की औपचारिकता भी निभानी आवश्यक नहीं है। क्योंकि विवाह की औपचारिकता निभाई ही इसलिए जाती है, ताकि कल पति छोड़ कर न भाग जाए। कानून को बीच में रखना पड़ता है; पुलिसवाले, मजिस्ट्रेट, अदालत को बीच में लाना पड़ता है। ताकि आज तो ठीक है, लेकिन कल अगर भाग गए, तो फिर क्या होगा! फिर बच्चों का क्या होगा!
अगर मेरे कम्यून के हिस्से होते हो ज्ञान रंजन, तब कोई चिंता न करो। क्योंकि मैं दुनिया को जिस ढंग से देखता हूं, भविष्य को जिस ढंग से देखता हूं, उसमें मुझे कम्यूनों का बहुत भविष्य दिखाई पड़ता है। परिवार भी सड़ गया है पुराना। अब नये ढंग के परिवार चाहिए--कम्यून। बच्चों की जिम्मेवारी कम्यून की होगी। बच्चे कम्यून के होंगे, व्यक्तियों के नहीं। अगर पति- पत्नी अलग हो जाते हैं, तो कोई बहुत चिंता की बात नहीं है। बच्चे पति के पास रह सकते हैं या पत्नी के पास रह सकते हैं, जिम्मेवारी कम्यून की होगी। और बच्चे तब तक पैदा करने भी नहीं चाहिए, जब तक यह निर्णीत न हो जाए कि तुम आत्यंतिक रूप से एक-दूसरे के साथ रहने के लिए आबद्ध हो गए हो। तब तक बच्चे पैदा करना उत्तरदायित्वहीनता का कृत्य है। जिसके साथ तुम जीवन भर रहने को राजी नहीं हो, उसके साथ जुड़ कर एक बच्चे को पैदा करना अशोभन है, क्योंकि जिससे तुम जुड़ नहीं सकते जीवन भर... । बच्चा बनेगा तुमसे और तुम्हारी पत्नी से मिल कर। और अगर तुम जुड़ कर नहीं रह सकते साथ-साथ, तो बच्चे की हालत क्या होगी, यह तो सोचो! उसके भीतर पत्नी का आधा हिस्सा होगा, आधा तुम्हारा; वे दोनों आधे हिस्से लड़ते रहेंगे, कशमकश करते रहेंगे, रस्साकशी होती रहेगी।
इसीलिए तो दुनिया में लोगों के भीतर इतनी रस्साकशी चलती है, इतना द्वंद्व चलता है--यह करूं कि वह करूं! भीतर एक स्वर कहता है, यह कर लो! दूसरा स्वर कहता है, भूल कर मत करना! ये दो स्वर आते कहां से हैं?
कार्ल गुस्ताव जुंग ने, पश्चिम के बड़े मनोवैज्ञानिक ने, एक बहुत प्राचीन सिद्धांत को पुनः आविष्कार किया कि प्रत्येक पुरुष के भीतर स्त्री है और प्रत्येक स्त्री के भीतर पुरुष है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री

और पुरुष, स्त्री और पुरुष के जोड़ से पैदा हुए हैं। तुम्हारी मां तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे पिता तुम्हारे भीतर हैं। और अगर उन दोनों में नहीं बनी, तो तुम्हारे भीतर उन दोनों के जोड़ से जो व्यक्तित्व बना है, वह व्यक्तित्व भी हमेशा खंड-खंड रहेगा, दुविधाग्रस्त रहेगा, अड़चन से भरा रहेगा।
अगर हम दुनिया में ऐसे बच्चे चाहते हैं जिनके भीतर एक लयबद्धता हो, तो
उस लयबद्धता के पूर्व मां-बाप को लयबद्ध हो जाना चाहिए। इसलिए मैं साधारणतः अपने संन्यासियों को नहीं कहता कि बच्चे पैदा करो। उनको मैं कहता हूं, पहले तुम ध्यान की गहराइयों में उतरो, प्रेम की ऊंचाइयों में चढ़ो। जब तुम्हारे जीवन में ध्यान और प्रेम, दोनों का अनुभव परिपक्व हो जाए, तब बच्चों को जन्म देना। वे बच्चे अनूठे होंगे। वे स्वर्गीय होंगे। अभी तुम रोते हो अपने बच्चों के लिए। और जिम्मेवार तुम खुद ही हो। हरेक मां-बाप शिकायत करते हुए मिलते हैं बच्चों के बाबत। और जिम्मेवार कौन है? फलों से वृक्ष पहचाने जाते हैं। तुम्हारे बच्चों से तुम पहचाने जाओगे।
अगर बच्चों को पैदा करने की जल्दी न हो, तो विवाह के बिना काफी देर गुजारा जा सकता है। और जितनी देर गुजर जाए, उतना अच्छा। जब तालमेल बिल्कुल बैठ जाए; तेल-पानी सा मिलन न हो, दूध-पानी सा जब मिलन हो जाए कि अलग करना ही मुश्किल हो जाए, तभी बच्चों को जन्म देना। फिर तुम्हारे अलग होने का कारण भी नहीं आएगा। और अगर कभी संयोगवशात कारण आए भी, तो अब धीरे-धीरे कम्यून बनाओ और कम्यूनों में रहो।
यह जो हमारा कम्यून है, यह तो पहला प्रयोग है; फिर इस तरह के कम्यून हम सारी दुनिया के कोने-कोने में फैला देंगे। जगह-जगह सौ, दो सौ, चार सौ, पांच सौ, हजार, पांच हजार संन्यासी इकट्ठे रहें। इकट्ठा सामूहिक जीवन! न व्यक्तिगत संपदा हो, न व्यक्तिगत बच्चों के ऊपर दावेदारी, कि ये मेरे हैं। असली कम्युनिज्म कम्यूनों के विस्तार से आएगा दुनिया में, कम्युनिस्ट पार्टियों के द्वारा नहीं। कम्युनिस्ट पार्टियों के द्वारा तो सिर्फ तानाशाही आ सकती है--भद्दी तानाशाही, जिसमें लोकतंत्र की हत्या हो, लोगों की आत्मा का विनाश हो।
कम्यून फैलने चाहिए। कम्युनिज्म शब्द कम्यून से बना है। कम्यून फैलने चाहिए। धीरे-धीरे पृथ्वी पर कम्यून बढ़ते जाएं। जगह-जगह पहाड़ों में, जंगलों में, छोटे-छोटे कम्यून बड़े होते जाएं। कम्यूनों का आनंद ऐसा हो कि और लोग भी कम्यूनों में आकर सम्मिलित होते जाएं।
कम्यून में सम्मिलित होने का अर्थ हैः तुम अपनी सब पुरानी व्यक्तिगत धारणाएं छोड़ते हो, अहंकार छोड़ते हो।
ज्ञान रंजन, अगर आ सकते हो यहां, तब तो कोई चुनाव की जरूरत नहीं, न घरवालों की मर्जी का कोई सवाल है। लेकिन अगर यहां नहीं आ सकते, तो घरवालों की मर्जी से ही विवाह कर लो। लाभ रहेगा जिंदगी भर, कि गाली अपने मां-बाप को दे लोगे। और मन को संतोष मिलेगा, तृप्ति मिलेगी, कि खूब फंसा गए! खुद तो गए, और हमें खूब फंसा गए! और उनसे बदला लेना हो, तो तुम अपने बच्चों को फंसा जाना।

आखिरी प्रश्नः आप आनंद बांटते ही चले जाते हैं। क्या आपके आनंद बांटने का कभी अंत होगा? और लोग हैं कि अमृत के उत्तर में आपको विष देते हैं। उनके संबंध में आपका क्या वक्तव्य है?

सहजानंद! जो उनके पास है, वही वे देते हैं; जो मेरे पास है, वही मैं देता हूं। हम दोनों एक ही जैसा काम कर रहे हैं। मेरी मजबूरी है--विष नहीं दे सकता। उनकी मजबूरी है--अमृत नहीं दे सकते। हम दोनों मजबूर। हम दोनों को तुम क्षमा करो।
मैं उन पर नाराज नहीं हूं। वे विष देते हैं, यह देख कर मेरे हृदय में उनके प्रति करुणा उपजती है, कि उनके पास विष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं! कैसे नर्क में न जी रहे होंगे, कि उनसे जब भी उठती हैं, गालियां ही उठती हैं! कि उनमें जब भी निकलते हैं, कांटे ही निकलते हैं! कैसा नहीं होगा उनका अंतरव्यथा का जगत! कैसा नहीं होगा उनके भीतर संताप, चिंता, बेचैनी, तनाव!

कितनी मुसीबत में न होंगे! अन्यथा कहीं गालियां ऐसे ही आती हैं? जो भी तुम्हारे ऊपर प्रकट होता है, वह तुम्हारे अंतरतम से आता है।
रही मेरे अमृत बांटने की बात; फिर याद दिला दूं, वह मेरा नहीं है। मेरा
अब कुछ भी नहीं है। है तो परमात्मा का है। और परमात्मा का जो भी है, वह अनंत है, उसका कोई अंत नहीं आता। जितना बांटो, उतना ही बढ़ता है। मैं तो सिर्फ गुनगुना रहा हूं, गीत उसका है।
किसी के गीत का लेकर सहारा,
तुम्हें अब गुनगुनाना आ गया है।
तुम्हारे साथ निर्झर गा रहे हैं
तुम्हारी कीर्ति के घन छा रहे हैं
कहीं तो प्रार्थना पर भी नियंत्रण कहीं तन-मन लुटाए जा रहे हैं उचटती नींद की निधि मत बिखेरो तुम्हें सपने सजाना आ गया है।
हर एक बरसात थम पाती नहीं है शिलाओं में नमी आती नहीं है
गगन दिन-रात उल्कापात करता सितारों में कमी आती नहीं है तिमिर से ऊब कर आंखें न मीचो तुम्हें दीपक जलाना आ गया है। सपन किस नयन के टूटे नहीं हैं किसी के मीत कब छूटे नहीं हैं अमृत के नाम पर विष पी गया हूं अधर मेरे हुए जूठे नहीं हैं
न अपने मौन का आशय बताओ
तुम्हें बातें बनाना आ गया है। यहां सब लोग तुमको जानते हैं अपरिचित हैं मगर पहचानते हैं कली को गंध की गंगा कहूं तो कुटिल कांटे बुराई मानते हैं उदासी को न पलकों बीच बांधो तुम्हें अब मुस्कुराना आ गया है। हमारी क्या, कभी सरसे न सरसे
तुम्हारी क्या, कभी तरसे न तरसे
पपीहे ने उठा ली रात सिर पर
पराए मेघ थे, बरसे न बरसे
अधूरे नीड़ के तिनके गिनो मत
तुम्हें बिजली गिराना आ गया है।
मैं गुनगुना रहा हूं, गीत मेरा नहीं। और अब तुम्हें भी गुनगुनाना आ गया है सहजानंद। गुनगुनाओ! मगर भूल कर भी कभी मत सोचना कि गीत तुम्हारा है। जैसे ही सोचा कि गीत तुम्हारा है कि द्वार बंद हो जाते हैं। जैसे ही सोचा, गीत मेरा है, बांसुरी अवरुद्ध हो जाती है।
गगन दिन-रात उल्कापात करतासितारों में कमी आती नहीं है
गिरते ही रहते उल्कापात, लेकिन सितारों में कोई कमी नहीं आती। परमात्मा बरसता ही रहा है--बुद्ध से, महावीर से, कृष्ण से, कबीर से, जीसस से, मुहम्मद से। कुछ कमी नहीं आई। सदियों में बरसा है, सदियों तक बरसता रहेगा। तुम पीओ! इसकी चिंता में तुम क्यों पड़ो कि मैं जो आनंद बांट रहा हूं,
जो अमृत बांट रहा हूं, वह कभी चुक तो न जाएगा! तुम्हें डर लग रहा होगा कि कभी चुक न जाए। तुम पीओ! तुम पीने में कंजूसी न करो! उस देने वाले के हाथ हजार हैं। तुम भी हजार हाथों से अपनी झोली फैलाओ।
तिमिर से ऊब कर आंखें न मीचोतुम्हें दीपक जलाना आ गया है।
और सहजानंद, अब घड़ी आ गई कि तुम भी दीया जलाओ। और तुम भी गाओ, तुम भी खंजड़ी बजाओ। जो मैं तुम्हें दे रहा हूं, वह मेरा नहीं है। जो मैं तुम्हें

दे रहा हूं, उसे तुम भी देना सीखो। क्योंकि जितना तुम बांटोगे, तुम चकित हो जाओगे--बांटते हो, बढ़ता है; रोकते हो, घटता है।
सपन किस नयन के टूटे नहीं हैंकिसी के मीत कब छूटे नहीं हैंअमृत के नाम
पर विष पी गया हूंअधर मेरे हुए जूठे नहीं हैं।
और चिंता न लो। मुझे गालियां पड़ें, लोग जहर देते रहें, कुछ फर्क नहीं पड़ता। मेरे ओंठ भी उससे जूठे नहीं होते हैं। विष को भी अगर तुम आनंद-भाव से पी लो, तो अमृत हो जाता है। और गालियों को भी प्रेम से स्वीकार कर लो, तो गीत बन जाती हैं। कांटों को भी अंगीकार करने का ढंग है, कला है। और तब कांटे भी बदल जाते हैं, फूल हो जाते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो फूलों को कांटे बना लेते हैं; और ऐसे भी लोग हैं जो कांटों को फूल बना लेते हैं। सब तुम पर निर्भर है।
जीवन को एक कला समझो। और कला की कुंजी यही हैः रातों को दिन बनाओ; अंधेरों में दीये जलाओ; शोरगुल में भी संगीत खोजो। और तब तुम मिट्टी भी छुओगे, तो सोना हो जाएगी। और जहर तुम्हारे पास जैसे-जैसे आएगा, वैसे-वैसे अमृत होने लगेगा। तुम्हारे भीतर पहुंचते-पहुंचते अमृत हो जाएगा।
इस परम कीमिया को ही मैं समाधि कहता हूं। और इस परम कीमिया को सीखने
के लिए ही तुम यहां इकट्ठे हुए हो। बिना सीखे विदा नहीं हो जाना।
आज इतना ही।

मृत्योर्मा अमृतं गमय
दसवां प्रवचन

सद्गुरु की पुकार

पहला प्रश्नः मैं चकित हूं यह देख कर कि आपके तीर्थ में किस भांति देश-देश से दूर-दूर की यात्राएं करके लोग आ रहे हैं। और आप हैं कि कभी अपने कक्ष से भी बाहर नहीं जाते! यह चमत्कार क्या है? समझावें।

प्रेम कीर्ति! चमत्कार इसमें जरा भी नहीं। एस धम्मो सनंतनो! ऐसा ही सनातन नियम है। दीया जलेगा, तो परवाने दूर-दूर से खोजते चले आएंगे। दीये को उन्हें ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ता। दीया अपनी जगह होता है; परवाने आते हैं। और परवाने मिटने आते हैं, दीये के साथ जल कर एक हो जाने आते हैं!
शिष्य अपनी मृत्यु खोज रहा है। अपनी मृत्यु अर्थात अहंकार की मृत्यु। शिष्य बोझिल है अपने होने से। बहुत ढो चुका भार। खींच चुका हिमालय को बहुत अपने सिर पर। निर्भार होना चाहता है। कोई चरण चाहता है, जहां अपना सारा भार उतार कर रख सके। कोई सान्निध्य चाहता है, जहां बोध जगे, होश जगे, कि अब तक जो कांटे बोए हैं, आगे उनका बोना बंद हो जाए। क्योंकि जो हम बोते हैं, वही हम काटते हैं। कांटे बोते हैं, कांटे काटते हैं। बोते तो कांटे हैं, आशा करते हैं फूलों की। इससे निराशा हाथ लगती है।
शिष्य खोज रहा है कोई स्थल, कोई विद्यापीठ, कोई सत्संग--जहां फूलों के बीज कैसे बोए जाएं, फूल कैसे उगाए जाएं--इसकी कला सीख सके। और इस कला का पहला कदम है--अपने को मिटा देना, अपने को समर्पित कर देना। समर्पण से बड़ा सौभाग्य इस जगत में दूसरा नहीं है।
प्रत्येक व्यक्ति समर्पण को खोज रहा है--जाने-अनजाने, गलत-सही। जब तुम प्रेम के लिए आतुर होते हो, तो तुम समर्पण के लिए आतुर हो। लेकिन प्रेम तृप्ति नहीं देगा। क्योंकि समान चेतना की अवस्था वाले दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति वस्तुतः समर्पित नहीं हो सकते हैं। बुझे दीये के सामने पतिंगा समर्पित भी हो, तो कैसे हो? वह ज्योति ही नहीं है, जिसमें डूबा जा सके, मिटा जा सके, लीन हुआ जा सके।
बुझे लोग तो बहुत मिलते हैं, तुम अपना प्रेम भी उन पर ढालते हो। पर हाथ कुछ लगता नहीं। लग सकता नहीं। तुम भी बुझे, वे भी बुझे। जहां एक बुझा दीया था, वहां दो बुझे दीये हो जाते हैं। इसलिए प्रेम विषाद लाता है। यद्यपि प्रेम की तलाश समर्पण की थी, लेकिन जल्दी ही प्रेम समर्पण की जगह एक-दूसरे पर मालकियत करने की दौड़ में परिणत हो जाता है।
बुझा दीया तुम्हें मिटा तो सकता नहीं। बुझे दीये के साथ करोगे क्या? बुझा दीया तुम पर मालकियत करने की कोशिश करेगा। क्योंकि बुझा दीया यानी अहंकार से भरा हुआ व्यक्ति। और अहंकार की एक ही चेष्टा है--दूसरे के ऊपर मालिक हो जाना। अहंकार दावेदार है, परिग्रही है, परिग्रह से ही जीता है। दूसरे पर जितना दावा हो उतना ही अहंकार परिपुष्ट होता है। चले थे समर्पण को, बात उलटी ही हो गई। करने लगे संघर्ष।
इसलिए जो प्रेम बड़ी सुखद कल्पनाओं और आशाओं में शुरू होते हैं, वे बड़े दुखद नरकों में परिणत हो जाते हैं। परंतु फिर भी प्रेम में खोज तो समर्पण की ही थी। दिशा गलत थी, बात और। लेकिन आकांक्षा सही थी। रेत से तेल निचोड़ना चाहा था। तेल निचोड़ना चाहा था, वह आकांक्षा तो ठीक थी। पर रेत से तेल निचोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए असफलता हाथ लगेगी। जीवन एक लंबी विफलता और व्यथा की कहानी हो जाएगा। मरते समय तुम पाओगेः खाली हाथ आए थे, और भी खाली हाथ जाते हो।
जिनका प्रेम सब जगह से असफल हो चुका है, वे ही सदगुरु के पास आकर सफल
हो पाते हैं। जिन्होंने प्रेम को बहुत-बहुत रूपों में देखा, परखा और उसकी पीड़ा झेली है, वे ही सदगुरु के प्रेम में गिर पाते हैं। वह प्रेम की अंतिम पराकाष्ठा है। उसके पार फिर प्रेम निराकार हो जाता है। सदगुरु तक प्रेम में आकार होता है। सदगुरु से प्रवेश हुआ कि प्रेम निराकार हुआ। परवाना

जलती हुई शमा पर गिरा कि निराकार हुआ। और जैसे शमा की ज्योति भागी जा रही है आकाश की तरफ, परवाना मिटा कि उसके लिए भी आकाश के द्वार खुले।
तुम जरा शमा तो जलाओ! और देखो दूर-दूर से पतिंगे आने शुरू हो जाते हैं। इसमें चमत्कार कुछ भी नहीं है। मनुष्य सदा से तलाश में है। सत्य की किसको अभीप्सा नहीं है?
मैं यहां बैठ कर मौन पुकार दे रहा हूं। वह मौन पुकार सुनी जाएगी दूर-दूर तक। जहां भी हृदय प्रेम के लिए लालायित है, वहीं हृदय-तंत्री बज उठेगी। समय और स्थान इस पुकार में व्यवधान नहीं बनते हैं। प्रेम समय और स्थान के अतीत है। वहां दूरियां मिट जाती हैं। वहां कोई दूरी नहीं होती। इसलिए ऊपर से लगता है कि इस तीर्थ में देश-देश से, दूर-दूर से यात्राएं करके लोग आ रहे हैं। वे आ रहे हैं इसीलिए कि उन्होंने कुछ अपने हृदय में होते देखा है, और अब हृदय कोई दूरी नहीं मानता। हृदय ने कभी दूरी मानी नहीं। दूरी तो नाप-जोख है मस्तिष्क का। और हृदय तो सात समुंदर लांघ सकता है, क्योंकि हृदय दुस्साहस करना जानता है।
बुद्धि तो कायर है; डरती है, झिझकती है; नाव की जंजीर को किनारे से जोर
से बांध लेती है, कि कहीं नाव जाने-अनजाने छूट न जाए। सागर में तूफान है। और सागर में सदा तूफान है--कभी कम, कभी ज्यादा। और नौका तो छोटी है और सागर बहुत बड़ा है। और दूसरा किनारा दिखाई भी नहीं पड़ता है।
लेकिन कभी-कभी न दिखाई पड़ने वाले उस किनारे की आवाज सुनाई पड़ती है। न दिखाई पड़ने वाले उस किनारे की भी झलक अंतस्तल में उतरने लगती है। न दिखाई पड़ने वाले उस किनारे का सौंदर्य भी कभी दुर्निवार पुकारने लगता है।
फिर जाना ही होता है। फिर जाना ही पड़ेगा। फिर एक अनिवार्यता है, जिसे टाला नहीं जा सकता, कल के लिए स्थगित नहीं किया जा सकता। नाव अभी खेनी होगी; नाव अभी छोड़नी होगी; नाव अभी खोलनी होगी। फिर रात का अंधकार हो, कि झंझावात उठे हों, कि मिट जाने और डूब जाने का खतरा हो, लेकिन रुका नहीं जा सकता। और जो इतने साहस से उस दूसरे किनारे की तलाश में चलता है, उसके लिए मझधार भी किनारा है। वह मझधार में डूब भी जाए, तो भी पहुंच गया।
जो किनारों से बंधे हैं, किनारों पर ही डूब जाते हैं। उनकी कायरता उन्हें मार डालती है। कहावत है नः वीर पुरुष एक बार ही मरता, कायर हजार बार। किस मरण की बात हो रही है? समर्पण से जो मरण घटित होता है, उसी मरण की बात है।
नहीं, चमत्कार कुछ भी नहीं है। ऐसा ही सदा होता रहा; ऐसा ही सदा होता रहेगा। जिनकी तलाश है, दूर से आ जाएंगे। और जिनकी तलाश नहीं है, पास भी होंगे और उनके होने से कुछ भी न होगा।
एक महिला ने चार-छह दिन पहले ही पत्र लिख कर पूछा कि मैं यहां रहूं कि अपने देश वापस जाऊं? क्या आप मुझे दूर मेरे देश में भी इतने ही उपलब्ध होंगे, जितने यहां?
मैंने उसे उत्तर दिया कि हां, उतना ही, जितना यहां।
लोग तो अपना-अपना अर्थ लेते हैं। मेरा अर्थ कुछ और था। उसने कुछ और अर्थ लिया। वह मैं जानता था कि वह यही अर्थ लेगी। मेरा अर्थ था कि न तो तू मुझे यहां उपलब्ध है, न तू मुझे वहां उपलब्ध होगी। मेरा मतलब थाः जितनी तू मुझे यहां उपलब्ध है, उतनी ही वहां उपलब्ध होगी। मजे से जा। यहां रहना व्यर्थ, अकारण है।
वह समझी कि अरे, तो मैं बड़ी धन्यभागी हूं कि जितने मुझे यहां उपलब्ध हैं, उतने ही वहां मुझे उपलब्ध होंगे!
कल वह महिला ऊर्जा-दर्शन के लिए आई थी। हजारों लोग ऊर्जा-दर्शन में आए हैं, मगर इतना बंद और किसी को मैंने नहीं पाया। इतना दूर! उसके सिर पर हाथ रखे हूं और फासला ऐसा कि हजारों कोस का! हाथ उसके सिर को छू रहा है, लेकिन उसका हृदय अछूता है। मैं उस पर बरस रहा हूं, लेकिन उसका पात्र उलटा है। लेने में भी उसे कंजूसी है!
लोग देने में तो कंजूसी करते ही हैं, फिर कंजूसी उनका अभ्यास हो जाती है। फिर वे लेने में भी कंजूस हो जाते हैं। फिर वे लेने में भी डरते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि अभी लेना पड़े और फिर कल देना पड़े। इसलिए उचित है कि लें ही न। कहीं देने की झंझट न आ जाए!

तुमने कंजूस देखे हैं, जो देने में डरते हैं। मैं ऐसे कंजूसों को जानता हूं, जो लेने में डरते हैं। और यह अंतर-जीवन की संपदा ऐसी है कि लेने के लिए भी साहस चाहिए। क्योंकि इसे लेने का मतलब मिटना है, इसे लेने का मतलब मरना है।
परवाने को ज्योति उपलब्ध हो सकती है। परमात्मा उसके लिए ज्योति के रूप में प्रकट हुआ है। लेकिन ज्योति के साथ उसे एक होना पड़ेगा, जलना होगा। ज्योति तो जल रही है। जैसी ज्योति जल रही है, इसी भांति उसे भी जलना होगा, तब दोनों में तालमेल बैठेगा।
दूर और पास की बात नहीं, भूगोल की बात नहीं।
वह महिला निश्चिंत जा रही है कि मैं उसे उतना ही उपलब्ध रहूंगा जितना यहां! और मैंने जो कहा है वह झूठ नहीं कहा, उतना ही उपलब्ध रहूंगा जितना यहां। मैं तो उपलब्ध हूं यहां भी। लेकिन लेने की उसकी तैयारी नहीं है, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठी है। तो वहां तो और भी कस कर बंद कर लेगी। जब यहां नहीं खुल पा रही, तो वहां कैसे खुलेगी?
गहरे अंधियारे को चीरती
आई कीर की पुकार
पहले कुछ मद्धिम,
फिर दुर्निवार!
तम में अतल तक डूबी हुई डालों पर
सोए अनगिनती खग
उस उद्दाम स्वर से ही अनुप्रेरित हो डोल उठे!
उत्तर में जाग कर बोल उठे!!
गूंज उठा आसमान गीतों के प्रभात में। तू भी ओ मेरे अप्रस्तुत मन!
टेर दे!
घुटते तिमिर को स्वरों से बिखेर दे!!
अभी, पल झपते ही
मौन अंधियारे से
तेरे अनगिनती अपरिचित सह-भोगी
प्रतिध्वनि उठाएंगे!
गाएंगे!!
सुबह होती है। सूरज एक-एक पक्षी को जाकर जगाता तो नहीं। सुबह होती है। सूरज एक-एक वृक्ष को झकझोरता तो नहीं कि जागो, सुबह हुई; कि छोड़ो स्वप्न, दिन आया। इधर सूरज उगता है और अनिवार्यरूपेण वृक्ष जाग जाते हैं। पक्षियों के कंठ रात भर के विश्राम के बाद नये-नये गीतों, नयी-नयी ध्वनियों, नये-नये संगीतों में फूट उठते हैं। सूरज कुछ कहता नहीं, मगर यह घटना घट जाती है। यह चुपचाप घट जाती है। सूरज की पुकार किसी परोक्ष मार्ग से वृक्षों को जगा जाती है। फूल खिलने लगते हैं; कलियां पंखुरियां खोल देती हैं; सुवास उड़ने लगती है। पक्षी न मालूम कैसे सुराग पा जाते हैं कि सूरज जाग गया!
आदमी भर ऐसा है कि जिसको सुराग नहीं मिलता। उसे अलार्म लगाना पड़ता है,
तब जागे। और अक्सर तो ऐसा होता है कि खुद ही अलार्म को बंद कर देता है, करवट लेकर फिर सो जाता है।
सिर्फ आदमी कुछ निसर्ग से टूट गया है। अन्यथा किसी बुद्धपुरुष का जन्म अनिवार्यरूपेण पृथ्वी पर उन सबको खींच लाएगा, जिनके भीतर थोड़ी भी प्राण-ऊर्जा है; जिनके भीतर थोड़ा भी अंगार है; जो वस्तुतः जीवित हैं, मुर्दे नहीं हैं, लाशें नहीं हैं; जो अपने को ढो नहीं रहे हैं, जिनके जीवन में जरा भी जिज्ञासा है, मुमुक्षा है, खोज है। वे कहीं भी हों, दूर गुफाओं में छिपे हों, कुछ फर्क न पड़ेगा। बुद्धत्व का जन्म चेतना के जगत में सूर्योदय है। इसलिए जो वस्तुतः चेतन हैं, वे गुनगुना उठेंगे।
गहरे अंधियारे को चीरती
आई कीर की पुकार
पहले कुछ मद्धिम,

फिर दुर्निवार!
पहले धीमी-धीमी सुनाई पड़ेगी।
पहले कुछ मद्धिम,
फिर दुर्निवार!
फिर तुम बच न सकोगे। काम में रहोगे, व्यवसाय में रहोगे, उठते-बैठते, सोते-जागते, कोई अदृश्य किरण तुम्हें खींचने लगेगी--दुर्निवार! बचने का उपाय नहीं। और आवाज बढ़ती चली जाएगी। और आवाज गहन होती चली जाएगी। और आवाज उस घड़ी पर तुम्हें ले आएगी, जहां यात्रा पर निकलना ही होगा।
तम में अतल तक डूबी हुई डालों पर
सोए अनगिनती खग
उस उद्दाम स्वर से ही अनुप्रेरित हो
डोल उठे!
उत्तर में जाग कर बोल उठे!!
गूंज उठा आसमान गीतों के प्रभात में।
यह सहज नियम है। सोए पक्षी जाग उठेंगे। उत्तर में गीत गा उठेंगे। धन्यभागी हैं--सूरज फिर ऊगा है। फिर फूल खिले। फिर दर्शन हुआ है प्रकाश का। गाएं न तो क्या करें! गुनगुनाएं न तो क्या करें! नाचें न तो क्या करें! और धन्यवाद कैसे दें?
सुबह गाते हुए पक्षी प्रार्थना में लीन हैं। सुबह गाते पक्षी स्तुति में डूबे हैं। ये जो वृक्षों में सुबह-सुबह फूल खिल आए हैं, ये उनकी मौन अभिव्यक्तियां हैं--कृतज्ञता की।
तू भी ओ मेरे अप्रस्तुत मन!
टेर दे!
घुटते तिमिर को स्वरों से बिखेर दे!!
अभी, पल झपते ही
मौन अंधियारे से
तेरे अनगिनती अपरिचित सह-भोगी
प्रतिध्वनि उठाएंगे!
गाएंगे!!
मैं अपने कक्ष में बैठा और क्या कर रहा हूं? टेर दे रहा हूं। घुटते तिमिर में स्वरों को बिखेर रहा हूं। क्योंकि भरोसा हैः
अभी, पल झपते ही
मौन अंधियारे से
तेरे अनगिनती अपरिचित सह-भोगी
प्रतिध्वनि उठाएंगे!
गाएंगे!!
और जिन्हें सुनाई पड़ना शुरू हो गया है, वे आने लगे। और बहुत आने को हैं। असंख्य लोग आने को हैं। ये तो वसंत के अभी पहले-पहले फूल हैं। लेकिन कहते हैं, वसंत का पहला फूल भी खिल जाए, तो वसंत आ गया। फिर पंक्तिबद्ध फूल खिलेंगे, फिर असंख्य फूल खिलेंगे। फिर गिनती करने का कोई उपाय न रह जाएगा। ये जो छोटी सी शिखाएं अभी जली हैं, ये जो गैरिक लपटें छोटी सी संख्या में आज यहां इकट्ठी हैं, इन लपटों से और लपटें पैदा होंगी। दीयों से और दीये जलेंगे। यह गैरिक अग्नि सारी पृथ्वी को घेर लेगी।
और चमत्कार कुछ भी नहीं। इसमें कुछ जादू नहीं है। जो होना है, जैसा होना है, वैसा ही हो रहा है। इस जगत में कुछ भी अपवाद नहीं होते। इसलिए चमत्कार होते ही नहीं। जगत में तो नियम है। उस नियम का नाम ही परमात्मा है। नियम कहो--अगर गणित की भाषा का उपयोग करना है। परमात्मा कहो--अगर भाव की भाषा का उपयोग करना है। मगर दोनों से इंगित एक ही की तरफ है।
अभी शमा की मुस्कानों का चुका सका तू मोल कहांछूट, छूट कर आ, आकर इन लपटों को अपनाता जाज्योति बने या धुआं, परख होगी स्नेह की यह अंतिममिटने से पहले तू अपना सच्चा रूप दिखाता जा
आ, आ, आ मेरे परवाने! लौ की लहरों पर लुट जाने। आ, आ, आ मेरे परवाने! लौ
की लहरों पर लुट जाने!

पुकार दे दी गई है। पुकार मौन है। अपने कक्ष में बैठा अकेला पुकार दे रहा हूं। नहीं कान सुनेंगे उसे, लेकिन जहां भी हृदय जीवंत होंगे, वहां टंकार होगी।
प्यार से सींचूं तुझे ओ बीज मेरे!
एक दिन तू ही बनेगा फूल
एक दिन गुण-गान गाएंगे सभी ये भ्रमर तेरे
आ जुटेंगे सभी तेरे कूल
इसलिए आयास
क्योंकि होगा व्यक्त तू ही हास, मधुर विकास में! इसलिए आयास
क्योंकि आलिंगन बनेगा एक दिन तू ही अनिल के पाश में! देख मत तूः आज तेरी सेज मृण्मय है
देख मत तूः भ्रमर-दल किस ओर तन्मय है
सोच मत तूः तुझे आता है न वैसा हास
ध्यान करः तेरी अभी कितनी नवल वय है!
सतत चेष्टा,
सतत मुक्ति-प्रयास, चिर-उद्योग
--फूटने का, बिकसने का पर्व--यह संयोग!
हास, फुल्लोल्लास--पाएगा सभी, तू समय आने दे
आज मिट्टी में तुझे मुझको बिछाने दे
जल बहाने दे!
बीज तू, तू मूल-भव! तू ही अरे! है वह्नि-चिह्ना क्रांति
सुप्त तू, तुझमें प्रसुप्ता अनुगता भू-कांति!
यह जो गैरिक संन्यासियों का, दीवानों का एक दल यहां इकट्ठा होता जा रहा है, यह एक बहुत बड़ी आने वाली क्रांति का प्राथमिक चरण है। जैसे सूरज उगने के पहले प्राची लाली से भर जाए; पूर्व का क्षितिज सुर्ख हो उठे; लक्षण है कि सूरज आता है, आता है, आता ही होगा। ऐसे ही मेरा संन्यासी मनुष्य की चेतना में एक नयी क्रांति का पहला स्वर है--पहला फूल है वसंत का।
लेकिन फूल बनने के पहले गर्भ की पीड़ा से गुजरना जरूरी है।
प्यार से सींचूं तुझे ओ बीज मेरे!
तुम्हें जब मैं संन्यास देता हूं, तो यही कह रहा हूं।
प्यार से सींचूं तुझे ओ बीज मेरे!
एक दिन तू ही बनेगा फूल
एक दिन गुण-गान गाएंगे सभी ये भ्रमर तेरे
आ जुटेंगे सभी तेरे कूल
इसलिए आयास
क्योंकि होगा व्यक्त तू ही हास, मधुर विकास में!
इसलिए आयास
क्योंकि आलिंगन बनेगा एक दिन तू ही अनिल के पाश में!
लेकिन बीज को जब कोई कहता है कि प्यार से सींचूं तुझे ओ बीज मेरे! बीज घबड़ाता है। क्योंकि प्यार से कितना ही सींचो, बीज मरेगा। बीज मरेगा तो अंकुरित होगा। संन्यासी को मरना है, ताकि उसका पुनरुज्जीवन हो सके। संन्यासी को द्विज बनना है--दूसरा जन्म! लेकिन दूसरा जन्म तभी हो सकता है, जब पहले की मृत्यु हो जाए।
देख मत तूः आज तेरी सेज मृण्मय है
और मिट्टी में डालना होगा बीज को। और कौन चाहता है कि मिट्टी में डाला जाए! मिट्टी में तो कब्र बनती है। लेकिन बिना कब्र बने फूल नहीं खिलते। देख मत तूः आज तेरी सेज मृण्मय है
देख मत तूः भ्रमर-दल किस ओर तन्मय है
आज भंवरे कहीं और गा रहे। बीज को थोड़ी ईर्ष्या भी होती होगी। भंवरे फूलों पर गा रहे हैं। भंवरों ने फूलों के पास रास रचाया है।
देख मत तूः भ्रमर-दल किस ओर तन्मय है
देख मत तूः आज तेरी सेज मृण्मय है
सोच मत तूः तुझे आता है न वैसा हास

ध्यान करः तेरी अभी कितनी नवल वय है!
बीज, तू नया-नया है। आज तुझे हंसना भी नहीं आता। बीज हंसे कैसे! कभी बीज को हंसते देखा? हंसते हैं फूल। यद्यपि फूल बीज में ही छिपे हैं। बीज संभावना है, फूल सत्य हो गए।
जब तुम मेरे पास आते हो, एक संभावना की तरह आते हो। इस संभावनाओं से भरे हुए तुम्हारे जीवन को तुम पहचान भी नहीं सकते आज कि क्या है! क्योंकि संभावना दिखाई नहीं पड़ती। हाथ में पकड़ में नहीं आती। न स्पर्श कर सकते हो उसका, न उसकी कोई स्पष्ट रूप-रेखा बनती है। तुम्हें भरोसा दिलाना होता है कि खिलोगे, जरूर खिलोगे! मत करो फिक्र। आज जो मिट्टी की सेज तुम्हें दी जा रही है, वही तुम्हें आकाश में उठने का कारण बनेगी। वही मिट्टी तुम्हें आकाश में उठाएगी। हवाओं में नचाएगी। चांद-तारों से गुफ्तगू कराएगी। और आज तो मिटना है, मृत्यु है जो, कल वही महाजीवन होगा। और ये ही भंवरे जो आज किन्हीं और फूलों के पास नाच रहे हैं, कल तुम्हारे पास भी नाचेंगे। ये कल गुनगुन तुम्हारे पास भी करेंगे। तुम्हारी सुगंध फूटने दो।
कठिन है प्रक्रिया मृत्यु की। अहंकार को गलाना बहुत मुश्किल है। इसलिए थोड़े से ही लोग संन्यास का साहस कर पाते हैं।
सतत चेष्टा,
सतत मुक्ति-प्रयास, चिर उद्योग
--फूटने का, बिकसने का पर्व--यह संयोग!
मैं यहां हूं, तुम यहां हो!
--फूटने का, बिकसने का पर्व--यह संयोग!
मरने, नये जीवन को पाने का यह संयोग! यह महापर्व! इधर तुम्हें सूली भी दूंगा, उधर तुम्हारा पुनरुज्जीवन होगा।
हास, फुल्लोल्लास--पाएगा सभी, तू समय आने दे
आज मिट्टी में तुझे मुझको बिछाने दे
जल बहाने दे!
बीज तू, तू मूल-भव! तू ही अरे! है वह्नि-चिह्ना क्रांति
सुप्त तू, तुझमें प्रसुप्ता अनुगता भू-कांति!
पृथ्वी के दूर-दूर देशों से आए हुए ये लोग, आने वाली पूरी पृथ्वी पर क्रांति के पहले प्रतीक हैं। यह छोटी घटना नहीं है। आज तो तुम इसे देखोगे, तो छोटी ही घटना है। बीज तो छोटा ही होता है। जब वृक्ष बनेगा और बादलों को छुएगा, तब तुम पहचान पाओगे, कितनी क्षमता छिपी थी एक बीज में! वैज्ञानिक कहते हैं, वनस्पति-शास्त्री कहते हैं कि एक बीज पूरी पृथ्वी को हरियाली से भर सकता है। क्योंकि एक बीज में वृक्ष, फिर एक वृक्ष में अनंत बीज, फिर एक-एक बीज में अनंत बीज। एक बीज सारी पृथ्वी को हरा कर सकता है। और एक संन्यासी सारी पृथ्वी को गैरिक कर सकता है। एक बुद्ध सारी पृथ्वी को बुद्धत्व की ओर अनुप्राणित कर सकता है।
न कहीं जाना है, न कहीं जाने का कोई सवाल है। जिन्हें आना है, वे प्यासे तलाश करते कुएं की अपने आप चले आएंगे। और उन्होंने आना शुरू कर दिया है।
अभागे चूकेंगे। और अभागे, हो सकता है, पड़ोस में रह कर चूक जाएं। और लोग ऐसी छोटी-छोटी चीजों से चूकते हैं कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। परसों एक बहुत बड़ा सरकारी अधिकारी, जो रिटायर हुआ, आश्रम आया। उसने आकर लक्ष्मी को बताया कि मुझे क्षमा करो। मैं सात वर्षों से भगवान को इस तरह घृणा करता हूं कि जिस तरह किसी ने भी न की होगी! और कारण बताते हुए मुझे लज्जा होती है। लेकिन आज कह दूंगा तो मन हलका हो जाएगा। आज आकर सात साल की घृणा प्रेम में परिवर्तित हो गई है। और इसलिए कहना जरूरी है।
और तुम चकित होओगे, घृणा का कारण क्या था! घृणा का कारण था एक बहुत छोटा, जिससे मेरा कोई संबंध नहीं है। वह व्यक्ति किताबों का प्रेमी है। किताबों के कीड़े होते हैं, उन व्यक्तियों में एक। बंबई की जिस किताब की दुकान पर वह जाए, जो भी अच्छी किताबें उसे पसंद आएं, दुकानदार कहेः छूना मत। वे किताबें भगवान के लिए हैं! इससे उसे बड़ी घृणा पैदा हुई, कि जो किताब मैं खरीदना चाहता हूं... । वे किताबें मेरी आर्डर दी हुई किताबें हैं। वह दुकानदार उनको बेच नहीं सकता। वह सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा है कि और

किताबें आ जाएं तो मुझे पहुंचा दे। मगर इस व्यक्ति को बड़े आघात, बड़ी चोट पहुंची।
न कभी आया, न कभी मुझे सुना, न कभी मेरी किताब पढ़ी। किताबों का दीवाना है, लेकिन मेरी कोई किताब कभी नहीं पढ़ी! एक दुश्मनी पैदा हो गई कि जो किताब मुझे चाहिए, वही किताब खरीदी जा चुकी है पहले! और यह एक ही आदमी! एक ईर्ष्या, एक जलन। मुझसे कभी मिलना नहीं, मुझसे कोई संबंध नहीं।
आया तो रोया। आया तो क्षमा मांगी। आया तो समझा कि कैसी मूढ़ता कर रहा था।
अजीब-अजीब लोग हैं। मैं जबलपुर था। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मेरे पति आपकी हर बात से राजी हैं। सिर्फ आपके कुर्ते की जो बांह है, वह बहुत ढीली है, उससे उन्हें नाराजगी है! वे आपके कुर्ते की बांह को बरदाश्त नहीं कर सकते।
तब से, तुम देखते हो, मैंने बांह कुर्ते की छोटी कर ली। मगर वे अभी तक नहीं आए! आज दस साल हो गए। उनकी पत्नी को मैंने खबर भिजवा दी है कि कुर्ते की बांह छोटी कर ली है। तुम्हारे पति की प्रतीक्षा कर रहा हूं!
लोग बहुत बेबूझ हैं। दूसरों के लिए नहीं, खुद के लिए ही बेबूझ हैं। उनकी खुद की ही समझ के बाहर है, वे क्या कर रहे हैं। अब मेरी कुर्ते की बांह ढीली है या नहीं है, इससे क्या लेना-देना है! लेकिन नहीं, उससे उन्हें अड़चन हो गई। और उन्होंने जरूर कोई भीतर कारण खोज लिए होंगे। वकील हैं। हाईकोर्ट के वकील हैं। कई तर्क खोज लिए होंगे कि इतनी ढीली बांह! यह दिखावा है, प्रदर्शन है! और सत्य को उपलब्ध व्यक्ति कहीं प्रदर्शन करेगा? और ये तो साधारण लोगों की बातें हैं। नरेंद्र ने एक प्रश्न पूछा हैः
कि रामकृष्ण की अंतिम घड़ी है; मरण का क्षण आ गया है। रामकृष्ण के गले में कैंसर हो गया था; बोलना मुश्किल हो गया था। जैसे रमण को हुआ, वैसे ही रामकृष्ण को हुआ था। भोजन बंद हुआ था। पानी भी नहीं पी सकते थे। मृत्यु अब आई, तब आई। सारे शिष्य इकट्ठे हैं--दुख में, पीड़ा में, गहन संताप में डूबे। विवेकानंद रामकृष्ण की खाट के पास ही बैठे हैं। और तुम चकित होओगे कि विवेकानंद के मन में क्या प्रश्न उठा! कि यह आदमी सच में भगवान है या नहीं? पहली तो बात यह कि भगवान को कैंसर! अगर भगवान है, तो अपना कैंसर दूर नहीं कर सकता? और जो अपना कैंसर दूर नहीं कर सकता, वह क्या दुनिया को मुक्ति देगा! मगर फिर भी मैं मान लूंगा कि भगवान है, क्योंकि इन्होंने मुझसे कहा था कि मैं भगवान का अवतार हूं। अगर अब जब कि कंठ से वाणी नहीं निकलती, जब कि शब्द बोलना असंभव हो गया है, जब कि कंठ बिल्कुल अवरुद्ध हो गया है, अगर अब, अभी ये फिर कह सकें कि हां, मैं भगवान हूं, तो मान लूंगा!
रामकृष्ण आंखें बंद किए थे। आंखें खोल दीं। बामुश्किल हाथ टेक कर उठ
कर बैठ गए और कहा कि हां, जो राम था, वह मैं ही हूं। और जो कृष्ण था, वह मैं ही हूं। मैं रामकृष्ण हूं। मैं दोनों हूं। तुझे कुछ और पूछना है? विवेकानंद ने पूछा नहीं था। वे तो सिर्फ मन में ही सोच रहे थे। पछताए होंगे बहुत बाद में कि मरते क्षण भी मैं क्या सोचता रहा! और यही कह कर रामकृष्ण का अवसान हो गया।
विवेकानंद जैसा व्यक्ति भी--साधारण लोगों को तो छोड़ दो--विवेकानंद जैसा व्यक्ति भी अपने गुरु की अंतिम घड़ी में इस तरह के बेहूदे सवालों से भरा हो सकता है। और अगर रामकृष्ण ने यह न कहा होता, तो शायद विवेकानंद का संदेह प्रगाढ़ हो गया होता। और क्या तुम सोचते हो, इतना ही कह देने से संदेह मिट गया होगा? किताबें कुछ कहती नहीं। लेकिन मैं नहीं मान सकता कि इतने ही कहने से संदेह मिट गया होगा। सोचा होगा, शायद टेलीपैथी जानते हैं, दूसरे का विचार पढ़ लेते हैं। इसमें कौन सी खास बात है! जादूगर कर देते हैं। या सोचा होगा कि जब बोल सकते हैं, तो अब इतना भी क्यों नहीं करते कि कैंसर भी दूर करके दिखा दें!
और ऐसा कोई रामकृष्ण के शिष्य के साथ ही हुआ, ऐसा नहीं है। सदा ऐसा होता रहा है।
जीसस को सूली पर लटकाया जा रहा है। और शिष्य तो भाग गए हैं, सिर्फ एक शिष्य छिपा है भीड़ में। और क्या देखने के लिए छिपा है--कि अब देखें सच में

चमत्कार होता है? जीसस अपने को बचा पाते हैं या नहीं? अगर ये ईश्वर के सच्चे बेटे हैं, तो ईश्वर अपने बेटे को बचाएगा।
जीसस को सूली लग रही है। लेकिन उस आदमी के मन में क्या विचार उठ रहा है?
जीसस परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु, इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये लोग नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं!
यह चमत्कार नहीं है! चमत्कार तो तब होता, जब परमात्मा उतरता स्वर्ण-रथ पर, सूली से उतारता जीसस को, और घोषणा करता भीड़ के सामने कि यह मेरा असली बेटा है, एकमात्र, इकलौता बेटा है। तब चमत्कार होता।
चमत्कार क्या है? तुम चाहते हो, जीवन के नियम टूटें। चमत्कार की अपेक्षा, अगर ठीक से समझो, तो अधार्मिक अपेक्षा है। चौंकना मत मेरी बात से। चमत्कार की अपेक्षा अधार्मिक अपेक्षा है। धार्मिक व्यक्ति तो मानता है कि जीवन नियम है। बुद्ध ने तो धर्म का अर्थ ही नियम किया है। वही उसका अर्थ है भी। वही वेद कहते हैंः धर्म यानी ऋत। धर्म यानी परम नियम, शाश्वत नियम, जिससे जगत चलता है। इस नियम में कभी कोई भेद नहीं आता। निरपेक्ष यह नियम अपनी गति करता है। यह पक्षपात नहीं करता। चमत्कार का तो अर्थ होगा पक्षपात। जो किसी के लिए नहीं किया गया था, वह जीसस के लिए किया जाए--तो चमत्कार।
और तुम सोचते हो कि जो लोग चमत्कारियों के पास इकट्ठे हो जाते हैं, ये धार्मिक हैं? इनकी अपेक्षा ही अधार्मिक है। किसी के हाथ से राख निकल आई; बस चमत्कार हो गया!
एक मित्र ने मुझे लिखा है। वे मेरे भक्त हैं और उनकी पत्नी सत्य साईंबाबा की भक्त है। उन दोनों में सदा विवाद होता रहता है कि कौन सही। वे मानते नहीं कि चमत्कार हो सकते हैं। लेकिन पत्नी के कमरे में जो सत्य साईंबाबा का चित्र लगा है, उसमें से राख झरती है। उनको शक है कि इसमें कुछ धोखाधड़ी है, कि फ्रेम में पहले से ही राख भरी है, कि कुछ और मामला है। डाक्टर हैं। हजार तरकीबें सोचते हैं।
लेकिन एक दिन तो हद हो गई। तब उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि अब बड़ी मुश्किल हो गई। मेरे कमरे में आपका चित्र लगा है, उसमें से भी राख झर रही है! अब चमत्कार न मानूं तो क्या करूं? अब आप मुझे समझाएं!
मैंने उनको खबर की कि जो चमत्कार पत्नी सत्य साईंबाबा की तस्वीर से
कर रही थी, वही पत्नी यह चमत्कार भी कर रही है। पत्नी ने तुम्हें चारों खाने चित्त किया। अक्सर पत्नियां चारों खाने चित्त कर देती हैं पतियों को। यह पत्नी ही है, जिसका हाथ है इस राख के झराने में। मैंने उनको लिखा कि मेरा कोई हाथ नहीं है।
मगर वे मानने को राजी नहीं हैं। वे लिखे ही चले जाते हैं, मैं कैसे मानूं? उन्होंने राख इकट्ठी करके--डाक्टर हैं--कैंब्रिज विश्वविद्यालय भिजवाई है कि उसका परीक्षण होना चाहिए वैज्ञानिक, कि उस राख में क्या है? दोनों राखें भिजवाई हैं।
परीक्षण से कुछ सिद्ध नहीं होगा। इतना ही सिद्ध होगा--दोनों राखें हैं। और दोनों राखों के पीछे एक ही स्त्री का हाथ है। स्त्रियां चमत्कारी होती हैं। और यह कोई पहली घटना नहीं है जो मैं कह रहा हूं। इस तरह की बहुत घटनाएं रोज घटती हैं। और कई बार तो अचेतन रूप से घटती हैं। यह भी मैं नहीं कह रहा हूं कि उनकी स्त्री जान कर धोखा दे रही होगी, यह जरूरी नहीं है। मन बड़ी उलझी बात है।
लंदन में कुछ वर्ष पहले एक घटना पकड़ी गई। एक स्त्री के सारे कपड़े कट जाते थे, जैसे किसी ने कैंची से उठा कर काट दिए। बस कभी-कभी दो-चार-आठ दिन में यह घटना घटती। जिंदगी मुश्किल हो गई। अगर सारे कपड़े कट जाएं--बंद अलमारी के भीतर के कपड़े कट जाएं, बंद सूटकेस के भीतर के कपड़े कट जाएं--तो भूत-प्रेत के सिवाय और क्या इसकी व्याख्या हो सकती है! बहुत झाड़-फूंक वाले बुलाए गए। तंत्र-मंत्र वाले बुलाए गए। कोई सफल नहीं हुआ। और तब एक जासूस ने पति को कहा कि अगर मुझे एक मौका दें... ।
उसने कहा, तुम क्या करोगे? यह कोई जासूसी का काम नहीं है!

उसने कहा, सिर्फ मुझे एक मौका दें। एक सात दिन का समय मुझे दें। और कुंजी मुझे दें घर की। सात दिन मेरा आना-जाना रात, बेवक्त-वक्त, मुझे छोड़ दें पूरा स्वतंत्र। एक मौका!
और कोई उपाय नहीं था। मौका दिया गया। और मामला क्या पाया गया? रात वह स्त्री नींद में उठ कर नींद में ही अपने कपड़े काट डालती थी। सुबह उसे भी होश नहीं रहता था कि उसने स्वयं कपड़े काटे हैं। इसलिए तुम उसे दोषी नहीं ठहरा सकते। जान कर वह नहीं कर रही थी। यह निद्रा में ही किया गया मामला था। सौ में से दस आदमी नींद में काम कर सकते हैं। दस छोटी संख्या नहीं है।
सौ में से दस, दस में से एक। दस में से एक आदमी नींद में चल सकता है, नींद में काम कर सकता है। और ऐसे काम कर सकता है जिनके लिए सुबह उसे खुद भी याद नहीं रहेगी।
न्यूयार्क में एक आदमी अपनी छत से दूसरे की छत पर कूद जाता था। और न्यूयार्क की छत पूना की छत नहीं है। कोई मकान सौ मंजिल, कोई मकान नब्बे मंजिल! अपने मकान की छत से दूसरे मकान की छत पर कूद जाता था--नींद में! दूरी इतनी थी कि बंदर भी कूदने में झिझकते थे। और कोई आदमी कूद सकता है, यह तो किसी को भरोसा ही नहीं आ सकता था। रोज रात! धीरे-धीरे खबर फैलने लगी पड़ोस में। रोज रात सैकड़ों लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाती नीचे। काफी फासला, सौ मंजिल नीचे, भीड़ इकट्ठी है। और लोग बिल्कुल श्वास बंद करके देखते रहते कि कब वह आदमी आए। बारह और एक बजे के बीच में वह आदमी आता अपनी छत पर। बस आता, अपनी छत से दूसरी छत पर कूदता। दूसरी छत पर चक्कर लगाता थोड़ी देर, फिर वापस अपनी छत पर कूदता। कमरे में जाकर सो जाता।
भीड़ बढ़ती गई। एक दिन तो इतनी भीड़ इकट्ठी हो गई कि हजारों लोग! और जब वह आदमी छत पर आया, तो जैसे किसी हीरो को देख कर जनता एकदम ताली पीट दे और शोरगुल मचा दे, वह आदमी छलांग लगाने को था कि लोग एकदम आनंद-उल्लास में जोर से आवाज कर दिए। आवाज से उसकी नींद टूट गई। नींद टूटते ही वह आदमी छलांग नहीं लगा पाया। सौ मंजिल मकान से नीचे गिर गया, मर गया। मार डाला उस आवाज ने। नींद में ही घट सकती थी वह घटना। जागरण में तो वह भी साधारण आदमी था। मैंने उनको लिखा कि तुम जरा अपनी पत्नी की जांच-पड़ताल करो। बच्चे उनके हैं नहीं। घर में दो ही व्यक्ति हैं--पति और पत्नी। पत्नी ही गिरा रही होगी राख साईंबाबा की फोटो से। और अब तुमको हराने के लिए उसने आखिरी उपाय खोजा है। तुम चमत्कार नहीं मानते; अब तो मानोगे! तुम्हारे गुरु की ही फोटो से लो गिर जाती है राख!
और उन्होंने मुझे लिखा कि एक और हैरानी की बात है कि सत्य साईंबाबा की तस्वीर में तो फ्रेम है, तो यह हो भी सकता है शक कि फ्रेम में थोड़ी राख छिपाई गई हो। लेकिन मेरी टेबल पर आपकी जो तस्वीर है, उसमें कोई फ्रेम नहीं है। बिना फ्रेम की तस्वीर, उसमें से राख गिर रही है! अब तो चमत्कार मानना ही होगा।
मैंने उनको कहा कि तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें हराया। सवाल सत्य साईंबाबा को मानने का नहीं है। सवाल चमत्कार को मानने का है।
चमत्कार होते ही नहीं। जीवन अपने नियम से ही चलता है। और अगर कभी तुम्हें लगे कि कोई चमत्कार हो रहा है, तो इतना ही जानना कि तुम्हें पूरे नियम का पता नहीं है। इतना ही जानना कि नियम के और भी पहलू हैं, जो तुमसे अपरिचित हैं, बस। मगर नियम के विपरीत न कुछ कभी हुआ है, न कभी कुछ हो सकता है।
इसलिए प्रेम कीर्ति, यह कोई चमत्कार नहीं है। दीया जला है, परवाने आने शुरू हो गए हैं। माली मौजूद हो गया है, बीज आतुर हुए हैं कि उन्हें भी फूल होने का अवसर मिले। यह एक अपूर्व संयोग है। इस संयोग का उपयोग कर लो।
सतत चेष्टा
सतत मुक्ति-प्रयास, चिर-उद्योग
--फूटने का, बिकसने का पर्व--यह संयोग!

दूसरा प्रश्नः
करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत-जात है, सिल पर परत निशान।।

क्या परमात्मा को पाने के लिए भी किसी अभ्यास की जरूरत होती है? कृपया स्पष्ट करें।

कृष्णतीर्थ भारती! परमात्मा को पाने के लिए तो किसी अभ्यास की कोई जरूरत नहीं होती, लेकिन अहंकार को मिटाने के लिए बहुत अभ्यास की जरूरत होती है। ऐसा समझो कि तुम एक कुआं खोदना चाहते हो। जल पाने के लिए तो किसी अभ्यास की कोई जरूरत नहीं होती। जल की धारा तो सतत भूमि के नीचे बह ही रही है। लेकिन जल की धारा और तुम्हारे बीच में जो मिट्टी और पत्थरों की पर्तें हैं, उनको तोड़ने के लिए अभ्यास की जरूरत होती है।
तुम भी हो, प्यासा भी मौजूद है, और पानी भी मौजूद है, मगर दोनों के बीच मिट्टी की पर्तों की एक लंबी दीवार है। खोदना पड़ेगा। पहले कंकड़-पत्थर हाथ आएंगे, कूड़ा-करकट हाथ आएगा। थक न जाना। हार न जाना। निराश न हो जाना। हताशा न ले लेना। फिर सूखी मिट्टी हाथ आएगी। घबड़ा मत जाना कि ऐसी सूखी मिट्टी में कहां जल के स्रोत होंगे! खोदते जाना। फिर गीली मिट्टी हाथ आएगी। खोदते जाना। फिर जल के झरने फूटने लगेंगे। मगर गंदे होंगे। पीने योग्य नहीं होगा पानी अभी। खोदते जाना। जल्दी ही तुम उस जगह पहुंच जाओगे, जब स्वच्छ झरने उपलब्ध हो जाएंगे।
लेकिन पानी को पाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। इसे याद रखना! प्यास भी थी, पानी भी था। लेकिन दोनों के बीच में व्यवधान था। उस व्यवधान को दूर करने के लिए ध्यान है। उस व्यवधान को दूर करने के लिए प्रार्थना है, पूजा है, अर्चना है। उस व्यवधान को दूर करने के लिए साक्षी का उपाय है, विपस्सना की पद्धति है। जागरूक होने के नियम, विधियां हैं। योग है, तंत्र है, भक्ति है। लेकिन तुमने जो पद उद्धृत किया है, उसके अर्थ गलत हो सकते हैं।
"करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।"
अभ्यास करने से जड़मति सुजान नहीं हो सकता। अभ्यास करने से जड़मति चालाक हो जाएगा, चालबाज हो जाएगा। लेकिन मौलिक जड़ता नहीं टूटेगी। अगर सच में जड़मति था, तो जितना अभ्यास करेगा, उतना ही जड़मति आच्छादित हो जाएगी, सुंदर परिधान पहन लेगी। मगर मूल में कोई अंतर नहीं हो सकता। तुम अगर ईंट को घिसते रहो, घिसते रहो, घिसते रहो, तो भी दर्पण नहीं बनेगा।
इसलिए झेन फकीर रिंझाई जब साधना में लीन था, तो एक दिन उसका गुरु आया-- बीस वर्ष से साधना में लीन था--उसका गुरु आया और उसके सामने ही बैठ कर एक ईंट पत्थर पर घिसने लगा। रिंझाई को बड़ा क्रोध आया। स्वभावतः, कोई और हो तो माफ भी कर दो। यह बूढ़े गुरु को क्या सूझा! मैं ध्यान कर रहा हूं!
अब तुम सोचो थोड़ा। तुम ध्यान कर रहे हो--कृष्णतीर्थ भारती ध्यान कर रहे हों--और मैं एक ईंट लेकर सामने बैठ कर घिसने लगूं। तो वैसे ही तो ध्यान मुश्किल से लगता है। लगता ही कहां! हजार विचार चलते हैं। और सामने कोई ईंट घिसे, तो दांत तक किरकिराने लगेंगे! कसमसी छूटेगी। क्रोध जगेगा।
और गुरु था कि घिसे ही गया। थोड़ी देर तो बरदाश्त किया रिंझाई ने। फिर आंख खोली और कहा कि महानुभाव, आप यह क्या कर रहे हैं? गुरुदेव, यह आपको क्या हुआ बुढ़ापे में! दूसरे अगर आकर शैतानी भी करें और ध्यान में बाधा भी डालें--यह मैं सुनता आया हूं कि शैतान ध्यान में बाधा डालता है। यह मैंने कभी नहीं सुना कि गुरु स्वयं ध्यान में आकर बाधा डालते हैं। अब यह ईंट घिस-घिस कर मुझे ऐसा क्रोध चढ़ा रहे हो कि थोड़ी-बहुत शांति जम रही थी वह भी उखाड़ दी। अब एक ही विचार चल रहा है भीतर कि कब यह दुष्ट ईंट का घिसना बंद करे! और मेरे दांत तक किरकिरा रहे हैं!
गुरु ने कहा, मैं तुझसे एक बात पूछने आया हूं। जैसे गुरु ने ये सब बातें सुनी ही नहीं। मैं तुमसे यह पूछने आया कि अगर ईंट को मैं घिसता रहूं, घिसता रहूं, घिसता रहूं, तो ईंट एक दिन दर्पण बन जाएगी कि नहीं? रिंझाई ने कहा, सुनो! मैं सोचता था आपसे मैं ज्ञान लूं। आपको खुद ही अभी छोटी-मोटी चीजों के ज्ञान की जरूरत है दूसरों से लेने की! ईंट को लाख घिसो, जनम-जनम घिसो, दर्पण न बनेगी। कहां दर्पण, कहां ईंट! गुरु ने कहा, तो फिर मैं चला। तू भी इस सिर को कितना ही घिसता रह, घिसता रह जनम-जनम तक--ध्यान नहीं बनेगा। ध्यान दर्पण है, और खोपड़ी ईंट से भी गई-बीती चीज है। ईंट का तो कुछ काम भी

है, खोपड़ी का कोई काम भी नहीं। ईंट को जोड़ो तो मकान भी बन जाए; खोपड़ी का क्या करोगे?
और कहते हैं, गुरु का यह कहना और ईंट का उठा कर चले जाना--जो बीस साल में नहीं घटा था, उस क्षण में घट गया। रिंझाई दौड़ कर पैरों में गिर पड़ा और कहा, मुझे क्षमा करें। जो मेरे अभ्यास से न हुआ, वह आपके चेताने से हो गया! सदगुरु चेताने की अदभुत विधियां खोजते हैं। शिष्य के योग्य विधि खोजते हैं। जो चोट उसके भीतर जलधार तोड़ देगी, वैसी विधि खोजते हैं।
तुम पूछतेः "करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।"
ऐसा स्कूलों में कहते हैं। शिक्षक-अध्यापक इस तरह की बातें दोहराते हैं कि घिसते रहो ईंट, हो जाएगा दर्पण। सुना नहीं कभी। जड़मति इस तरह सुजान नहीं होते--अभ्यास से नहीं। जड़मति भी सुजान हो सकता है। अभ्यास से नहीं हो सकता, क्योंकि अभ्यास कौन करेगा? वही जड़मति ही तो अभ्यास करेगी न!
अगर एक क्रोधी आदमी अक्रोधी होना चाहता है, तो अक्रोध का अभ्यास कौन करेगा? क्रोधी आदमी ही करेगा न! एक कामी काम से मुक्त होना चाहता है, अभ्यास कौन करेगा? कामी आदमी ही अभ्यास करेगा न! तो कामी क्या करेगा? ज्यादा से ज्यादा काम को दबा कर बैठ जाएगा; छाती में दबा कर बैठ जाएगा। और छाती में दबाया हुआ अभ्यास, छाती में दबाए हुए रोग, छाती में दबाई हुई वृत्तियां और भी घातक हो जाती हैं--महा घातक हो जाती हैं। जिस चीज को तुम अपने भीतर दमित कर लेते हो, उससे मुक्त नहीं होते।
हां, मूर्खों को भी सजा-बजा कर खड़ा कर दिया जा सकता है। और ऐसे ही मूर्ख बहुत से महापंडित समझे जाते हैं। बुनियादी रूप से मूढ़ हैं। लेकिन पांडित्य का आवरण है। उस आवरण से संसार को धोखा हो सकता है, लेकिन परमात्मा को तुम धोखा न दे पाओगे। और गहरे में तुम तो जानते ही रहोगे। तुम अपने को कैसे भुला पाओगे कि तुम जड़बुद्धि हो? और यह सब अभ्यास जड़बुद्धि का ही अभ्यास है।
कटघरे में खड़े मुल्ला नसरुद्दीन को संबोधित करते हुए जज ने कहा, बड़े मियां, तुम्हें बार-बार कचहरी आते शर्म नहीं आती! मुल्ला नसरुद्दीन ने इत्मीनान से जज की ओर उन्मुख होकर उत्तर देते हुए कहा, हजूर, मैं तो कभी- कभी आता हूं। मगर आप तो रोज आते हैं!
इसी जज ने एक बार पुनः मुल्ला नसरुद्दीन से कहा, मुल्ला, तुमने अपने मित्र को कुर्सी से क्यों मारा? नसरुद्दीन ने बड़ी मासूमियत से कहा, हुजूर, मेज मुझसे उठाई न गई!
जड़मति तो जड़मति ही है। अभ्यास से नहीं होगा। फिर क्या किया जाए? क्या जड़मति के लिए कोई उपाय ही नहीं?
नहीं, उपाय है--जागरण, होश, साक्षी-भाव। तुम अपनी बुद्धि की जड़ता को भीतर बैठ कर देखो भर। द्रष्टा बनो। कुछ करो मत। करोगे तो ईंट घिसोगे, करोगे तो अभ्यास हो जाएगा। करने से कुछ लाभ न होगा। करो ही मत कुछ। क्योंकि करने में तुम्हारी जड़मति का ही हाथ होगा। कृत्य तो तुम्हारी बुद्धि से ही निकलेंगे।
एक जैन मुनि शाकाहार के संबंध में प्रवचन दे रहा था। बड़ी प्रशंसा कर रहा था पशु-पक्षियों की, कि उनमें भी आत्मा है, उनमें भी जीवन है; और जो दूसरे को दुख देगा, वह खुद दुख पाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन सुन रहा था। एकदम खड़ा हो गया। और उसने कहा, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। एक बार एक मछली ने मेरे प्राण बचाए थे। मुनि तो बहुत आनंदित हुआ। मुल्ला को पास बिठाया, पीठ थपथपायी। और लोगों से कहा, देखो, प्रत्यक्ष प्रमाण। और तुम मछलियों को खाते हो! मुल्ला से कहा, तू मेरे पास ही रुक। तू प्रत्यक्ष प्रमाण है।
जब भी मुनि प्रवचन देते, मुल्ला को दिखाते कि देखो, यह मुल्ला! क्यों मुल्ला, कहो लोगों से! मुल्ला कहता कि मछली ने एक बार मेरी जान बचाई थी। कई दिन बीत गए। एक दिन मुनि ने पूछा, लेकिन तुम जरा विस्तार से तो कहो।
कब बचाई थी? कैसे बचाई थी? मुल्ला ने कहा, वह आप न पूछें तो ठीक। एक बार मैं बिल्कुल भूखा था। और एक मछली को खाकर ही बचा। नहीं तो बस जान गई ही गई थी।
मैं मछली का बहुत ऋणी हूं!

तुम्हारा व्यक्तित्व, तुम्हारा कृत्य, तुम्हारे वक्तव्य, तुम्हारी साधना, तुम्हारा अभ्यास, तुम्हारे उपवास, व्रत, नियम इत्यादि कौन साधेगा? कौन करेगा? तुम हो कौन? लेकिन एक तत्व तुम्हारे भीतर है, जो तुम नहीं हो।
बस वही तुम्हारी एकमात्र आशा है। तुम्हारे भीतर एक द्रष्टा-भाव है, एक साक्षी-भाव है, जो तुम नहीं हो। बस वही साक्षी-भाव जगाना है।
और ध्यान रहे, साक्षी-भाव का अभ्यास नहीं करना होता। वह तो है ही।
सिर्फ स्मरण काफी है। इसलिए बुद्ध ने कहा हैः सम्यक स्मृति। सम्मासति।
संतों ने कहा हैः सुरति। जार्ज गुरजिएफ कहता थाः सेल्फ रिमेंबरिंग।
अभ्यास नहीं--सिर्फ आत्म-स्मरण।
राह पर चल रहे हो, अपने को चलता हुआ देखो। बैठे हो, अपने को बैठा हुआ देखो। भोजन कर रहे हो, अपने को भोजन करता हुआ देखो। बोल रहे हो--बोलता। सुन रहे हो--सुनता। ऐसा अपने को देखो। जैसा हो रहा है, वैसा अपने को देखो। रात बिस्तर पर लेटते-लेटते अपने को बिस्तर पर लेटते देखो। झपकी आने लगी। आखिर-आखिर तक देखते रहो, देखते रहो कि नींद उतर रही, नींद उतर रही। यह उतरी, यह उतरी, यह परदा गिरा।
और एक दिन तुम हैरान हो जाओगे। अभ्यास नहीं है यह, बोध-मात्र है। एक दिन तुम चकित होकर पाओगे कि नींद का परदा भी गिर गया और तुम जागे ही हुए हो। या निशा सर्वभूतानाम्--जब सब सो गए, तब भी तुम जागे हुए हो--तस्याम जागर्ति संयमी।
यह एक संयम है--अभ्यास नहीं। यह एक संतुलन है--अभ्यास नहीं।
अभ्यास छोटी चीज है। जैसे कोई दंड-बैठक लगाए, वह अभ्यास है। जैसे कोई राम-राम, राम-राम, राम-राम जपता रहे, वह अभ्यास है। कोई माला फेरता रहे, फेरता रहे, वह अभ्यास है। और राम-राम जपते-जपते जीभ में छाले पड़ जाएंगे, मगर लाभ कुछ और न होगा। माला जपते-जपते हाथ में गड्ढे पड़ जाएंगे, और लाभ कुछ भी न होगा। तुम जड़बुद्धि हो सो तुम जड़बुद्धि रहोगे।
तुम्हारा मौलिक रूपांतरण सिर्फ एक ही प्रक्रिया से हो सकता है कृष्णतीर्थ भारती! वह प्रक्रिया है साक्षी की। मैं तुम्हें साक्षी की ही शिक्षा दे रहा हूं। तुम जो भी कर रहे हो, बस उस करते समय स्मरण रहे कि मैं क्या कर रहा हूं। श्वास भीतर गई तो देखो--भीतर गई। श्वास बाहर गई तो देखो-- बाहर गई।
तुम्हें इसमें बहुत आध्यात्मिकता मालूम नहीं होगी। तुम कहोगे, यह कैसा अध्यात्म? राम-राम जपें, तो अध्यात्म मालूम होता है। हालांकि तोते राम-राम जप रहे हैं, और उनमें से कोई आध्यात्मिक नहीं हो गया है! और तोते स्वर्ग नहीं जाते। ग्रामोफोन के रिकार्ड हैं। तुम भी ग्रामोफोन के रिकार्ड बन सकते हो। ऊपर-ऊपर राम-राम जपते रहो और भीतर-भीतर न मालूम क्या- क्या कूड़ा-कबाड़ चलता रहे! वह सब बहता रहे। माला हाथ जपते रहेंगे, और मन? मन अपनी जड़ता में डूबा रहेगा।
जड़ता यानी मूर्च्छा। और मूर्च्छा को तोड़ने का एक ही उपाय है--जागरण, साक्षी। इसका अभ्यास नहीं करना है। हां, इसका निरंतर स्मरण करना है जरूर। दोनों में बहुत बारीक भेद है।
तुम्हें लगेगा कि स्मरण भी तो अभ्यास ही है। तुम्हारा मन कहेगाः तो बार-बार स्मरण करना, वह भी तो अभ्यास है!
नहीं, वह अभ्यास नहीं है। अभ्यास का अर्थ होता है, जैसे एक आदमी कार चलाना सीखता है, तो शुरू-शुरू में बड़ी अड़चन होती है। क्योंकि उसे याद रखना पड़ता है। स्टेयरिंग को सम्हाले। रास्ते पर तरह-तरह के लोग चल रहे हैं, इन पर ध्यान रखे। बच्चे दौड़ रहे हैं। ट्रक आ रहे हैं। बसें जा रही हैं। इतना रास्ता चल रहा है--इस सबका ध्यान रखे कि कहीं चूक न हो जाए। जरा चूक हुई कि गए! इधर एक्सीलरेटर का ध्यान रखे कि एक पैर एक्सीलरेटर पर है। इधर ब्रेक का ध्यान रखे कि दूसरा पैर ब्रेक पर है। इधर गेयर का ध्यान रखे कि अब गेयर बदलना है। इतनी चीजों को एक साथ ध्यान रखना बड़ा मुश्किल मालूम होता है। इसलिए शुरू-शुरू में ड्राइविंग सीखने वाले को पसीना-पसीना हो जाना पड़ता है।
फिर धीरे-धीरे अभ्यास हो जाता है। फिर पैर सम्हाल लेता है एक्सीलरेटर को, फिर तुम्हें सम्हालने की जरूरत नहीं रहती। हाथ सम्हाल लेते हैं

स्टेयरिंग को, तुम्हें सम्हालने की जरूरत नहीं रहती। तुम सिगरेट पीयो, फिल्मी गाना गाओ, कार में रेडियो हो तो रेडियो सुनो, मित्र बैठा हो तो गपशप करो--फिर तुम्हें कोई ध्यान देने की जरूरत नहीं है। यंत्रवत हो गया कार का चलाना।
जो चीज अंततः यंत्रवत हो जाए, उसकी प्रक्रिया का नाम अभ्यास है। और जो चीज कभी यंत्रवत न हो, उस प्रक्रिया का नाम साक्षी-भाव है। इसलिए दोनों के भेद को तुम ठीक-ठीक समझ लेना। अभ्यास हमेशा हर चीज को यंत्रवत कर देता है। और जो चीज यंत्रवत हो जाती है, वही तुम बेहोशी में करने लगते हो। होश की जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन साक्षी-भाव को कभी बेहोशी में नहीं किया जा सकता। साक्षी-भाव और बेहोशी में कैसे करोगे! ऐसा अभ्यास कभी नहीं हुआ साक्षी-भाव का कि कोई बस बेहोशी में साक्षी बना रहे। साक्षी और बेहोशी तो विपरीत हैं।
इसलिए इसको तुम व्याख्या समझोः जिस चीज का अंतिम परिणाम जड़ता होती हो, वह अभ्यास। इसलिए अभ्यास से जड़मति सुजान नहीं होता, जड़मति कुशल होता है।
और तुम कहतेः "रसरी आवत-जात है, सिल पर परत निशान।"
हां, रस्सी जरूर बार-बार आती है कुएं पर, तो सिल पर निशान पड़ जाते हैं। मगर ध्यान ऐसे निशानों का नाम नहीं है। रस्सी बार-बार आएगी-जाएगी तो निशान तो पड़ेंगे। पत्थर पर पड़ जाते हैं, तो मन पर भी पड़ जाएंगे। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि मन में और कुछ है ही क्या, बार-बार पड़े निशान! एक ही काम को तुमने बार-बार किया, निशान पड़ गए। फिर तुम्हें ध्यानपूर्वक करने की जरूरत नहीं रह जाती। वे निशान ही करने लगते हैं। मस्तिष्क तुम्हारा एक कंप्यूटर हो जाता है। तुम्हें जरूरत नहीं रहती सोचने-विचारने की। अपने आप मस्तिष्क काम करने लगता है। बटन दबाई और काम शुरू हो जाता है। बटन बंद कर दी, काम बंद हो जाता है।
तुमने नाम सुना होगा डाक्टर हरि सिंह गौर का। उन्होंने सागर विश्वविद्यालय का निर्माण किया। वे हिंदुस्तान के बड़े से बड़े वकीलों में एक थे। हिंदुस्तान के ही नहीं, सारी दुनिया के दो-चार बड़े वकीलों में एक थे। सारी दुनिया में उनके आफिस थे--पेकिंग में, दिल्ली में, लंदन में। आज दिल्ली, कल पेकिंग, परसों लंदन। प्रिवी कौंसिल के बड़े से बड़े वकील थे। लेकिन उनकी एक आदत थी, अभ्यास था। तुम्हारी भी इस तरह की आदतें होंगी, ख्याल करोगे तो समझ में आ जाएंगी।
जैसे किसी आदमी को कुछ सोच-विचार करना हो, तो वह सिर खुजलाने लगता है।
बस उसका हाथ पकड़ लो, सिर न खुजलाने दो। वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा! वह सोच-विचार ही नहीं पाएगा। वह कहेगा, मेरा हाथ छोड़ो, नहीं तो मेरा सब सोच-विचार खराब हुआ जा रहा है! वह यंत्रवत आदत है।
किसी आदमी को सोचना हो, सिगरेट को जला लेता है। धुआं निकालने लगे, फिर सोच-विचार सुगम हो जाता है। उसकी सिगरेट छीन लो, वह एकदम अस्तव्यस्त हो जाएगा। उसकी समझ में न आएगा कि अब मैं क्या करूं, क्या न करूं? और एक आदमी रोज सुबह प्रार्थना करता है, मंदिर में घंटी बजाता है, पूजा का थाल उतारता है। बस एक दिन उसको मंदिर में न घुसने दो, वह दिन भर परेशान रहेगा। इन सब में कुछ भेद है--तुम समझते हो--सिर खुजलाना, या मंदिर की घंटी बजाना, या सिगरेट पीना? जरा भी भेद नहीं है।
डाक्टर हरि सिंह गौर को एक आदत थी--यह कहानी उन्होंने खुद ही मुझे सुनाई थी--कि जब भी वे प्रिवी कौंसिल में कोई गहरे मसले पर बोलते, तो अपने कोट का बटन घुमाते रहते थे। कोट का बटन हाथ में आया कि उनका मस्तिष्क तेजी से काम करता था। हर मुकदमा जीतते थे वे। उनका विरोधी वकील, जो विपरीत उनके कई मुकदमे लड़ चुका था और हार चुका था, धीरे-धीरे यह देख-देख कर आदी हो गया था कि बटन में कुछ राज है। क्योंकि जब भी वे बटन घुमाने लगते, तब उनकी तर्क-शैली और उनके बोलने का ढंग बड़ा प्रखर हो जाता, तलवार में धार आ जाती। वे बटन ही तब छूते हैं, जब जरूरत होती है। साधारणतः बटन नहीं छूते। जब मामला बिल्कुल आखिरी चरम अवस्था में आ जाता, तब उनकी बटन पकड़ी जाती।
उस वकील ने उनके शोफर को रिश्वत देकर उनके कोट की बटन तुड़वा दी। एक बड़ा मामला था। राजस्थान के एक राजा का मामला था, लाखों का मामला था प्रिवी

कौंसिल में। आखिरी फैसले का मामला था। उन्होंने कोट डाल लिया। उन्होंने देखा ही नहीं कि बटन उसमें है या नहीं। अंदर पहुंच गए। मुकदमा शुरू हुआ। जैसे ही बात अड़चन की आई, बटन पर हाथ गया, वहां बटन थी ही नहीं। एकदम पसीना छूट गया! वे मुझसे कह रहे थे कि मेरा मस्तिष्क एकदम खटाक से बंद हो गया। मैंने बहुत कोशिश की, मगर मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। मुझे कुछ सूझे ही नहीं! मुझे क्षमा मांगनी पड़ी। मुझे कहना पड़ा कि आज स्थगित करें; मेरी हालत खराब है; मैं बीमार हूं; मुझे चक्कर आ रहा है। दूसरे दिन जब अपनी बटन लगा कर पहुंचा, तब सब ठीक से चला।
अब हरि सिंह गौर जैसे बुद्धिमान आदमी की अगर यह दशा हो, तो औरों का क्या कहना! यंत्रवत! एक बार ऐसा हुआ कि हरि सिंह गौर--जरा पीने के आदी थे, ज्यादा पी जाते थे--ज्यादा पी गए। अदालत गए। भूल ही गए कि किसके पक्ष में हैं। तो विपक्ष में बोल गए। अपने ही मुवक्किल के खिलाफ बोल गए। धुआंधार बोले। बटन पर हाथ घुमाते रहे और दिल खोल कर बोले। मजिस्ट्रेट हैरान। खुद का मुवक्किल हैरान। विरोधी वकील हैरान--कि अब मेरे लिए कुछ बचा ही नहीं। यह हो क्या रहा है! मगर हरि सिंह को बीच में कौन रोके? मजिस्ट्रेट भी उनसे भय खाते थे।
जब दोपहर का चाय का समय मिला, तब उनके असिस्टेंट ने बाहर आकर कहा कि महाराज, यह आपने क्या किया! सब गुड़-गोबर कर दिया! गया यह मुकदमा। आप ही हार गए अपने हाथ से। आप अपने ही पक्ष के खिलाफ बोलते रहे!
हरि सिंह को थोड़ा होश आया। कहा, घबड़ा मत! अभी आधा समय बाकी है। चाय के समय के बाद जब वे अदालत में पहुंचे, तब उन्होंने कहा मजिस्ट्रेट को, परम आदरणीय, अब तक मैंने वे दलीलें दीं जो मेरा विरोधी वकील देगा। अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं। फिर बटन पर हाथ! और फिर उन्होंने दिल खोल कर खंडन किया।
वकील या वेश्या, इनका कुछ भरोसा नहीं। ये तो किसी के भी साथ हो सकते हैं। लेकिन मन भी वकील और वेश्या जैसा ही है। इसका भी कुछ भरोसा मत करना। नास्तिक हो जाओ, तो यह नास्तिकता की दलीलें देगा। आस्तिक हो जाओ, आस्तिकता की दलीलें देगा। पूजा-पाठ करो, तो पूजा-पाठ के पक्ष में बोलेगा। और पूजा- पाठ छोड़ना हो, तो पूजा-पाठ के खिलाफ बोलने लगेगा।
इस मूर्च्छित मन से तुम कितना भी अभ्यास करो, यह मूर्च्छित मन--हां, सुंदर हो जाएगा, सज जाएगा। मगर जैसे मूर्ख को सुंदर पगड़ी बांध दी, मूंछों पर ताव दे दिया, इत्र-फुलेल लगा दिया, शानदार कपड़े पहना दिए, इससे ही क्या होता है? भीतर तो वे वही के वही हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन और उसके तीन मित्रों ने तय किया कि बहुत सुनते हैं
कि मौन से परमात्मा का दर्शन होता है, तो हम भी एक महीने का मौन साधें। चारों गए, बैठ गए हिमालय की एक गुफा में। कोई आधा घड़ी बीती होगी कि पहले ने कहा कि अरे, मुझे लगता है कि मैं बिजली घर की जली ही छोड़ आया। महीने भर में तो बहुत बिल चढ़ जाएगा! दूसरा बोला, अरे बुद्धू, हमने कसम ली एक महीना चुप रहने की, और तू बोल गया! तीसरा हंसा और उसने कहा, बोल तो तुम भी गए! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि हे प्रभु! हम ही भले। अब तक हम ही नहीं बोले!
बस आधा घड़ी में सब मामला खत्म हो गया। जड़ मस्तिष्क कितनी देर अभ्यास करेगा? क्या अभ्यास करेगा?
नहीं, अभ्यास से नहीं--बोध से, होश से, जागरूकता से। कृष्णतीर्थ, प्रत्येक कृत्य के साथ-साथ साक्षी-भाव को जोड़ो। बहुत अध्यात्म जैसा नहीं लगेगा कि श्वास भीतर गई--देखा। श्वास बाहर गई--देखा। यह बायां पैर उठा-- देखा। यह दायां पैर उठा--देखा। इसमें बहुत अध्यात्म जैसा नहीं लगेगा। अध्यात्म है भी नहीं। यह विज्ञान है। आत्मा को जानने का विज्ञान है। हां, राम-राम जपा, माला जपी, तिलक-चंदन लगाया, तो अध्यात्म मालूम होता है। अध्यात्म कुछ भी नहीं है। तुम सिर्फ बुद्धू हो। और तुम से भी जो ज्यादा कुशल बुद्धू हैं वे तुम्हें लूट रहे हैं।

आखिरी प्रश्नः आपसे जो मिला है, उसे बांटूं या सम्हालूं?

आनंद देव! सम्हालने का एक ही उपाय है--बांटना। सम्हाला, और बांटा नहीं--खो जाएगा। बांटा, और सम्हाला नहीं--सम्हल जाएगा। दो! लुटाओ! यह कोई जीवन का क्षुद्र अर्थशास्त्र नहीं है कि तिजोड़ी में बंद करके रख दो। ये फूल तिजोड़ी में बंद करके रखने योग्य नहीं हैं। नहीं तो मर जाएंगे, सड़ जाएंगे। यह दीया तिजोड़ी में बंद मत कर देना, नहीं तो बुझ जाएगा।
बांटो! साझीदार बनाओ! जितने साझीदार बना सकते हो, उतने बनाओ! बेशर्त बांटो! पात्र-अपात्र का भी भेद मत करना। हम कौन हैं जो निर्णय करें--कौन पात्र, कौन अपात्र! हम कौन हैं जो निर्णय करें--कौन बीज फूटेगा, कौन बीज नहीं फूटेगा! बोओ बीज। जहां जगह मिले, वहां बीज बोओ।
ब्लावटस्की, जिसने थियोसाफिकल सोसायटी को जन्म दिया, एक ट्रेन में यात्रा कर रही थी। उसने अपने पास एक झोला रख छोड़ा था। बार-बार झोले में हाथ डालती और कुछ बाहर फेंकती। आखिर और यात्रियों की जिज्ञासा बढ़ी। फिर वे रुक न सके। उन्होंने कहा कि क्षमा करें! अकारण आपके कार्य में बाधा देना हम उचित नहीं मानते। लेकिन हमारी जिज्ञासा अब सीमा के बाहर हो गई है। इस झोले में क्या है? और बार-बार मुट्ठी भर कर आप क्या फेंकती हैं? ब्लावटस्की ने कहा, देख लो झोले में। फूलों के बीज हैं। इन्हीं को मैं बाहर फेंक रही हूं ट्रेन से।
उन्होंने कहा, हम अर्थ नहीं समझे! इसका क्या सार?
ब्लावटस्की ने कहा, सार! आकाश में बादल घिरने लगे हैं। आषाढ़ आ गया। जल्दी ही वर्षा होगी। ये बीज फूल बन जाएंगे।
मगर उन लोगों ने कहा कि क्या आपको बार-बार इसी ट्रेन में सफर करनी पड़ती है? क्या इसी रास्ते से आप बार-बार गुजरती हैं?
ब्लावटस्की ने कहा कि नहीं, मैं पहली बार गुजर रही हूं और शायद दुबारा कभी मौका न आए।
तो उन्होंने कहा, हम फिर समझे नहीं! तो फिर बीज फेंकने से आपको क्या फायदा? बीज अगर फूल बने भी, तो आप तो कभी देख भी न सकेंगी।
ब्लावटस्की ने कहा, यह थोड़े ही सवाल है कि मैं देख सकूं। कोई तो देखेगा! सब आंखें मेरी हैं। किसी के नासापुटों में तो सुगंध भरेगी! सब नासापुट मेरे हैं। कोई तो प्रसन्न होगा, आनंदित होगा। रोज यात्री इस ट्रेन से आते-जाते हैं हजारों; और-और ट्रेनें निकलती हैं इस रास्ते से। लाखों लोग उन फूलों को नाचते देखेंगे हवा में, सूरज में--प्रसन्न होंगे। एक ने कहा, लेकिन उनको तो पता भी नहीं चलेगा कि आपने ये फूल बोए हैं! ब्लावटस्की ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है कि वे जानें कि किसने फूल बोए हैं; कि वे मेरे नाम का स्मरण करें, कि मुझे धन्यवाद दें। वे प्रसन्न होंगे, इसमें मेरी प्रसन्नता है। वे आनंदित होंगे, मुझे आनंद मिल जाएगा। आनंद दो--आनंद मिलता है। आनंद बांटो--और तुम्हारे भीतर आनंद के नये- नये झरने फूटेंगे। आनंद देव, तुम्हें नाम दिया है--आनंद देव। दो! आनंद को बांटो!
बरसते बादल, सरसती वायु, पल तन्मय,
बोल रे! कुछ खोल गांठें, बांट कुछ संचय।
बांट रे! जग मांगता है आज रस की भीख,
भरे दिल ओ! भरे बादल से क्रिया यह सीख।
सीखः अंतर की विकल घुमड़न बने रसदान,
तप्त भावोच्छवास झुक भेंटें धरा के प्राण।
लघु हृदय की लहर छू ले फैल नभ के छोर,
सफल हो यह साध कण-कण को अमृत में बोर।
बोल ओ बंदी हृदय की ग्रंथियों के! बोल!!
ढाल जीवन, धरा उत्सुक है अधर-पट खोल
तड़ित-कंपन-तेज में बीते न अंतर-शक्ति
शून्य में ही चुक न जाए सिंधु की आसक्तिदंभ है यह उच्चता, रे! रिक्त है यह धूमउतर भू पर, प्रणय की हरियालियों को चूम
आज छा ले सृष्टि को तू सजल भार उतार
कामना हो फलवती, हो फूल का संसार
मुक्त हो तू, महत हो तू, ज्यों अमित आकाश

छोड़ यह संकोच, मन रे! तोड़ मित्ति के पाश।
मिट्टी के बंधन छोड़ो; मिट्टी का अर्थशास्त्र छोड़ो;
आत्मा का अर्थशास्त्र समझो।
इस जगत में तो चीजें बचाओ, तो बचती हैं; बांटो--समाप्त हो जाती हैं। भीतर के जगत में उलटा नियम हैः बचाओ--नष्ट हो जाती हैं। बांटो--बच जाती हैं। मृत्यु के क्षण में तुम पाओगेः तुम्हारे साथ वही जाएगा, जो बांटा, जो दिया; जो बेशर्त दिया, जिसमें कोई अपेक्षा भी न रखी; जिसमें उत्तर की कोई आकांक्षा भी न थी; जिसमें धन्यवाद मिले, इतना भी भाव नहीं था। ऐसा जो दिया, वही मृत्यु में तुम्हारे साथ जाएगा। वही तुम्हारी असली संपदा है, वही तुम्हारा संचय है। जैसे बादल बरसते हैं; इनसे कुछ सीखो।
बरसते बादल, सरसती वायु, पल तन्मय, बोल रे! कुछ खोल गांठें, बांट कुछ संचय। बांट रे! जग मांगता है आज रस की भीख, भरे दिल ओ! भरे बादल से क्रिया यह सीख।
भरा दिल और भरा बादल एक जैसा व्यवहार करते हैं। भरा बादल बरसेगा ही बरसेगा। भरा बादल बोझिल है। भरा बादल जब बरसता है तप्त धरती पर, और पी जाती है धरती जब उसके रस को, तो धन्यवाद देता है धरती को, क्योंकि धरती ने उसे निर्भार किया, बोझ से मुक्त किया। और भरा दिल भी इसी तरह धन्यवाद करता है उसका, जो उसके प्रेम से उसे निर्भार करता है, जो उसके आनंद से उसे निर्भार करता है। ध्यान रखना, जल बहता रहे, तो स्वच्छ होता है। रुक जाए--गंदा हो जाता है। बहो! बहोगे--स्वच्छ रहोगे। रुकोगे--सड़ जाओगे।
सीखः अंतर की विकल घुमड़न बने रसदान, तप्त भावोच्छवास झुक भेंटें धरा
के प्राण। लघु हृदय की लहर छू ले फैल नभ के छोर, सफल हो यह साध कण-कण को अमृत में बोर।
तुम्हें मिले, तो फिर कण-कण को अमृत में डुबाओ। पुरानी आदत है कंजूसी की, आनंद देव! धन को पकड़ते थे; ध्यान को पकड़ने लगते हो! वस्तुओं को पकड़ते थे; आनंद को पकड़ने लगते हो! बाह्य को पकड़ते थे; अंतर को पकड़ने लगते हो। और जो पकड़ेगा, वह बंधन में बंध जाएगा। परिग्रह बंधन है।
लुटाओ! दोनों हाथ उलीचिए। उलीचे चलो! और डरो मत कि चुक जाएगा। जितना उलीचोगे, उतना ही भरोसा आएगा कि और-और नये झरने खुलने लगे; और-और नये द्वार खुलने लगे। जो जितना देता है, उतना ही परमात्मा से पाने का हकदार हो जाता है, अधिकारी हो जाता है।
तुम्हें कुछ झलक मिल रही है, यही झलक सुबह हो जाएगी--अगर बांटोगे। तुम्हें थोड़ी सुगंध आ रही है, यही सुगंध पूरी बगिया हो जाएगी--अगर बांटोगे। तुम्हें जीवन का थोड़ा सा साफ-सुथरापन उपलब्ध हो रहा है; बांट दो! देर न करना--तो सारा आकाश तुम्हारा है। आंगन से ही क्यों बंधे हो! और इसी आकाश की तो तलाश चल रही है--असीम की, अनंत की।
सीमा तृप्त नहीं कर सकती; केवल असीम ही तृप्त कर सकता है। और असीम को पाने का ढंग रोकना नहीं है। असीम होने का ढंग--सब दे देना है। जैसे नदी दे देती है सब सागर को, और सागर हो जाती है। काश! तुम यह कर सको, तो जिस प्रार्थना पर हम चर्चा कर रहे हैं, वह पूरी हो जाए। तमसो मा ज्योतिर्गमय-- हे प्रभु, मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।
लेकिन तुम प्रकाश दोगे, तो ही प्रकाश की ओर ले जाए जा सकोगे। परमात्मा तुम्हें वही दे सकता है, जो तुम दूसरों को दोगे। दुख दोगे--दुख पाओगे। सुख दोगे--सुख पाओगे। जो बोओगे--वही काटोगे।
तमसो मा ज्योतिर्गमय--हे प्रभु, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल।
लेकिन जाने की तैयारी तो दिखाओ!
असतो मा सद्गमय--हे प्रभु, असत्य से सत्य की ओर ले चल।
लेकिन सत्य तुम्हें मिले, तो उसे छिपाओ मत। तुम लोगों को सत्य की ओर
ले चलो। जो भी छोटा-मोटा सत्य है तुम्हारा, जितना बन सके, तुम्हारे छोटे हाथों से जितना दिया जा सके--दो। स्मरण रखो, तुम जो लोगों को दोगे, जगत को दोगे, वही अनंत-अनंत गुना होकर परमात्मा से तुम्हें मिलता है।
मृत्योर्मा अमृतं गमय--हे प्रभु, मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चल।
अमृत की बूंद तुम्हें मिली, बांट दो! फिर सागर तुम्हारा है; फिर अमृत
का पूरा सागर तुम्हारा है।

[illegible]